डाक-पंजीयन म.प्र./भोपाल/4-472/2021-23
पोस्टिंग दिनांक : प्रतिमाह दिनांक 2 से 3, पृष्ठ सं. 142
प्रकाशन दिनांक : 1 से 1 प्रतिमाह

आर.एन.आई क्र. : 38470/83
आई.एस.एस.एन. क्र. : 2456-7167

अक्षरा 222

साहित्य की मासिकी

मूल्य 50/-

42 वाँ वर्ष

सितम्बर 2023

साधो सबद साधना कीजै
अजित वडनेरकर

स्तंभ
रमेश दवे, रामेश्वर मिश्र पंकज,

अनुवाद
विभा खरे

आलेख
उमराव सिंह चौधरी, प्रकाश मनु, सदानंद प्रसाद गुप्त, प्रमोद भार्गव, खेमसिंह डहेरिया

शोधालेख
महेश बापूराव चव्हाण, जया सिंह, सुरभि नामदेव, डॉ. धीरेंद्र शुक्ल, अखिलेश कुमार शर्मा, अजिता मिश्रा

ललित निबंध
उमाशंकर चतुर्वेदी

आत्मकथ्य
रमेश दवे

कहानी
शेर सिंह, मंजुश्री, कुसुम रानी नैथानी

अक्षरा
अंक-222
मूल्य 50/- रुपये

वरिष्ठ छायाकार
जगदीश कौशल

डॉ. रामकुमार वर्मा

जन्म – 15 सितम्बर 1905
प्रयाण – 15 अक्टूबर 1990

डॉ. रामकुमार वर्मा का जन्म 15 सितम्बर 1905 को मध्यप्रदेश के सागर जिले में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा मध्यप्रदेश में पूरी करने के बाद उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. की डिग्री प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त कर हासिल की। हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास विषय पर उनके शोधग्रंथ पर नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई थी। आप वर्षों तक प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद पर भी रहे। डॉ. रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य जगत में ''एकांकी सम्राट'' के रूप में जाने जाते हैं। आपने 150 से अधिक एकांकी नाटकों के अलावा अनेक नाटकों की रचना की। आपकी काव्य रचनाओं में छायावाद और रहस्यवाद की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। डॉ. वर्मा के एकांकी नाटकों की सूची में पृथ्वीराज की आँखें, रेशमी टाई, चारूमित्रा, विजयपर्व, दीपदान, इन्द्रधनुष, रिमझिम, रजत रश्मि, ध्रुव तारिका, विभूति, आठ एकांकी और चार एकांकी प्रमुख हैं। वीर हमीद, चित्तौड़ की चिता, कुल ललना, रूपराशि, एकलव्य, चितवन, अभिशाप, अंजलि, चित्ररेखा, चन्द्रकिरण आपकी प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं।

शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए डॉ. रामकुमार वर्मा को भारत सरकार द्वारा सन् 1963 में पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया गया। इसके अलावा आपको हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा ''साहित्य वाचस्पति'', मध्यप्रदेश सरकार द्वारा ''देव पुरस्कार'' अन्य संस्थाओं के अनेक सम्मान प्राप्त हुए हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा का यह दुर्लभ फोटो लगभग 65 वर्ष पुराना है। जिसे भोपाल के सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध छायाकार श्री जगदीश कौशल ने दिनांक 11 नवम्बर 1959 में उनके रीवा प्रवास के दौरान राजनिवास रीवा में क्लिक किया था।

अक्षरा

222

यू.जी.सी. द्वारा मान्यता प्राप्त
42 वाँ वर्ष

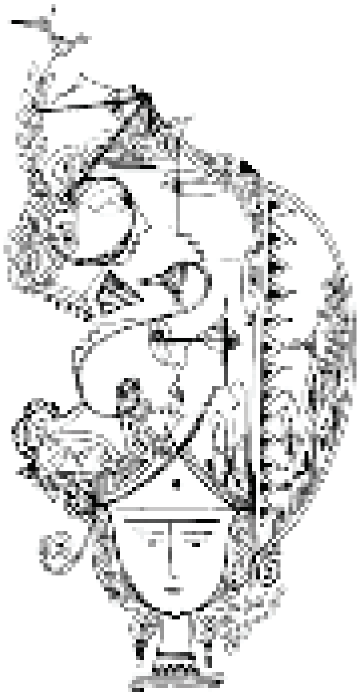

मनोज श्रीवास्तव
प्रधान सम्पादक

जवाहर कर्नावट
प्रबंध सम्पादक

जया केतकी
सम्पादन सहयोग

सुधा बाथम
अक्षर-संयोजन

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपए
दस वर्षीय सदस्यता शुल्क : 5000 रुपए
एक प्रति 50 रुपये
विदेशों के लिए : एक अंक : 10 डॉलर, वार्षिक : 120 डॉलर
चेक या ड्राफ्ट 'म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति- 'अक्षरा' के नाम देय
ऑनलाइन पेमेंट के लिये- इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल
Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

सम्पर्क : म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - 462002 (म.प्र.)
दूरभाष : 0755- 2660909, (लेखाविभाग-2661087)
ई-मेल - **myakshara18@gmail.com**
hindibhawan.2009@rediffmail.com
वेबसाइट - **www.akshara.page, www.madhyapradeshrashtrabhasha.com**

भारत का चंद्रयान-तीन चंद्रमा पर उतर गया। भारत ने कहा नहीं कि यह अंतरिक्ष मिशन राष्ट्रवाद या जिंगोइज्म के लिए है। पर जब न्यूयार्क टाइम्स ने अपने व्यंग्य-चित्र के जरिए हमारा उपहास किया था तो वह कौन सी वैश्विकता थी?

तो यह राष्ट्रवाद न सही, राष्ट्रनाद है। और इसकी गूँज रहेगी। वैसे उस कार्टून को इस मिशन ने सच कर दिखाया कि जब सबसे किफ़ायती तरह से सबसे कम खर्चे में यह यान पहुँचा।

और वो ग़रीबी नहीं है, 'दक्षता की बचतें' हैं। जितने में उनका कभी-कभी एक हॉलीवुड चलचित्र नहीं बनता, उतने में यह चाँद पर हमारा यान जा उतरा है। उस कार्टून की गाय को वो कार्टूनिस्ट हेंग किम सांग क्या जानता था। वो कामधेनु थी। भारत को दिखाते समय गाय को उसने जब साथ दिखलाया तभी लग गया था कि 'इसरो' यह कामना पूरी करेगा। पूरे देश में चंद्रयान की सफलता की प्रार्थनाएँ और इल्तजाएँ चल रहीं थीं। पर इस देश में कुछ और भी भलेमानुस हैं। उन्हें भारतीयों के मंदिर में चंद्रयान की सफलता के लिए प्रार्थना करने पर आपत्ति है पर चंद्रमा पर पहुँचकर एल्ड्रिन ने ईसाई संस्कारकर्म अदा किया था और अपना धर्मग्रंथ पढ़ा तो उस पर कोई आपत्ति न हुई। 1994 में तीन कैथलिक एस्ट्रॉनॉट्स ने स्पेस शटल एंडीवर में धार्मिक कर्मकांड किये गये तब भी नहीं किसी ने कहा कि इनमें वैज्ञानिक स्वभाव की कमी है। इज़राइली एस्ट्रोनॉट इलन रेमन ने कुछ यहूदी शब्बात यिद्दिश प्रार्थनाएँ कीं। जेफ्री हॉफमैन तो बहुत बार बहुत सी यहूदी धर्म परंपरा की चीजें ले गया। और तो और रूसी कॉस्मोनॉट Sergei Ryzhikov एक रूसी ऑर्थोडॉक्स संत की मूर्ति साथ ले गया, किसी को कोई समस्या रूस तक में नहीं हुई। यहाँ तक कि मुस्लिम फतवा परिषद ने अंतरिक्ष में 'अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्थानक में मुस्लिम दायित्व' तक जारी कर दिये। सुनीता विलियम्स दो बार गईं। एक बार गीता ले गईं, दूसरी बार उपनिषद और ॐ। तब चुप रहने वाले आज भारतीयों के यज्ञ-हवन से चिंतित हैं। मैं एक विशाल सरोवर के किनारे बैठा हुआ था सुबह-सुबह।

वह जो जलराशि है उसका तो फिर भी कोई छोर है, हालाँकि उस जगह से जहाँ मैं देख रहा था वह विस्तार निरवधि ही लग रहा था। तब मुझे लगा कि क्यों हमें समुद्र के किनारे या पर्वतों पर शांति मिलती है क्योंकि वे असीम लगते हैं, क्योंकि वे अपरिमित हैं। क्योंकि वे निरवकाश हैं। सीमाएँ चाहे दिक् की हों या काल की, बंधन हैं। मुक्ति का अर्थ है बेहद होना। हम जितने-जितने अपने को हदों में कसकर बाँधते चले जाएँगे, उतना-उतना तनाव बढ़ता चला जायेगा। वो कबीर कहते थे न-

हद छाँड़ि बेहद भया किया सुन्न अस्नान।
मुनि जन महल न पावई तहाँ किया बिसराम।

विश्रांति वहीं है जहाँ यह निरवधि है, जहाँ यह खुलापन है, जहाँ यह अपर्यंत है, जहाँ यह शून्य है। और शून्य को हमारे यहाँ स्पेस या आकाश के अर्थ में लिया जाता है। हमारे व्योमयान उसी शून्य का संधान करते हैं।

एकं सर्वगतं व्योम बहिरन्तर्यथा घटे।
नित्यं निरन्तरं ब्रह्म सर्वभूतगणे तथा।।

कि जिस प्रकार एक ही सर्वव्यापक आकाश घड़े के अंदर व बाहर है, उसी प्रकार सदा स्थिर (सदा विद्यमान) व सदा गतिमान (सदा रहने वाला) ब्रह्म सभी भूतों में है। आसमाँ के नीचे हम आज अपने पीछे प्यार का जहाँ बसाकर नहीं चलते। यहाँ तो नकारात्मकताओं और ईर्ष्याओं का धुआँ है। जबकि कितना ही धुँआ हो वह स्पेस को छू नहीं सकता। अष्टावक्र

गीता भी यही कहती है –

न ह्याकाशस्य धूमेन दृश्यमानापि संगतिः।

तो जो दिल ओ जाँ से उठता है, वो धुँआ जहाँ से भी उठता है वह उस पराकोटि के कहीं निकट नहीं है, उस वरिमा के कहीं पासंग नहीं फटकता जो चंद्राकांक्षी अभियानों में है। यह धुँआ धुँआ लोग उसमें कभी उत्तर-दक्षिण के विभाजन ढूँढ़ेंगे और कभी यह कि उस टीम में कितने यादव हैं कितने कायस्थ। कि उन्हें लगता है कि धर्म और विज्ञान में द्वैत ही है और यदि आप शुभकामना के लिए यज्ञ कर रहे हो तो वह उस अभियान के विरुद्ध है। कि उसका श्रेय कहीं ये न ले जाये, कहीं वो न ले जाये।

यों देखा जाये तो यह पृथ्वी भी उसी अंतरिक्ष (स्पेस) का हिस्सा है। तब यहाँ भी उसी शाश्वत सनातन का ही गुण ग्रहण करना था। पर यहाँ तो उसी सनातनी के साथ तनातनी है लोगों की। उसी भारत को अंतरिक्ष अभियानों में सफलता नहीं मिले, उसके लिए क्या-क्या न किया दूसरे देशों ने। क्रायोजेनिक इंजिन की कहानी क्या हम भूल सकते हैं। क्या सोच रहे थे वे? जिस नासा में चौंतीस प्रतिशत भारतीय थे, उसे स्वयं भारतीयों का आभार मानना था। पर भारत की राह में ही रोड़े डालेंगे और उम्मीद करेंगे कि भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म न हो।

यदि आकाश में कोई सीमा नहीं है तो आकाश पर अभिजात क्लब की कौन सी सीमाएँ क़ायम रखनी चाहिए थीं?

और खुद इनके मून मिशन के मूल में इनका वही राष्ट्र-राज्य वाला राष्ट्रवाद था। जब यूरी गगारिन अंतरिक्ष में चला गया था, उसके बाद अमेरिकी अहं के विचलन से भर न गये थे वहाँ के अख़बार और मीडिया। और अभी तक सन् 2023 की अमेरिकी 'अंतरिक्ष राष्ट्रवाद' पर हुए अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि simultaneous presence of nationalist views in both accounts of politics and religion may be linked to the underlying concept of "space nationalism," that is, the belief that the United States should lead in space exploration, resulting in an increased level of support for space programs.

तो राष्ट्रवाद और धर्म स्पेस अभियानों में सहायक है, उनका विरोधी नहीं। जो द्वैतमूलक दृष्टि के हैं वे ही इन्हें एक दूसरे के विरोध में मानते हैं, जबकि आकाश एक अद्वैत है।

इस बीच बहुत-सी बिडम्बनाओं का अनुभव भी हुआ। विज्ञान की उपलब्धि पर विज्ञान के हवाले से भारत को इस खुशी के अवसर पर लज्जित करने की कोशिश हुई। जिस देश में वैज्ञानिकों को ऋषियों का दर्जा दिया गया था, उस देश के विज्ञान को एक ऐतिहासिक अभियान में कुचलने वाले, उस देश के स्वतंत्र होने पर भी वैज्ञानिकों को दोयम दर्जे में रखने वाले, उन्हें आत्महत्या तक करने पर मजबूर करने वाले, उनकी रहस्यमय हत्याओं पर पर्दा डालने वाले, उन पर झूठे मुक़दमे क़ायम करके जेल भेजने वाले, देश में प्रतिभा पलायन की विकट परिस्थितियाँ उत्पन्न करने वाले, देश में देशज भाषाओं में विज्ञान पढ़ने-पढ़ाने की अधोरचना तैयार न करने वाले आज देश में साइंटिफिक टेंपर की कमी और विज्ञान की दौड़ में पिछड़ जाने की सांस्कृतिकता की बात करते हैं।

क्या इस देश की संस्कृति में कोई ऐसा उदाहरण था कि किसी वैज्ञानिक के सिर पर उसकी अपनी ही चिकित्सा पुस्तक की पांडुलिपि इतनी बार मारने का दंड दिया जाये कि उसकी दृष्टि ही चली जाये। क्या इस देश की संस्कृति में कोई ऐसा उदाहरण था कि किसी वैज्ञानिक को स्टेक पर मार ही नहीं डाला जाये बल्कि उसकी जीभ को बाँध भी दिया जाये कि वह मरते वक्त। भीड़ को संबोधित भी न कर सके। क्या इस देश की संस्कृति में कोई ऐसा उदाहरण था कि किसी वैज्ञानिक को न केवल मृत्युदंड दिया जाये बल्कि मारने से पहले दो घंटे तक ज़िंदा रोस्ट किया जाये। क्या इस देश की संस्कृति में कोई ऐसा उदाहरण था कि किसी पूर्व प्रतिपादित वैज्ञानिक सिद्धांत का समर्थन करने पर किसी को गिरफ़्तार कर आजीवन कारावास में रखा जाये। क्या इस देश की संस्कृति में कोई

ऐसा उदाहरण था कि जैसा व्यवहार जर्मनी ने अपने वैज्ञानिकों के साथ नाजियों के दौर में किया। क्या इस देश की संस्कृति में कोई ऐसा उदाहरण था कि कोई शासक कहे कि सभ्यता और संस्कृति बस आज से शुरू होती है और इसके पूर्व की सारी वैज्ञानिक पुस्तकें जला दी जायें और वैज्ञानिक मार डाले जायें। क्या इस देश की संस्कृति में कोई ऐसा उदाहरण था कि वैज्ञानिकों को 'जनशत्रु' का नाम देकर मौत के घाट उतार दिया जाये। क्या इस देश की संस्कृति में कोई ऐसा उदाहरण था कि विज्ञान की पुस्तकों पर बैन लगा दिया जाये जो शताब्दियों चले। क्या इस देश की संस्कृति में कोई ऐसा उदाहरण था कि वैज्ञानिक पुस्तकों वाले पुस्तकालयों को 'शैतान की रचनाओं' का नाम देकर जला दिया जाये। अपनी मानसिकता और शासन-प्रशासन को दोष न देंगे, संस्कृति को देंगे और मज़े की बात यह कि संस्कृति के ग्रंथों को पढ़े भी नहीं। ग्रंथि काफ़ी है इन्हें। ग्रंथ न पढ़ने की क्षतिपूर्ति उसी से होती है।

वैसे यह तो हुआ कि चंद्रयान ने कवियों और परंपराओं और पौराणिक किस्सों को तोड़ दिया। सबने याद किया। जुमले भी गढ़े। पर किसी ने न कोई व्यंग्य किया न जुमले गढ़े उन गप्पों पर जो आधुनिक समय में भी अंतरिक्ष को लेकर गढ़ी गयीं। और इनमें से एक बड़ा शक्तिशाली मिथक चंद्रमा पर एक मनुष्यद्वेषी सभ्यता का होना है।

शुरुआत निश्चित रूप से एच जी वेल्स के उपन्यास से प्रेरित थी। उन्हीं के उपन्यास के शीर्षक से एक फिल्म बनी, 1964 में-फ़र्स्ट मैन इन द मून। याद रखें कि तब तक नील आर्मस्ट्रांग-एल्ड्रिन चंद्रमा पर उतरे नहीं थे। इस फिल्म में चंद्रमा की सतह के नीचे एक सभ्यता रहती है जो पृथ्वी से संघर्ष की स्थिति में आ जाती है। ये कीड़े जैसे लोग हैं जिन्हें बेडफोर्ड और कैवर Selenites नाम दे देते हैं। इनका चंद्रमा में एक भूमिगत शहर है। यह सभ्यता कैवर के एक ज़ुकामिया वायरस के चलते क्षयग्रस्त होकर नष्ट हो जाती है। अब यह बात अलग है कि पाँच वर्ष बाद जब अमेरिकी यात्री वहाँ वास्तव में पहुँचे तो उन्हें कुछ नहीं मिला। क्या चंद्रमा पर मनुष्य का अभियान पूरा होने से उसकी कल्पना शक्ति में कमी आ जाती है?

लगता तो नहीं। अभी 2012 में आयरन स्काई नामक फ़िल्म आई थी जिसके अनुसार कुछ नाज़ी लोग चंद्रमा की डार्क साइड पर भागकर पहुँच गये हैं और जल्द ही पृथ्वी पर आक्रमण करने लौटते हैं। इसका तो सीक्वेल भी बनाया गया था। अभी चार वर्ष पहले। चंद्रमा पर रह रहे नाज़ी अब reptilian shapeshifters को भेजते हैं। चंद्रमा की इसी डार्क साइड पर एक सीरीज़ ट्रांसफ़ॉर्मर्स : अ डार्क ऑफ द मून सीरीज़ भी थी जिसमें एक एलियन स्पेसक्राफ्ट चाँद पर छुपा दिया गया है। हमारा लैंडर वहीं है। जब The Moon is a Harsh Mistress जैसा उपन्यास राबर्ट हीनलीन लिखते हैं जिसमें एक कृत्रिम मेधा और मनुष्यों का समूह पृथ्वी के नियंत्रण के विरूद्ध विद्रोह कर देते हैं या जब लैरी निवेन और जैरी पौर्नेल 'फुटफॉल' जैसा उपन्यास लिखते हैं जिसमें एलियन हमलावरों ने अपना सैन्य अड्डा बना रखा है तो आप उसे विज्ञान कथा कहते हो।

एक और फ़िल्म बहुत पहले यानी 1902 में ही 'अ ट्रिप टु द मून' बनी थी। उसके चाँद निवासी भी मनुष्यों के प्रति द्वेषी थे। अभी 2016 में इंडिपेंडेंस डे रिसर्गेंस के नाम से एक इंडिपेंडेंस डे नामक चलचित्र का उत्तरकांड आया था। उसमें एलीयन आक्रमणकर्ताओं ने चंद्रमा पर एक बेस बनाया हुआ है और पृथ्वी से वे फिर एक नये युद्ध में न्यस्त हो गये हैं।

तो जो भाई पूछ रहे कि चंद्रमा पर वह बुढ़िया दिखी या कि अब वहाँ पहुँचकर करवा चौथ मनाएँगे कैसे, वे यह भी पूछें कि चंद्रमा की सतह के नीचे वो रहस्यमय जीव मिले? या उनकी लाशें? या वो नाज़ी? या वो शेपशिफ्टर्स? या वो एलियन स्पेसक्राफ्ट? या वो सैनिक अड्डा? और फिर वैसी ही घृणा या तिरस्कार इनके रचनाकारों के प्रति पैदा करें जैसी 'लोक' के प्रति। यह हमारी आत्महीनता का परिणाम है कि वही कल्पना विज्ञान के नाम पर हो तो सिर माथे पर और वही कल्पना विश्वास के नाम पर हो तो जूती पर।

◆ ◆ ◆ ◆ ◆

पुष्प को ज्यां गिरौदू ने पुनर्जनन की कविता कहा है। एक समय के बाद पुनर्जनन की प्रकृति, उसकी यह कविता ख़त्म होने लगती है और मनुष्य पुनर्जनन की एक पुनर्यांत्रिकी करने लगता है। जनसंख्या का एक असंतुलन पैदा हो जाता है। फिर वह नैसर्गिकता ही उसकी क़ीमत नहीं चुकाती, पूरा देश चुकाता है। मणिपुर देश की पुष्पमणि है। जैसे प्रकृति पुष्पों में मुस्कुराती है, मणिपुर भी इस देश की स्मिति रहा आया।

मैं पुष्प के हवाले से मणिपुर की बात क्यों कर रहा हूँ? पुष्प का एक पर्याय सुमन है। उसका तर्क समझने के लिए मन की शुभता आवश्यक होती है। बाल्जाक तो मेरे प्रिय उपन्यासकार रहे हैं। उनके हिसाब से तो छोटे से छोटा फूल भी एक विचार है, एक जीवन जो महान 'संपूर्ण' की किसी विशिष्टता का उत्त-सा, जिसके बारे में जैसे उसे एक लगातार अंत:प्रेरणा-सी हो।

एक विशेष पुष्प मणिपुर में खिलता है। इसे शिरोह लिली कहा जाता है। पूरी दुनिया में केवल मणिपुर में होता है यह फूल। इस फूल में सात रंग होते हैं, लेकिन ये सूक्ष्मदर्शी से देखने पर ही दिखाई देते हैं। यह फूल मणिपुर का परिचय है। उसकी पहचान। आज मणिपुर में दुनिया को एकरस करने वाली ताकतों का प्रभाव जैसे-जैसे बढ़ रहा है, मणिपुर का संकट भी बढ़ रहा है। यह शिरोइ पहाड़ियों का अद्वितीय पौधा आज विनाश के खतरे का सामना कर रहा है। अब बहुवर्णिता ही तो निशाने पर है। यह पौधा, यह फूल अपनी स्थानिकता का उदाहरण है। अंग्रेजों ने इसे कुछ और जगहों पर रोपण की कोशिश की लेकिन यह कहीं और पुष्पित नहीं हुआ।

कैसे होता? जड़ों को काटना ही जब इसकी उद्यानिकी की ज्ञानिकी हो। औपनिवेशक इस स्थली-विशिष्टता को समझता ही नहीं था। इसे समझता होता तो उसका उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद ऐसे खूनी खेल दुनिया भर में कैसे खेल पाता? जगह-जगह उसने स्थानीय जातियों और स्थानीय इतिहासों को मिटाया। पोप के बुल-'धर्माज्ञा'-लेकर ही तो वे दुनिया भर में फैल गये थे।

उनके ईसाईकरण के अभियान में एक प्रमुख अंग उस जाति का अनैतिहासिकीकरण है। सो सबसे पहले वे उस क्षेत्र को ये बताते हैं कि एक, तुम्हारा अपना कोई इतिहास या संस्कृति नहीं है और दूसरे, तुम तो हमेशा से एक धर्मशाला रहे हो। तो आज मणिपुर का जो भी इतिहास लिखा जा रहा है और उस पर बहुत से पाश्चात्य लेखकों की पुस्तकें आई है-उसमें मणिपुर के पौराणिक इतिहास को एकदम काट दिया गया है।

वे अचकचाते हैं जब उन्हें महाभारत में मणिपुर की चित्रांगदा की याद दिलाई जाती है जिसने अर्जुन से विवाह किया था और जिसके पुत्र बभ्रुवाहन ने अश्वमेध के अश्व के साथ जाते हुए अर्जुन को पराजित कर दिखाया था।

क्रमेण स हयस्त्वेवं विचरन् पुरुषर्षभ।
मणिपूरपतेर्देशमुपायात् सहपाण्डवः॥

कि हे पुरुषप्रवर जनमेजय! इस प्रकार क्रमशः विचरण करता हुआ वह अश्व अर्जुनसहित मणिपुर-नरेश के राज्य में जा पहुँचा।

दरअसल भीष्म को मार देने के कारण अर्जुन को यह शाप मिला था कि वह भी अपने ही पुत्र के हाथों मारा जाएगा। बभ्रुवाहन अनजाने में अपने पिता के साथ वही कर बैठता है। अंत में चित्रांगदा आकर उसे बताती है कि उसने क्या कर दिया है और तभी उलूपी आकर अर्जुन को पुनर्जीवित करती है।

शोकसंतप्तहृदया रुदती वेपती भृशम्।
मणिपूरपतेर्माता ददर्श निहतं पतिम्॥

इस उलूपी को नागकन्या कहा गया है जो संभवत: इसी मणिपुर और उसके पास की नागा जनजाति की प्रतीत होती है। उलूपी ने अर्जुन के वक्ष पर नागमणि रखी थी जिससे अर्जुन अपने चैतन्य को प्राप्त कर सके थे। बभ्रुवाहन को भी

उलूपी ने ही अर्जुन से युद्ध को उकसाया था। इस घटनाक्रम से यह स्पष्ट है कि यह मणिपुर की चित्रांगदा और नागा कहीं पास-पास ही रहते थे। वह क्षेत्र यही है, पर जो खेल एकरस करने वाली ताकतों को खेलना है उसमें ये उल्लेख बाधा बनते हैं तो अब कहा जा रहा है कि यह मणिपुर वह मणिपुर नहीं है। उलूपी की मणि से इस मणिपुर की स्मृति न हो, इन उलूकों के हिसाब से ही हो, इस ज़बरदस्ती का मिशन चल रहा है। पर वे अपने इन अनुल्लेखों से क्या यह छुपा लेंगे कि दुर्गा का तीसरा नेत्र मणिपुर को यों ही नहीं कह दिया गया होगा। **कंचनाभां मणिपुर स्थितां तृतीयं दुर्गा त्रिनेत्राम्।**

कि जब सती के रूप में इस देश की एक भू-देह की अवधारणा की गई थी, एक जैविक राष्ट्रीयता की-तब मणिपुर में सती का कटिवस्त्र गिरा बताया गया। वह मणिमैखला। आज जब नारियों के द्वारा जब तब वहाँ नग्न होकर विरोध प्रदर्शन किया जाता है। और जब उनके साथ बलात्कार की अक्षम्य घटनाएँ होती हैं। तब क्या कटिवस्त्र के गिरने का दुख हमें समझ में आता है?

कि दुर्गा के तीसरे नेत्र से ही वह समझ आयेगा? कि उसके लिए एक अलग ही दृष्टि चाहिए। कि वह शिव वेदना है? वही साहिर-कुछ भी न रहा जब बिकने को जिस्मों की तिजारत होने लगी। ख़ल्वत में भी जो ममनूअ थी वो जल्वत में जसारत होने लगी। स्टीवन पिंकर का कहना है कि-Each demographic pig makes its way through the population python.

शब्द कठोर लगते हैं। सुअर और सर्प की बात। पर यदि उन कठोरताओं से दूर रहकर हम आर्थर कैंप के शब्द ही याद रखें तो पर्याप्त है। उसके अनुसार जनांकि की ही नियति है। तो आज हम जनसंख्यात्मक परिवर्तनों पर चर्चा करेंगे।

फिलिप वायेथ अपनी कृति Reparations Maze में जनसंख्यात्मक उलटफेर की एक त्रासदी की ओर इशारा करते हैं। वे उन लोगों की बात करते हैं जो इस उलटफेर में कम से कम हुए जा रहे हैं। कि-ये जो लोग रौंदे जा रहे हैं, उनसे उम्मीद की जाती है कि वे अपनी गृहभूमि छिन जाने पर विलाप भी न करें, बल्कि सिर्फ उलट जायें और हमेशा के लिए बुझ जाएँ।

मणिपुर में जो काम सहस्राब्दियों में नहीं हुआ, वह आज़ादी के 75 वर्षों में हो गया है। जो जनांकिकीय शक्तियाँ आज़ादी के बाद सक्रिय हुईं, वे न केवल असामान्य थीं बल्कि भीतर ही भीतर थीं। एक समुदाय है जो निरंतर रिट्रीट की हालत में आज़ादी के बाद से ही है। और एक अंतर्राष्ट्रीय कोरस के कारण निरंतर दबाव में है। यहाँ तक कि यूरोपीय यूनियन ज्यादा बड़े मुद्दों को छोड़कर मणिपुर पर पहले बात करती है।

यदि मैं जेरेड टेलर (श्वेत अस्मिता : इक्कीसवींसदी में जातीय चेतना) के शब्द याद करूँ तो : 'वे लगातार रक्षणात्मक हैं, लगातार पीछे लौटते हुए। तब उनके पास एक ही विकल्प है। अस्मिता-बोध को और इस संकल्प को फिर से हासिल करना कि हम अपनी आबादी, उसकी परंपराओं और जीवनशैलियों को बनाये रखेंगे या मिट जाएँगे।'

यह परिवर्तन असामान्य है। इसे भारत सरकार के ही आँकड़ों से देखें तो एक निर्णायक परिवर्तन आज़ादी के तत्काल बाद का है। 1911 से 1921 के बीच मणिपुर की जनसंख्या वृद्धि दर 10.92प्रतिशत थी। 1941 से 1951 के बीच यह दर 12.80 प्रतिशत थी। तब ऐसी कौन सी demographic forces अतिस्फूर्त हुईं कि 1951 से 1961 के बीच यही दर एकदम से बढ़कर 35.04 प्रतिशत हो गई? और 1961 से 1971 के दशक में यह और भी बढ़कर 37.53 प्रतिशत हो गई? अगले दशक में भी यह 32.46 प्रतिशत रही।

क्या अचानक स्वतंत्रता के बाद मणिपुर के लोगों की उर्वरता बढ़ गई थी? अचानक सकल उर्वरतादर बढ़ गई या कहानी कुछ और है? कि जैसे स्वतंत्रता पर्याप्त जनक्रांति नहीं थी, तो यह जनसंख्या क्रांति हो गई? 1881 में मणिपुर की जनगणना में सिर्फ़ 7 ईसाई यहाँ रहते थे और हिन्दुओं की आबादी यहाँ

एक लाख तीस हज़ार आठ सौ बाइस थी। दो बौद्ध थे और चार हज़ार आठ सौ इक्यासी मुस्लिम। अंग्रेजों ने जनगणना में शुरुआत से ही चातुरी बख्शी थी तो 85, 288 लोगों को गिरिजनों की श्रेणी में रखा था गोया कि गिरिजन होना भी एक धर्म का होना था। यही खेल बाकी हिन्दुस्तान में भी खेले गये थे। एनिमिस्ट का नाम दे देकर।

यह नहीं कि गिरिजनों को ही इस तरह से पहले ही धर्मांतरण के निशाने पर रख लिया गया था बल्कि जिन मैतियों को आज हिन्दू कहकर निन्दा का केन्द्र बनाया जा रहा है, वे भी धर्मांतरण के भावी लक्ष्य हो सकते हैं, इसका द्वार भी यह कहकर खुला छोड़ा हुआ था–और यह मैं 1859 की बात बता रहा हूँ– कि मैती सतही तौर पर हैं। वे किसी 'अंतर्निष्ठा' के चलते हिन्दू नहीं हैं बल्कि फैशन के चलते हैं। ये आदर्श विचार थे श्रीमान मैक्कुलोच के। 1844 से 1862 के बीच जनाब यहाँ थे। वैसे बात वे मणिपुर के मैतेई के बारे में कह रहे थे लेकिन सच तो यह आज पूरे भारत में किसी भी ऐसे स्वनामधन्य के बारे में है जो नाम का हिन्दू है, काम से द्रोही है। और अब तो वह युग है जब भारत में उलटा है। फ़ैशन धर्मनिरपेक्ष होने का है और ऐसे होने की अंतर्निष्ठा जब परीक्षित होती है तो पता चलता है बस यह कि अपनी धार्मिकताओं का उपहास और दूसरी धर्मांन्धताओं का समर्थन ही उन्हें सेकुलर बनाता है। बहरहाल मैतियों के धर्मांतरण के लिए भी दरवाज़े खुले हैं और ऐसा होते ही उन पर लगे सारे पाप धुल जायेंगे। अंतर्राष्ट्रीय अपयश से भी छुटकारा मिल जायेगा। वे ही गुण गाने लगेंगे जो अभी किसी दल–विशेष में शामिल हो जाने पर सारे पाप धुल जाने के व्यंग्य करते पाये जाते हैं। सोचिये कि लोग इन धर्मांतरणकारियों को सतही नहीं कहते पर मैतियों को कह रहे थे। उन्हें जो अभी भी तमाम विपरीतताओं के बावजूद अपनी निष्ठाओं को क़ायम रखे हुए हैं। हालाँकि उन्हें अब उन्हीं के राज्य में अल्पसंख्यक बना दिया गया है।

जी हाँ, आज मैतियों के बारे में बहुमतवाद (majoritarianism) का आरोप लगाने वाले आज की वस्तुस्थिति से परिचित ही नहीं हैं। 1991 तक हिन्दू 57. 67प्रतिशत थे। वे 2011 तक 41.39 प्रतिशत हो गये जबकि ईसाई जो तब 34.11प्रतिशत थे, बढ़कर 41.29 प्रतिशत हो गये। महिलाओं के सम्बन्ध में देखें तो 1991 में हिन्दू महिलाओं की संख्या 5,19, 266 थी जो बढ़कर 5, 85, 656 हो गई। पर इसी अवधि में ईसाई महिलाओं की आबादी 3, 05, 829 से बढ़कर 5, 83, 565 हो गई। क्या यह वृद्धि असामान्य नहीं लगती ?

2021 की गणना हुई नहीं है। पर यह हो सकता है कि इस दर से हिन्दू वहाँ 35 फीसदी तक पहुँच चुके हों जबकि ईसाई वहाँ से बढ़कर 48 प्रतिशत तक पहुँच गये हों। और यों यह एक समुदाय है जो हो तो चुका है अल्पसंख्यक लेकिन जिसे बहुसंख्यक की तरह पेश किया जा रहा है। यह उसके घावों पर नमक है। उधर बहुसंख्यक होते ही अल्पसंख्यक का स्वभाव ही बदल गया है। दोनों को अपने इस नये यथार्थ का सामना करना है और अब सम्बन्धों के सर्वथा अपरिचित समीकरणों से गुजरना है।

एक के लिए जो परिवर्तन है, दूसरे के लिए वो पक्षाघात है।

यह कोई समन्वय नहीं है, यह अन्तरण है। इससे अन्तर पैदा हो गया है, यह नहीं। यह अन्तर था, इसलिए अन्तरण किया गया। मणिपुर का जनसंख्या शिफ्ट 1849 के केलीफोर्निया गोल्ड रश के दौरान चीनी लोगों के भारी संख्या में प्रवेश की तरह नहीं है जिसके चलते 1880 तक चीनी जनसंख्या वहाँ की कुल जनसंख्या का दस प्रतिशत हो गई थी। यह सस्ते श्रम की पूँजीपतियों की पसंद के कारण भी नहीं है जिसके चलते 1870 के दशक में ही केलीफोर्निया का एक बड़ा पूँजीपति बंदा बोला था कि 'मैं तो अपने कारोबार के लिए सिर्फ मसल्स चाहता हूँ। मुझे परवाह नहीं कि वह किसी चीनी की है या किसी गोरे की।' लेकिन इस तरह की प्रवृत्ति का परिणाम यह रहा कि अंतत: 1882 में वहाँ चीनी बहिष्करण अधिनियम आया। इसने 10 वर्षों तक चीनी श्रमिकों के अमेरिका में

प्रवेश पर ही रोक लगा दी। यह प्रतिबंध 1943 तक चला। इस दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका में 1885 में रॉक-स्प्रिंग नरसंहार हुआ जब कितने ही चीनी जिंदा जला दिये गये और चीनी परिवारों को अमेरिकी सरकार ने सिर्फ संपत्ति के नुकसान की भरपाई की, जनहानि पर कोई क्षतिपूर्ति राशि नहीं दी गई। न किसी की इस हत्याकांड पर गिरफ्तारी हुई, न किसी को इसमें हुए अत्याचारों पर जिम्मेदार ठहराया गया। इसी तरह 1887 में हेल्स केनयन हत्याकांड हुआ जिसमें कई चीनी मौके पर ही भून दिये गये और उनके भी परिवारों को अत्यल्प क्षतिपूर्ति मिली।

वह तो द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान के विरुद्ध चीन अमेरिका का साथी बन गया था तो 1943 में चीनी बहिष्करण अधिनियम वापस लिया गया। लेकिन काम निकलने के बाद 1956 से 1965 के बीच में फिर चीनी आप्रवासियों के विरुद्ध एक बड़ा अभियान चला और चीनी त्रुटि-स्वीकार कार्यक्रम चला।

चीनी बहिष्करण अधिनियम के खत्म होने के बाद तक भी श्वेतों और गैर-श्वेतों के बीच शादी पर प्रतिबंध चल रहे थे जो 'नस्ल मिलावट विरोधी कानून' (anti-miscegenation laws) कहलाते थे। शादी छोड़िए, यौन संबंध तक अपराध थे। 1967 में अमेरिकी उच्चतम न्यायालय ने इन अधिनियमों को असंवैधानिक घोषित किया। आज भी अमेरिका में सात राज्य हैं जो शादी करने वाले जोड़ों को आवेदन के साथ अपनी जातीय पृष्ठभूमि घोषित करने का भी आग्रह करते हैं और इसके बिना वे विवाह नहीं कर सकते।

क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि स्वतंत्र भारत में भारत के ही कुछ राज्यों में भारतीयों के ही विरुद्ध बहिस्करण कानून या विनिमय चलते रहे हैं? हम शेष भारतीयों को ग्लानि-ग्रंथि से व्यस्त कर देते हैं यदि किसी एक व्यक्ति ने भी किसी को 'चीनी' कह दिया। वह ग्लानि सही भी है क्योंकि वह किसी मनुष्य को अनावश्यक कोष्टकों में घेरती है और इसलिये भी सही है कि वह एक राष्ट्रद्रोही टीप होती है जब हम अपने ही किसी नागरिक को ऐसे पराया करते हैं और उसे चीनी या पाकिस्तानी अस्मिता से जोड़ देते हैं।

यह ग्लानि-ग्रंथि का निर्माण इसलिए किया जाता है कि हम एक समावेशी देश का आदर्श लेकर चल सकें। हमारे संविधान में आवासन और व्यवसाय की स्वतंत्रता है, लेकिन हमने अपने ही देश में स्वायत्तता के द्वीप निर्मित किये हुए हैं, और वे द्वीप भारतीयों के ही विरुद्ध हैं। यदि भारत से कोई मणिपुर में जनसंख्या वृद्धि नहीं कर रहा था और वहाँ की पचासी प्रतिशत आबादी की जनसंख्या की वृद्धि दर कम होती जा रही थी तो फिर यह तिगुनी रफ्तार की वृद्धि स्वातंत्र्योत्तर मणिपुर में कैसे होती रही? यदि इन अवधियों में हिन्दू एक हारती हुई नस्ल थे और यह जनसंख्या वृद्धि उनके योगदान का परिणाम तो नहीं थी, तब क्या अन्यों पर परिवार नियोजन के संदेशों का कोई प्रभाव या प्रवर्तन नहीं हुआ?

संविधान में 371 (A) नागालैंड, 371 B आसाम, 371 C, मणिपुर, 371 (F) सिक्किम, 371 (H) अरुणाचल प्रदेश, 371 (G) मिजोरम के लिए प्रावधान हैं। ये इन क्षेत्रों की विशिष्टता का स्वीकार हैं। लेकिन यदि संवैधानिक प्रावधानों की बारीकियों में जायें तो मणिपुर के सम्बन्ध में उतनी बारीकियाँ नहीं हैं जितनी नागालैंड या आंध्र प्रदेश या सिक्किम के बारे में हैं। यानी यहाँ वैसा कोई आश्वासन नहीं है जैसा कि नागालैंड के बारे में है कि संसद का कोई भी ऐसा अधिनियम जो नागाओं की धार्मिक या सामाजिक प्रथाओं या नागाओं के पारंपरिक क़ानून और प्रक्रियाओं के बारे में है तब तक नागालैंड में प्रवर्तित नहीं होगा जब तक कि वहाँ की विधानसभा इस आशय का संकल्प पारित नहीं कर देती।

जबकि मणिपुर के बारे में सिर्फ़ यह है कि इसके पर्वतीय क्षेत्रों के बारे में विधानसभा की एक समिति होगी और पर्वतीय क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में राज्यपाल प्रतिवर्ष एक प्रतिवेदन राष्ट्रपति को भेजेगा। यानी मणिपुर को कोई विशेष पृथकता नागालैंड की तरह नहीं अवधारित की गई थी। फिर भी मणिपुर

में 1873 के बंगाल पूर्वी सीमांत विनियम के तहत मणिपुर भीतरी रेखा अनुज्ञा प्रणाली आज भी जारी है। इसमें नियमित अनुज्ञा, अस्थाई अनुज्ञा, श्रम अनुज्ञा और विशेष अनुज्ञा शामिल हैं। यदि कोई ग़ैर-मणिपुरी व्यवसाय आरंभ करना चाहता है तो उसे मणिपुर के किसी स्थाई निवासी का प्रायोजन चाहिए होगी। तो जब इतनी सावधानी रखी गई है तब एक समुदाय-विशेष की जनसंख्या वृद्धि के वे कौन से कारण हैं जो दूसरे उस समुदाय पर लागू नहीं होते जिसकी आबादी लगातार गिरती जा रही है?

देखा जाये तो पेसा कानून ने संविधान की छठी अनुसूची के विकल्प का इस्तेमाल भले न किया हो लेकिन रूढ़िजन्य सामान्य विधि और प्रक्रियाओं के अनुरूप अधिनियम बनाए जाने का कर्तव्य पूरे देश के वनवासी क्षेत्रों पर लागू कर दिया है। अब वह बात अलग है कि यह पूछा जाये कि जिसे अलैन टूरैं ने समाज का आत्म-उत्पादन कहा है-वह कुछ अंचलों की ज़रूरत है या समस्त भारत की? कि यह आत्म-निर्भरता एक नृतत्वशास्त्रीय मुद्दा है या ग्राम स्वराज का आदर्श है? क्या संविधान ने कुछ बंद प्रकोष्ठ बनाये हैं? क्या जिन अधिकारों का वादा मणिपुर के नागरिकों से है, वे हर व्यक्ति के मानवाधिकार नहीं हैं? वे 'बचा खुचा रह गया समाज' नहीं हैं। न वे 'जिंदा जीवाश्म' हैं। वे 'अन्य' क्यों हैं? जब तक वे 'अन्य' हैं, तब तक वे अनुपस्थित हैं : The other is structurally absent-always unreachable (Francis Dominic Degnin : 1995, Laughter and Metaphysics। पश्चिम नृतत्वशास्त्रियों के पूर्व, क्या वे उसी सांस्कृतिक विश्व का हिस्सा न थे जिसमें शेष भारत के लोग भी थे। उसमें यदि दमन भी था तो भी वह उसी विश्व 'में' था, लेकिन अब 'अन्य' की राजनीति उन्हें 'वस्तुकृत' करती है।

अपने संस्कारों और संदर्भों के अनुरूप विकास का अधिकार भारत की सभी स्थानिकताओं को है, सिर्फ़ मणिपुर या नागालैंड या मिज़ोरम जैसे राज्यों को ही नहीं। एक अद्वैतवादी भारत में 'दूसरा' कोई नहीं है, लेकिन अद्वितीय सभी हैं।

धर्मांतरणकारी शक्तियाँ लगातार एक अन्यीकरण का खेल खेलती रहतीं हैं। वे अपनों को पराया बताती जाती हैं। पहले कहती हैं कि 'यह' तुम्हारा धर्म नहीं है। फिर कहती हैं कि तुम्हारा कोई धर्म नहीं है। फिर कहती हैं-हम बैठे हैं न।

मैतेई 'रूढ़िवादियों' की शिकायत है कि अब जब पर्वतीय क्षेत्रों में धर्मांतरण लगभग शत-प्रतिशत हो गया है तो अगले लक्ष्य मैतेई को लगातार बताया जा रहा है और कई पुस्तकों में योजनाबद्ध उल्लेख आ चुका है कि हिन्दू धर्म का 'आरोपण' उन पर अठारहवीं सदी में हुआ। कुछ समय बाद जब पर्वत और घाटी दोनों पूरी तरह धर्मांतरित हो जायेंगे तो मणिपुर में सम्पूर्ण शान्ति आ जायेगी। तब तक अशांति की उज़रतें चुकाइये। पर्वत और घाटी के ऐसे ही संघर्ष को तुत्सी और हूतू जातियों के बीच रवांडा में देखा भी गया। कुर्दों और अरबों की लड़ाई भी घाटी और पार्वत्य आबादी की ही लड़ाई है। लड़ाई का यह प्रादर्श है ही विदेशी, अन्यथा हमारे यहाँ तो गंगा पर्वतों से उतरकर मैदानों और घाटियों को तीर्थांकित करती चलती है।

तो जब तक मणिपुर में शांति का वह दृष्टि नहीं होता, कोई सह-मानवीकरण की उम्मीद न रखें। जैसे नागालैंड मिशन अपनी संपूर्ण विजय के बाद अब कह रहा है कि God has created the Naga people in Christ Jesus as a New People of God। वैसे ही कुछ दशकों में मणिपुर के लिए भी कहेगा।

सोचिये कि संवैधानिक संरक्षण विशेषत: इसलिए दिया गया था कि वे कथित रूप से आदिवासी हैं और अब वे "New People" बन गये हैं। बात तो संविधान ने उनकी परंपराओं और प्रथाओं के संरक्षण वाली की थी। वहाँ तो लोग ही नये नहीं, मानवता भी नई है। स्वयं मिशन के आदरणीय शब्दों में-Nagas are brought into the fellowship of the

household of God and they are now the members of the New Humanity in Christ Jesus. न्यू ह्यूमैनिटी अद्भुत बात। संविधान तो यह कहता था कि नागा पारंपरिक कानून के निर्णयों में नागरिक और आपराधिक न्याय प्रशासन शामिल है, भूमि और उसकी संपत्ति का स्वामित्व और स्थानांतरण, नागालैंड राज्य पर तब तक लागू होगा जब तक नागालैंड की विधान सभा द्वारा कोई संकल्प ऐसा निर्णय नहीं लिया जाएगा; कहकर भारत राज्य को जहाँ रोक दिया गया वहाँ मिशन को जारी रहने दिया गया। स्थानीयता के आधार पर भारत राज्य को स्थगित किया गया। और जब जागे तो देखा कि ये तो एक 'वैश्विक व्यवस्था' का हिस्सा बन गये। उधर मिशन को यह आपत्तिजनक लगता है कि उन्हें क्रमिक गोरी-गजनवी / क्रमशः क़ासिम/ रेंगते ऐबक / मंदगति औरंगजेब की तरह बरता जाये। उनकी शिकायत वाजिब भी है। उनकी सादगी पे कौन न मर जाए ऐ ख़ुदा। इधर मैतेई 'रूढ़िवादी' हैं कि नागालैंड को अपनी प्रत्यक्ष नियति मानने से इंकार करने की जुर्रत कर रहे हैं।

जबकि उनकी तो रूढ़ि तक के सम्मान का कोई वादा संविधान ने नहीं किया। जिनका किया था वे तो अब Kingdom of God में और जिनका नहीं किया वे नखरे दिखा रहे। अब ये नखरेवाले कौन होते हैं कि बोलें इजिप्ट, नाइजीरिया, अल्जीरिया, इथियोपिया, सूडान,मोरक्को, कैमरून, ट्यूनीशिया जैसे देशों में धर्मांतरण के लिए मिशनों को स्वयं को शासन के सामने न केवल पंजीकृत कराना पड़ता है बल्कि धर्मांतरण या किसी धार्मिक गतिविधि को चलाने के लिए अनुमति लेने की आवश्यकता होती है। धर्मांतरण में भय या दबाव के अन्य प्रकारों का इस्तेमाल करने पर जेल और जुर्मानों की व्यवस्था है। दबाव में किसी की असहायता, कमजोरी या अज्ञान का लाभ उठाना भी शामिल है और वादे करना या उपहार देना भी। जापान में न केवल पंजीयन ज़रूरी है बल्कि इस हेतु दान लेना या राजनीतिक गतिविधियों में प्रवृत्त होना भी प्रतिबंधित है। वियतनाम में राष्ट्रीय एकता या सामाजिक व्यवस्था को नुक़सान न पहुँचाने की शर्त है।

कितनी ख़राब बात है न कि मैक्सिको, वेनेजुएला और अर्जेंटीना में विद्यालयों और सरकारी भवनों में धार्मिक गतिविधियाँ नहीं चलाई जा सकतीं जबकि भारत में उनका एक तरीक़ा ही स्कूल खोलने का है! उससे ज़्यादा ख़राब बात है कि जनजातीय क्षेत्रों में तो अधिकांश देशों में अधिक कड़ा नियमन है! ब्राज़ील में इन क्षेत्रों में बाहरी धार्मिक गतिविधियों को करने से पूर्व राष्ट्रीय इंडियन प्रतिष्ठान (FUNAI) से अनुमति लेनी पड़ती है। केन्या में नेशनल पार्क, गेम रिज़र्व, संरक्षण क्षेत्रों में धर्मांतरण प्रतिबंधित है। वहाँ धार्मिक समाज नियम (रिलीजस सोसाइटी रूल्स) बने हुए हैं जिसमें लोक व्यवस्था और नैतिकता भी भय, दबाव, प्रलोभन जैसे आधारों में शामिल है। तंज़ानिया के धार्मिक संगठन अधिनियम और युगांडा के स्वयंसेवी संगठन अधिनियम भी यही करते हैं। भारत का गोचर अच्छा है। इन सब चक्करों में नहीं पड़ता। कुछ चतुराइयाँ हैं जिनसे अपने अभियान को दो जातीय समुदायों के बीच की लड़ाई में तब्दील कर दिया जाता है-कूकी और मैतेई की लड़ाई में। पर मैत्री को तोड़ने कूक कौन रहा है?

मीठी बोली वाली दक्ष सभ्यता कैसे लड़ने वालों को दुनिया के सामने असभ्य बता देती है। और तब अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को भी लगने लगता है कि हाँ, सभ्यीकरण का मिशन अभी भी प्रासंगिक है। पर दक्ष का उत्तर तो आदियोगी ही हैं।

(मनोज श्रीवास्तव)
राम-रज, 3-पारिका-फेज 2,
चूना भट्टी, कोलार रोड,
भोपाल-462016 (म.प्र.)
मो.-9425150651
ईमेल-**shrivastava_manoj@hotmail.com**

अनुक्रम - अंक 222 सितंबर 2023

सम्पादकीय
साधो सबद साधना कीजै
सुरख़ाब के पर / **अजित वडनेरकर**/13
समय और विचार - 37
विचार चेतना है वेदना नहीं / **रमेश दवे**/15
धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित समाज शास्त्र - 6
संततियों के प्रकार और सम्पत्ति विभाजन/ **रामेश्वर मिश्र पंकज**/18
पाण्डवों का द्वैतवन में प्रवेश और महर्षि मार्कण्डेय का धर्मादेश/ **कुसुमलता केडिया**/22
अनुवाद
जो चाँद को अपने घर ले आये (**मूल : नील जॉन**) / **अनु. विभा खरे**/25
आलेख
शिक्षक की आत्मा का दर्पण है अध्यापन/ **उमराव सिंह चौधरी**/26
हिंदी के अग्रदूत किशोरीदास वाजपेयी / **प्रकाश मनु**/28
भाषायी अस्मिता और भारतेन्दु हरिश्चंद्र/**सदानंद प्रसाद गुप्त**/39
राष्ट्रभाषा हिंदी ही सर्वोपरि / **ओम उपाध्याय**/44
राष्ट्र-नीति / **प्रमोद भार्गव**/46
जीवन दिगंत काव्य संग्रह में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना / **खेमसिंह डहेरिया**/50
हिन्दी का सरलीकरण और मानक भाषा रूप / **सनत**/52
शोधालेख
सांध्य-पथिक उपन्यास में चित्रित वृद्ध विमर्श / **महेश बापूराव चव्हाण**/56
अंधा युग की गांधारी : एक समाज मनोवैज्ञानिक पात्र /**गौरव कुमार गुप्ता**/60
श्री रामचरितमानस : तुलसी की दृष्टि और श्री राम का समन्वय / **जया सिंह**/63
इतिहास के पन्नों से आज के चलचित्र उकेरते माथुर और मोहन राकेश/**सुरभि नामदेव, डॉ. धीरेंद्र शुक्ल**/67
साहित्य और स्त्री अस्मिता के प्रश्न : मृदुला सिन्हा / **अखिलेश कुमार शर्मा**/72
कहानियों में स्त्री विषयक चिंतन / **अजिता मिश्रा**/78
पॉल गोमरा का स्कूटर : उदयप्रकाश / **सुमन आचार्य**/83
ललित निबंध
चार का चातुर्य / **उमाशंकर चतुर्वेदी**/88
आत्मकथ्य
शब्द में जिया, अर्थ में व्यर्थ / **रमेश दवे**/94
अनुवाद
अपरिचिता (बांग्ला कहानी) मूल : अभिज्ञान रायचौधरी / **अनु. : नीलम शर्मा 'अंशु'**/97
कहानी
अनाम रिश्ते / **शेर सिंह**/101
मोनालिसा-2 / **मंजुश्री**/106

भूल सुधार / **कुसुम रानी नैथानी**/114
कविता
प्रेम /**अशोक वक्त**/119
ग़ज़ल
सपने / **अश्वघोष**/121
समीक्षा
थेल्मा (अनु. : संतोष रंजन, मूल : मेरी कोरिली) / **जयप्रकाश मानस**/122
नासमझ मन-भज मन (मालती बसंत) / **मनोरमा पंत**/125
सींग वाले गधे (प्रेम जन्मेजय) / **गोकुल सोनी**/127
न काहू से दोस्ती हमरा सबसे बैर (साधना बलवटे) / **सुनील जैन राही**/130
टीनू का पुस्तकालय (नीना सिंह सोलंकी) / **राकेश चन्द्रा**/131
कैथरीन एवं नागा साधुओं की रहस्यमयी दुनिया (संतोष श्रीवास्तव) **जयाकेतकी**/132

➤ **आवरण**

'मेरे चितेरे मन में हिन्दी'
(Theme of my painting?)

इस स्कूली बस्ते में हिन्दी माध्यम की पुस्तकें बेतरतीब भरी हुई हैं, ये उस विद्यार्थी का बस्ता नहीं है जिसे सुबह प्यार से उठा कर लाड़ से तैयार कर, टिफिन देकर, पुस्तकों को फुर्सत से बस्ते में जमा कर, माथा चूम कर स्कूल भेज दिया गया हो। ये तो उस बच्चे का मैला- सा बस्ता है जिसमें हर चीज़ का अभाव है। नहाना तो दूर पीने के पानी का अभाव है। शायद रात भर मजदूरी की हो, जागा हो वक्त का अभाव है। शायद खाली पेट हो साधन का अभाव हो, वो मीलों पैदल चल कर आया हो। लेकिन इतने अभावों के बाद भी 'ज्ञान की भूख का अभाव नहीं है और हमारी हिन्दी माता तो इतने में ही तृप्त हैं।'

यह बस्ता फटा हुआ है क्योंकि हिन्दी माध्यम, देश के गरीब से गरीब, पिछड़े से पिछड़े कोने में भी स्कूल की छत, दीवार और किसी संसाधन के बिना भी, सरस्वती माँ का दूत बन सहजता से खड़ा नजर आया है। किसी झुग्गी में, किसी पेड़ के नीचे भी, नदी किनारे भी, किसी बच्चे से दृष्ट व्यक्ति तक भी किसी बच्ची से वृद्ध महिला भी। या किसी अव्यावसायिक या जुनूनी शिक्षक द्वारा हारसी, हिन्दी का दिव्य, ज्ञान स्वत: ही बिखरता आया है। घर के कर्मचारियों को भी खाली समय में पढ़ा देने को पुण्य समझने वाला हिन्दुस्तान है ये।

यहाँ हिन्दी माध्यम के स्कूली बस्ते को धरती पर इसलिए रखा दिखाया है कि हिन्दी हमारी नीव है। आधार है, जन्म के साथ ही हमारे व्यक्तित्व का पालन-पोषण करने वाली, मातृ भाषा, और माँ को धरती समान माना जाता है। इस बस्ते में से हिन्दी की एक सुन्दर लाल रंग की किताब भी, निचले फटे हिस्से से झाँक रही है। यहाँ मेरे चित्रकार मन ने हिन्दी की किताब को किसी पवित्र ग्रंथ का दर्जा दिया है। खुशी के लाल रंग में लिपटी ये छोटी सी किताब अगर किसी के हाथ में आ जाए तो, दृष्टि से दृष्टिकोण बदलते हुए, सोच का भ्रम मिटाते हुए, क्या पाताल क्या ब्रह्माण्ड सृष्टि के हर क्षण का दर्शन कराती है। और जीवन के समृद्धि के प्रतीक हरे रंग का यह बस्ता रंग की किताबों से भरा हुआ है। जीवन का-कोई भी रंग हिन्दी से अछूता नहीं है। बस्ते में से पीली धरती पर गिरती सफेद चॉक, हिन्दी की सद्भावनापूर्ण आत्मा को दर्शाती है। चॉक से धरती पर लिखो या अँगुली से आईपैड पर हिन्दी और हिन्दुस्तान यहाँ हर भाषा महान लेकिन हिन्दी हमारे देश की एक सबसे विस्तृत और समृद्ध संभावना। ये चित्र मेरे चितेरे मन का नमन है हिन्दी भाषा को।

- क्षमा उर्मिला

सुरखाब के पर

– अजित वडनेरकर

जन्म – 1962।
शिक्षा – हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि।
रचनाएँ – पाँच पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – राजकमल प्रकाशन का विद्यानिवास मिश्र कृति पांडुलिपि सम्मान।

किसी अद्वितीय गुण, ध्यान आकर्षित करने वाली विशेषता या विलक्षणता की अभिव्यक्ति के लिए 'सुरखाब के पर' मुहावरा बोलचाल की भाषा में खूब इस्तेमाल होता है। मसलन 'इंदौर में क्या सुरख़ाब के पर लगे हैं जो भोपाल में गुज़र नहीं हो सकती ?' सुरख़ाब यानी हंस की प्रजाति का एक पक्षी जिसके पखों की खूबसूरती की वजह से प्राचीनकाल से इस पखेरू को ख़ास रुतबा मिला हुआ है। हंस जहाँ सफेद रंग के होते हैं वहीं सुरखाब अपनी पीली, नारंगी, भूरी, सुनहरी व काली रंगत के पंखों की वजह से अत्यधिक आकर्षक होते हैं। ख़ूबसूरत, मुलायम, रंगीन पंखों का उपयोग कई तरह के परिधानों में होता रहा है जिसकी वजह से दुनियाभर में इनका अंधाधुंध शिकार होने से अब सुरख़ाब दुर्लभ प्रजाति के पक्षियों में हैं और इसके शिकार पर पाबंदी है।

बहुरंगी कान्ति :– सुरख़ाब को अंग्रेजी में रूडी शेलडक Ruddy Shelduck कहते हैं जिसका अर्थ है रंगीन हंस। अंग्रेजी के रूडी शब्द में रक्ताभ, सुर्ख या चटक का भाव है। डक यानी बतख। यूँ देखें तो इसे सुर्ख़+आब यानी सुर्ख़ाब कहना ग़लत नहीं है। मगर यह इसकी व्युत्पत्ति का आधार नहीं है। रंगों के संदर्भ में चटक, गहरा या तेज़ भाव वाला सुर्ख़ शब्द हिन्दी में फ़ारसी से आया और यह संस्कृत के शुक्र का रूपान्तर है। रंग से ताल्लुक रखती एक और महत्त्वपूर्ण बात। वैदिक शब्दावली में अनेक शब्द हैं जिनमें एक साथ सफ़ेद, पीला, लाल, हरा और कभी-कभी भूरे रंग का भाव उभरता है। संदर्भों के अनुसार उस रंग का आशय स्वत: स्पष्ट होता जाता है। इसीलिए कान्ति या दीप्ति की अर्थवत्ता वाले शब्दों में प्राय: इन सभी रंगों का भी बोध होता है। संस्कृत के शुक्र में जहाँ श्वेताभ, पीताभ, रक्ताभ जैसी महत्ता है वहीं फ़ारसी में शुक्र से बने सुर्ख़ में चटकीला लाल ही रूढ़ हुआ। सुरख़ाब में सुर्ख़ की कोई भूमिका नहीं है। जिस तरह चक्र से सुर्ख़ बना उसी तरह इसी सुरख़ाब के मूल में संस्कृत का चक्रवाक है।

सुनहरी हंस या हिरण्यहंस :– संस्कृत में सुरख़ाब चक्रवाक का एक नाम हिरण्यहंस भी है। हिरण्य यानी सोना अर्थात् सुनहरी हंस। सुरख़ाब के संस्कृत में अन्य कई नाम भी हैं जैसे चक्रवाक, रथचरण, वियोगिन, द्विक, अवियुक्त, हरिहेतिहूति, द्वन्द्वचर, निशाचर, भूरिप्रेमन्, द्वन्द्वचारिन्, गोनाद, रथाङ्ग, नादावर्त आदि। इसी तरह हिन्दी में इसे कोक, कोकहर, कोकई, चकई, चक्कवा, चाकर, चकवाह कहते हैं। प्राकृत में इसे रहंग कहा गया है और मराठी में इसका एक नाम ब्राह्मणी बदक Brahminy Duck भी है। सुरख़ाब दरअसल संस्कृत के चक्रवाक का फ़ारसी रूपान्तर है। अनुमान किया जाता है कि ध्वनि परिवर्तन के साथ विकासक्रम-चक्रवाक > शक्रवाक > शर्कवाब > सर्खवाब होते हुए सुरख़ाब हुआ होगा।

किर-किर, खर-खर वाली विघ्नध्वनियाँ :– हिरण्य हंस या सुनहरी हंस के चक्रवाक नामकरण के पीछे दरअसल रंग नहीं बल्कि उसकी विशेष आवाज़ है। मराठी संदर्भों के मुताबिक चक्रवाक नामकरण के पीछे संस्कृत में 'चक्र इव वाक् शब्दोऽस्य रथाङ्गतुल्यावयन' कारण बताया गया है। इसका मतलब हुआ

रथ के चक्के में चिकनाई (लुब्रिकेंट) न डाले जाने पर जिस तरह किर–किर, खर–खर ध्वनियाँ पैदा होने से किरकिराहट की आवाज़ आती है, चक्रवाक भी अपने गले से वैसी ही आवाज़ निकालता है। संस्कृत में चक्र यानी चक्का और वाक् यानी आवाज इस तरह चक्र + वाक = चक्के जैसी (रथ के पहिए समान) आवाज़ निकालने वाला पक्षी। चक्रवाक का एक अन्य नाम रथाङ्ग से भी यह स्पष्ट है। कर्नाटक संगीत में इस पक्षी के नाम पर एक राग–चक्रवाकम् Chakravakam भी है।

शृंगार–वर्णन में चक्रवाक :– प्राचीन कवियों के शृंगार–वर्णन में चक्रवाक का कई बार उल्लेख आता है। नर पक्षी को चक्रवाक और मादा को चक्रवाकी कहते हैं। हिन्दी में चकवा, चकवी (चक्रवाक > चक्कवा > चकवा / चक्रवाकी > चक्कवी > चकवी–चकई) जैसे शब्द इससे ही बने हैं। चकवा–चकवी शाश्वत प्रेम प्रतीक हैं। दिनभर साथ रहने के बाद चक्रवाक और चक्रवाकी अलग–अलग हो जाते हैं और रातभर विरह की अकुलाहट में कुर–कुर ध्वनि करते रहते हैं। मराठी संदर्भों में यह ध्वनि 'आंङ्ग–आङ्ग' बताई गई है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य का इतिहास में 'चक्रवाक–मिथुन (चकवा–चकई)' शीर्षक आलेख में इस पक्षी के बारे में विस्तार से लिखा है। चक्रवाक chakravak शरत्काल में भारत के जलाशयी क्षेत्रों में नज़र आता है और शेषकाल में यह अपने पर्यावास में लौट जाता है। स्वभावत: ये जोड़े में रहने वाला पक्षी (रूडी शेल्डक) है और मादा एक बार में 50–60 अंडे देती है।

जी–37 , फेज–1, ग्रीन मीडोज
भोजपुर रोड, पी.ओ. मिसरोद,
भोपाल–462047 (म.प्र.)
मो.– 6265739044

रचनाकारों से अनुरोध

- *मौलिक तथा अप्रकाशित–अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।*
- *रचना फुल स्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित मूल प्रति में भेजें।*
- *रचनाकार/लेखक अपना पूरा परिचय, पता, पिनकोड, फोन नंबर एवं फोटो साथ भेजें।*
- *डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचना वापस भेजी जा सकती है। अत: लेखकों से निवेदन है कि लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।*
- *'अक्षरा' में प्रकाशन हेतु रचना भेजने के बाद उसे अन्यत्र प्रकाशन हेतु न भेजें। यदि अन्यत्र प्रकाशित हो रही हो तो कार्यालय को अवश्य सूचित करें।*
- *आप अपनी रचनाएँ* **myakshara18@gmail.com** *पर ई–मेल द्वारा भी भेज सकते हैं।*

विचार चेतना है वेदना नहीं

- रमेश दवे

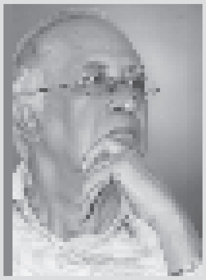

वरिष्ठ साहित्यकार एवं शिक्षाविद।

जन्म - 8 जून 1936।

रचनाएँ - पचास से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान - कुसुमांजलि साहित्य सम्मान, सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

विचार का संसार विचित्र होता है। विचार आते हैं, कुछ समय ठहरते हैं और फिर किसी अज्ञात अंधकूप में समा जाते हैं। आधुनिकता एक विचार के रूप में विचार तक ही सीमित न रहकर, एक नई सभ्यता बनी, नया चरित्र और आचरण बनी और मनुष्य के तमाम सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक व्यवहारों में क्रांतिकारी परिवर्तन भी आए। आधुनिकता ठहरने नहीं आई, वह तो समूचे ब्रह्माण्ड में विचरण करने आई, विश्वभर में छा गई। आदमी की सोच बदली, खान, पीन, वस्त्र, जीवन प्रणाली कार्य प्रणाली, भाषा, साहित्य, कला सब में जबरदस्त परिवर्तन भी आए और एकान्तवादी विचारक भी सामाजिक बनकर विमर्श-संग्राम में कूद पड़े। आधुनिकता को ईसाई सभ्यता अपनी देन मानती है तो इस्लाम कहता है आधुनिकता तो इस्लाम ने रच कर मनुष्य को उसकी आदिम सभ्यता से बाहर निकल कर तहजीब की ताकत दी। वैसे हिन्दू सभ्यता को सदैव अतीतवादी माना गया लेकिन क्या हिन्दी या हिन्दू आधुनिकता नाम का कोई विचार आया? हिन्दू शब्द जब भी अपनाया गया हो, मगर इतना अवश्य है कि जब भारत के विद्वान ईरान गए, जरूस्तात, नौशेरवाँ आदि द्वारा आमंत्रित किए गए तो उन्हें 'हिन्दू' न कहकर कहा गया कि भारत से संस्कृत के 'हिन्दी आलिम' आए हैं और भारत का तत्कालीन समाज जब भी बाहर गया तो उसे हिन्दू के बजाय हिन्दी-समाज कहा गया जो जाति या धर्म-सूचक था, न कि 'हिन्दू-सूचक।' हिन्दू सभ्यता को पश्चिम ने पाँच हजार साल से अधिक पुरानी तो माना, मगर आधुनिकता से जोड़ कर नहीं देखा, जबकि ज्ञान-विज्ञान, शोध, साहित्य आदि क्षेत्रों में भारत जितना आधुनिक रहा, उतना तो कई देश नहीं रहे। अब प्रश्न यह उठाया जा रहा है कि क्या आधुनिकता का अंत हो गया और उत्तर-आधुनिकता या उत्तर-उत्तर-आधुनिकता ने नए विचारों, विमर्शों और व्यवहारों के साथ, आधुनिकता की भूमि पर नाजायज़ या जायज कब्जा कर लिया और आधुनिकता को भी किसी पुरातत्व का प्रसंग बना कर पुरातत्ववादियों को उत्खनन के लिए सौंप दिया?

उत्तर-आधुनिकता विमर्शों का नगाड़ा बजाती हुई आई और फिल्म, राजनीति, साहित्य (विशेष रूप से कहानी-उपन्यास-नारफ) समाज-शास्त्र आदि क्षेत्रों में उसने बड़े हस्तक्षेप किए लेकिन सर्वाधिक प्रभावशाली विमर्श पैदा किए गए स्त्रियों, दलितों और कलाओं को लेकर आधुनिकता को खारिज करने का यह एक छल है।

स्त्री-विमर्श :- स्त्री-संसार सदैव उत्पीड़िता का संसार रहा है। भले ही भारतीय शास्त्रों ने उसे लेकर देवी, महादेवी, शक्ति, लक्ष्मी, सरस्वती अनेक प्रकार और रूपों-गुणों की महानता के श्लोक या काव्य गढ़ दिए हों पर सत्य है कि हमारा सम्पूर्ण शास्त्र स्त्री का सत्य कभी नहीं बना। यदि शास्त्र सम्मत विचार व्यवहार भी बनता तो स्त्री दुर्दशाग्रस्त, अपमानग्रस्त, उपेक्षाग्रस्त और प्रताड़ित नहीं होती। यह केवल भारत का ही सत्य नहीं है बल्कि पूरे विश्व का भी सत्य है, सभी धर्मों का भी सत्य है जो स्त्री के नाम पर तरह-तरह के पाखण्ड-प्रवचन करते रहे हैं। पश्चिम के देशों ने भी समानता के विमर्श तो खूब किए मगर क्या वहाँ स्त्री समानता आज तक भी कायम हो सकी? आधुनिकता से लेकर उत्तर-आधुनिकता तक विमर्श ही विमर्श मगर निकला क्या अमर्ष, अपकर्ष और समानता के नाम पर शब्दाडम्बरों से भरे दस्तावेज या ग्रंथ। यूरोप ने स्त्री को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाकर उसे थोड़ा आत्मविश्वास तो दिया और पुरुष-पराधीनता के प्रपंचों से मुक्त भी किया मगर आर्थिक आत्मनिर्भरता ने समरसता और सद्‌भाव तो कम, अहंकार, बहिष्कार और पारिवारिक कलह अधिक पैदा किए जो पश्चिमी सभ्यता में तलाक का अधिकार तो बन गए समानता का संसार नहीं।

स्त्री विमर्श 'समानता' का विचार लेकर आया तो अवश्य मगर

क्या समानता सत्य बन सकी? आज भी स्त्रियों एवं लड़कियों की मण्डियाँ कई देशों में जारी हैं, अफ्रीका की गुलाम मण्डियाँ कुछ हद तक समाप्त हो गई हैं मगर महिला-मंडियाँ तो आज भी कायम हैं, वेश्यालय तो यूरोप और अमेरिका में भी कायम हैं। और दक्षिण-पूर्व के अनेक देशों में तो सेक्स इकानामी भी राष्ट्रीय विकास दर बन गई है। भारत की हालत तो भयावह है, यहाँ तक कि यह कहा जाता है मध्य प्रदेश की कुछ अन्तर प्रांतीय सीमाओं पर अब भी स्त्री-विक्रम की मंडियाँ हैं, आंध्र, तेलांगना में खाड़ी देश के अमीर आते हैं और बीबी का झाँसा दे कर लड़कियाँ खरीद कर ले जाते हैं।

भारत में संभवतया स्त्रियों की असमानता, उनका उत्पीड़न देह शोषण, दहेज-दहन और अनेक प्रकार की यंत्रणाओं का त्रासद और वीभत्स इतिहास भोग रही है। क्या ग्रामीण और क्या शहरी, यहाँ तक कि सर्वाधिक पढ़े-लिखे और तथा कथित उच्चवर्गीय सम्य घरों में स्त्री या उत्पीड़ित, शोषित है या यदि वह आत्मनिर्भर है तो तलाक का रास्ता अपनाती है। लिव-इन रिलेशंस ने तो स्त्री को एक वस्तु या कमाडिटी में बदल दिया है। कांट्रेक्ट मेरिज केवल यौन तृप्ति का अमीर तरीका है। ऐसे में स्त्री समानता का विमर्श चाहे चीन भारत या एशिया में हो या यूरोप, अमेरिका, लेटिन अमेरिका और अफ्रीका, आस्ट्रेलिया में, यह सब एक प्रकार का बड़े-बड़े अकादमिक संस्थानों, अन्तर राष्ट्रीय संगठनों, एन जी ओ आदि का धन-बहाऊ पाखण्ड ही है। स्त्री-समानता ही क्यों? स्त्री पुरुष से श्रेष्ठतर क्यों नहीं, स्त्री पुरुष से अधिक आर्थिक सम्पन्न क्यों नहीं? ये शहरी विमर्श ग्रामीण जीवन की समरसता आज तक भी खंडित नहीं कर सके क्योंकि ग्रामीण खेतिहर परिवारों और श्रमिक परिवारों में स्त्री बराबरी का काम करके पुरुष का सहयोग करती है। अनपढ़ स्त्री ज्यादा सभ्य है और पारिवारिक जीवन को संतुलित रखने में जो भूमिका निभा रही है, बिना समानता का अधिकार माँगे, क्या यह भारतीय जीवन प्रणाली की उपलब्धि नहीं है। केवल उत्पीड़नों के नाम पर स्त्री-विमर्श कहाँ तक जायज है? यदि समानता एक ईमानदार कोशिश है तो स्त्री का स्वस्थ, शिक्षित, आर्थिक आत्मनिर्भरता और अपने अस्तित्व, अधिकार और अस्मिता के प्रति क्रियाशील बनाना होगा, केवल लच्छेदार अंग्रेजी भाषा के दस्तावेजों में समानता के सूत्र देने से कुछ नहीं होगा।

दलित-विमर्श :-'दलित' शब्द से क्या किसी सम्मान का भाव उन लोगों के प्रति पैदा होता है जो सदियों से उत्पीड़न, अपमान, अत्याचार और उपेक्षा का सवर्ण-व्यवहार सहते रहे हैं? उन्हें कभी 'नीच जाति' कहा गया, 'शूद्र' शब्द तो हमारी पूरी हिन्दू-रूढ़ियों में अछूत के रूप में प्रयुक्त होता रहा। अब अछूत या अस्पृश्य की जगह नए शब्द खड़े किए गए हैं जैसे गाँधी जी का 'हरिजन', आधुनिक-उत्तर आधुनिकों का 'सबार्लटन' हिन्दी बौद्धिकों का 'दलित।' यह सब कह देने से क्या शूद्र, अछूत, अस्पृश्य, नीच जाति और अन्य जाति सूचक शब्दों के सच्चे अर्थ और व्यवहार में फर्क आया? क्या सब दलित सवर्णों के साथ एक जाजम पर उसी तरह बैठने लगे जिस प्रकार बौद्ध, ईसाई और मुस्लिम एक हो कर जाति-रहित एक जाजम पर बैठते हैं? 'दलित' कह देने से क्या उनके प्रति सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक और जातिगत व्यवहार बदला? यदि थोड़ा उदाहरण के लिए या दिखावे के लिए बदलने की कोशिश की गई तो उन्हें रिजर्वेशन सरकारी स्तर पर देकर कुछ कार्यों में प्राथमिकता दे दी गई। यदि देश की सम्पूर्ण आबादी का 20-25 प्रतिशत दलित वर्ग है तो क्या 20-25 प्रतिशत अवसर और नौकरियाँ अथवा व्यवसाय उन्हें दे दिए गए? क्या उन्हें जातिगत शूद्र-कार्यों या घृणित कार्यों से मुक्त कर सवर्ण समाज ने अपने साथ स्थान दिया?

सत्य कहना मुश्किल है और सत्य सहना भी मुश्किल। सत्य एक नैतिक जीवन प्रवाह बना ही नहीं। इसलिए दलित न तो जाति मुक्त हुआ और दलितों की बड़ी आबादी सवर्ण-शोषण से मुक्त हो। उसकी बुद्ध ने भले ही एक निर्जातीय समाज रचने की कोशिश की हो मगर बौद्धों में भी उनकी जातियाँ और ऊँच नीच है। केवल बुद्धं शरणं, संधं शरणम् या धम्मं शरणम् का मंत्र जाप करते रहने से बौद्धों की अन्दरूनी जातियाँ कहाँ खत्म हुईं। उनका उनके ही अन्दर भेदभाव जारी है। यदि सचमुच इस दलित-अदलित भेद को पाटना है तो हिन्दू सवर्ण वर्ग को धर्म के पाखण्ड-ग्रस्त पंडितों को ईसाई, इस्लाम और सिक्खों से प्रेरणा लेकर उन्हें अपनी सवर्ण टाट-पट्टी की पंक्ति पर बराबरी से बिठाना होगा। हिन्दुत्व तब तक अपने आप में बड़ी सांस्कृतिक क्रांति नहीं कर सकता जब तक न केवल 'दलित' शब्द बल्कि दलित मानसिकता न बदल जाए और यूरोपीय देशों में जिस प्रकार एक मानवीय व्यवस्था को एकाकार किया वैसा जातिग्रस्त भारत जाति मुक्त होकर नहीं कर लेता?

मेरी (रमेश दवे) एक आलोचना पुस्तक है 'समकालीन रचना और विचार' जो वर्ष 1983 में प्रकाशित हो चुकी थी। इस पुस्तक का चौथा निबंध है 'विश्व दलित साहित्य के संदर्भ में

हिन्दी कहानी।' यह निबंध तब लिखा गया था जब 'दलित-विमर्श' के मंच ही नहीं थे। इसे भले ही कहानी साहित्य के माध्यम से देखा गया हो मगर यह हमारी समूची कौम के मानस का साक्ष्य है। अफ्रीका के महान कथाकार चिउआ अचेबे ने कहा था 'अगर हमें एक कौम की तरह जिन्दा रहना है तो हमें अपनी ट्रेजेडीज़ (दुखातों) का वाजिब अर्थ समझना होगा।' इसी प्रकार सायप्रियन एक्वेन्सी ने 'लागोस का अजनबी' नामक कहानी में दलितों को लेकर कहा था 'इस शहर में कितनी आँखें हैं, देखती तो सब कुछ हैं, मगर समझती कुछ नहीं।' भारत में मार्क्सवादी, वामपंथी, प्रगतिशील और जनवादी बौद्धिकों ने मनुष्य को मनुष्य मानकर जाति एवं वर्ग को साहित्य के ज़रिए और संगोष्ठियों के ज़रिए तोड़ने और सवर्ण से जोड़ने की एक कमजोर कोशिश की थी मगर मार्क्सवाद की कट्टरता के पण्डों ने ईमानदार कोशिश नहीं की बल्कि वे स्वयं भी अपने में ब्राह्मण, ठाकुर, वैश्य ही जीते रहे। मजदूर, किसान, पारंपरिक रोजगारों में लगे लोग भी एक साथ उस प्रकार नहीं आ सके जैसे कम्युनिस्ट देशों में वे एक हुए। परिणाम यह हुआ कि भारत में 'दलित' शब्द दलों के दलदल में फँसा रहकर सियासत का नाच नाचता रहा।

विमर्शों की भीड़ में उमड़ आई कई जातियाँ। जो नहीं रहे कभी दलित। उन्हें पिछड़ा कहकर बना दिया गया दलित। जो गरीबी की रेखा के नीचे का कार्ड लेकर जा रहे राशन की दुकान पर उनसे कहा जा रहा गोदाम खाली है। बाजार में राशन भरा पड़ा है। मतलब यह कि सरकारें दलित बचाने के बजाय दलित बनाने की योजना बनाने का ठेका देने लगीं एन.जी.ओ. को। भारत ऐसा मुल्क है जहाँ अमीर-दलित, गरीब-दलित, नौकर-दलित, बेरोजगार-दलित, पिछड़ा दलित-अगड़ा दलित, अर्थात् वे सब दलित बना दिए गए जिनके पास बैठने के लिए बड़ी-बड़ी कुर्सियाँ हैं, खेत हैं, मकान-दुकान हैं और सरकारी पारिश्रमिक या मानदेय पर बहस करते विद्वान आँकड़ों की भाषा में दलितों का बता रहे परसेन्टेज। इस प्रकार जैसे इस देश में संविधान का हर उपबंध दलित हो और संविधान से पेट भरने वाले हो गए हों अरबपति। यह सब देख कर लगता है सच्चा जंगलों, झोपड़-पट्टियों और फुटपाथों पर पड़े बेसहारा लोग-अगर माँगकर पेट भर रहे हैं तो सरकार ने उन्हें दलितता से मुक्त कर दिया है। आदिवासी दलित, जातिगत दलित, अनुसूचित जाति-जनजाति दलित, पिछड़ा वर्ग दलित ये दलितों की नई वर्ण व्यवस्था या वर्ग-व्यवस्था बन गई है। इसलिए दलितों का मूल्यांकन परसेन्टेज से कीजिए, सही अत्याचारों, अपमानों, उपेक्षाओं और अभावों से नहीं। दलित-विमर्श इसलिए बौद्धिकों की पावर पाइंट से परसेन्टेज दिखाने का हुनर है जिसमें संख्याओं का झूठ परसेन्टेज बनकर परदे पर चमक रहा है।

अन्य विमर्शों का असत्य :- दो बड़े विमर्शों से स्त्री और दलित पर तो फोकस बहसों के प्रारंभ से अंत तक हुआ और लंच डिनर के साथ विमर्श का निष्कर्ष यह रहा कि विमर्श के बाद अच्छा भोजन सच्चा विमर्श है।

अब देखिए पर्यावरण का विमर्श। कहा जाता है पेड़ लगाओ, लगा दिए गए और और अगले पर्यावरण दिवस सूखे ठूँठ पेड़ों से बता दिया गया देखिए पेड़ खड़े हैं। जंगल कट रहे, जंगली जानवर गुपचुप मारे जा रहे हैं, जंगल का निवासी सरकारी बंदूक के आगे चुप है, मगर कहा जा रहा है जंगल सारे नक्सलवादी हो गए हैं। टाइगर अपने आप मर रहे हैं। शिकारी हिरण, खरगोश, सांभर का शिकार नहीं कर रहे, जानवर जानवरों को मार रहे हैं। संख्याओं का परसेटेज दिखाया जाता है और कहा जाता है, यह टाइगर-लैण्ड है, यह एलीफेंटलैंड, यह लाइयन लैंड, आदि। हर साल पाँच जून पर्यावरण दिवस बनकर आता है, पौधे लगाने का लक्ष्य निर्धारित होता है, नदी, तालाब, कुँए आदि की सफाई के अभियानों की संख्या बताई जाती है, कचरा उठा कर सड़कें कितनी कचरे के ऊपर बना दी गईं, कितने कचरे से बिजली बनाई गई कितने घरों से-गीला-सूखा कचरा उठवाया गया, सबका एक रंगीन ग्राफ दिखाकर विमर्श किया जाता है, परिणाम फिर अगला पर्यावरण दिवस।

आधुनिकता ने संवाद दिया था, उत्तर आधुनिकता ने विमर्श। आधुनिकता का दावा या मनुष्य प्रत्तर-युग से चलता हुआ आधुनिक युग में आकर सर्वाधिक सभ्य बना है जिसके प्रतीक हैं हथियार, हिंसा, युद्ध, कीटाणु-वायरस, रासायनिक अस्त्र, अणु-परमाणु बम आदि। सभ्यता की यह नई वेशभूषा है। खैर, जो भी हो या हुआ हो, सब अब उत्तर आधुनिक है जो साबित कर रहा है, उत्तर आधुनिकता का विमर्श-युग व्याप्त है और मृत्युओं के नए नए उपनिवेशों का जन्म हो रहा है। अब जीवन पर विमर्श करने के बजाए सिर्फ मृत्यु पर विमर्श किया जाकर एक ऐसे साम्राज्यवाद को रचा जाए जो किसी सिकंदर ने पोलियन, हिटलर या पूँजीवादी या साम्यवादी न होकर मृत्युवादी हो और उस पर विमर्श किया जा सके।

एस. एच. 19, ब्लॉक-8, सहयादि परिसर,
भदभदा रोड, भोपाल-462003 (म.प्र.)
मो.- 07554244064

संततियों के प्रकार और सम्पत्ति विभाजन

– रामेश्वर मिश्र पंकज

रीवा मध्य प्रदेश में जन्मे प्रसिद्ध दार्शनिक, समाजवैज्ञानिक एवं इतिहासविद, समाजवादी एवं गाँधीवादी आंदोलनों में सक्रियता, विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों से सेवा निवृत्त। वर्तमान में निरंतर सृजनरत। आपकी बाइस पुस्तकें प्रकाशित हैं।

सनातन धर्मशास्त्रों के अनुसार आठ प्रकारों में से किसी भी प्रकार का विवाह पूर्णत: विधिसम्मत है और इस प्रकार इनमें से किसी भी प्रकार का विवाह अवैध नहीं है। यह वर्तमान कानूनी स्थिति से नितान्त भिन्न स्थिति है।

विशिष्ट स्थितियों में पुरुष के द्वारा कामभाव से संबंध बनाने और स्त्री द्वारा उसे प्रीतिपूर्वक स्वीकार करने से ही गंधर्व विवाह संपादित हो जाता है। इसी प्रकार संतति की कामना अथवा राजनैतिक संबंधों आदि के विचार से एक से अधिक विवाह की अनुमति धर्मशास्त्रों ने दी है। इसी प्रकार पाँच विपदाओं में स्त्री के पुनर्विवाह की धर्मसम्मत व्यवस्था है और विधवा विवाह की भी धर्मशास्त्रीय अनुमति है। इन कारणों से उक्त सभी प्रकार के विधिविहित विवाहों से उत्पन्न संतानों की भी धर्मशास्त्रों में विधिक व्यवस्था दी गई है। क्योंकि किसी भी प्रकार से उत्पन्न संतान धर्मशास्त्रों में अवैध नहीं कही गई है।

धर्मशास्त्रों का मानना था कि यदि पुरुष किसी अन्य कन्या से सम्बन्ध बनाए तो उसे पत्नी का स्थान देना पड़ेगा। एक ही पत्नी के विधि-विहित होने के नाम पर पुरुष को व्यभिचार की छूट नहीं दी जा सकती। उसे अपने अन्य सम्बन्धों को भी वैध बनाना होगा। यही बहुपत्नीत्व का हिन्दू सिद्धान्त है। इसी प्रकार, स्त्री के (विशिष्ट स्थितियों में) दुबारा विवाह करने पर, उसकी संततियों के अधिकार का प्रश्न भी धर्मशास्त्रों के विचार का विषय है। इस प्रकार कुल 12 प्रकार की संततियाँ (विशेषत: पुत्र) हैं –

1. औरस पुत्र-जो समान वर्ण की अपनी पत्नी से उत्पन्न हैं, फिर वह एक पत्नी के हों या अनेक, सभी के पुत्र औरस पुत्र कहलाएँगे।
2. शौद्र या पारशव पुत्र-यदि कोई द्विज किसी शूद्रा स्त्री पर अनुरक्त हो उससे सम्बन्ध बना ले तो उसे भी पत्नी बनाना होगा। उस शूद्रा पत्नी का पुत्र शौद्र या पारशव कहलाएगा।
3. दत्तक, पत्रिका पुत्र एवं क्षेत्रज पुत्र-दत्तक यानी गोद लिया पुत्र। पुत्रिका-पुत्र यानी बेटी का बेटा, जिसे नाना-नानी गोद ले लें। कतिपय स्मृतियों के अनुसार यदि पुत्र न होने पर कोई माता-पिता बेटी को ही बेटा घोषित कर दें (पुत्रिका एव पुत्र:) तो उसे भी पुत्रिकापुत्र ही कहा जाएगा। नियोग द्वारा उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज है।
4. गूढ़ोत्पन्न पुत्र-जब पति अपनी पत्नी के किसी ऐसे पुत्र को सार्वजनिक तौर पर अपना ले जो पत्नी में किसी अन्य पुरुष से हुआ है, तो इसे गूड़ोत्पन्न पुत्र कहा जाता है।
5. पौनर्भव पुत्र-किसी विवाहित (एवं विवाह-विच्छेद उपरान्त) या विधवा स्त्री द्वारा पुनर्विवाह किए जाने पर उस (पुनर्भू) स्त्री द्वारा उत्पन्न पुत्र पौनर्भव है।
6. स्वयंदत्त एवं क्रीत-जब कोई माँ-पिता अपने पुत्र को स्वयं किसी अन्य को दे दें तो वह उनका स्वयंदत्त पुत्र है। जब पैसे देकर गोद लिया जाए तो वह क्रीत पुत्र है।
7. कानीन-यदि कुमारी कन्या कुमारी अवस्था में किसी बेटे को जन्म दे और बाद में विवाहोपरान्त उसका पति उस पहले हुए बेटे को भी अपना ले तो वह कानीन पुत्र है।
8. सहोढ़-यदि कोई स्त्री विवाह के समय गर्भवती हो और विवाह बाद (किसी अन्य पुरुष के अथवा स्वयं अब पति बने पुरुष के) पुत्र उत्पन्न हो तो वह सहोढ़ा (नवोढ़ा) के साथ (यानी सह) आया हुआ पुत्र कहलाता है।
9. अपविद्ध-माता या पिता अथवा दोनों द्वारा त्यागा हुआ अत: किसी अन्य द्वारा पालित पुत्र अपविद्ध कहलाता है।
10. दासीपुत्र-दासी (रक्षिता, अवरुद्धा) से उत्पन्न पुत्र।

11. कुंड पुत्र–पति के जीवित रहते पति के अतिरिक्त किसी अन्य (गुप्त) प्रेसयी से उत्पन्न पुत्र कुंड कहलाता है।
12. गोलक पुत्र–किसी विधवा के गुप्त प्रेम (चोरिका–विवाह) से हुआ पुत्र गोलक कहा जाता है।

इन सभी प्रकार के पुत्रों को पिता की सम्पत्ति के विभाजन में और/अथवा पिता के गोत्र–यश में अंश मिलता है। इनमें से प्रत्येक को भरण–पोषण पाने का अधिकार है। सम्पत्ति में हिस्सा औरस, पुत्रिका–पुत्र, दत्तक, क्षेत्रज, गूढ़ोत्पन्न, पौनर्भव एवं अपविद्ध को ही मिलता है। शौद्र या पारशव पुत्र सम्पत्ति का दशमांश पाता है। सहोढ़ को यदि पिता अपना ले तो अन्य पुत्र न होने पर औरस पुत्र जैसा ही है। दासी पुत्र भरण–पोषण का अधिकारी है। कुंड एवं गोलक के भी भरण–पोषण की व्यवस्था होती है। इससे स्पष्ट है कि गुप्त प्रेम (चोरिका विवाह) एवं उससे उत्पन्न सन्तति भी वैध मान्य हैं तथा उनका भी एक स्थान निर्धारित है।

सम्पत्ति विभाजन का धर्मशास्त्रीय स्वरूप :– सम्पत्ति विभाजन के लिये धर्मशास्त्रों में प्रयुक्त शब्द है–दायभाग। दाय का अर्थ है सम्पत्ति। दाय शब्द 'दाञ् दाने' तथा 'दाण, दाने' इन दोनों धातुओं से बने हैं। दान शब्द भी इसी धातु से बना है। परन्तु दोनों के अर्थ अलग–अलग हो जाते हैं। 'दाञ् दाने' जुहोत्यादिर्गण की नौंवी धातु है। जिसका अर्थ होता है देना, सौंपना, लौटाना, रखना। 'दाण, दाने' भ्वादिगण: की 664वीं धातु है। इसका भी वही अर्थ होता है। परन्तु भ्वादिगण: की ही 720वीं धातु 'दान, खण्डने' है। जिसका अर्थ विभक्त करना, तोड़ना और सरल करना है।

दान की परिभाषा है–स्वस्वत्वनिवृत्ति परस्वत्वापादनं च दानम्। 'अर्थात् अपने स्वत्व का त्याग करके अन्य के स्वत्व की उस वस्तु में प्रतिष्ठा कर देना दान है। किन्तु दाय में संपत्ति का विभाजन निहित है। दोनों में साम्य केवल यह है कि किसी वस्तु के स्वामित्व का त्याग दोनों में निहित है। परंतु परम्परा से दोनों में अर्थभेद स्थापित है।

परंतु स्वत्व की परिभाषा क्या है और स्वत्व की उत्पत्ति कैसे होती है? धर्मशास्त्र इस विषय पर भी विस्तार से विचार करते हैं कि 'स्वत्व' का अर्थ शास्त्रों में खोजा जाये या उसका सामान्य प्रयोग ही ग्रहण कर लिया जाये। जीमूतवाहन रचित 'दायभाग' के अनुसार पूर्व स्वामी के अधीन द्रव्य का परवर्ती को स्वामित्व सौंपना – यही दाय है।

'दीयते इति व्युत्पत्त्या दायशब्दो ददातिप्रयोगश्च गौणः मृतप्रव्रजितादिस्वनिवृत्तिपूवकपरस्वत्वोत्पत्ति- फलसाम्यात्। न तु मृतादीनां तत्र त्यागोस्ति। ततश्च पूर्वस्वामिसम्बन्धाधीनं तत्स्वाम्योपरमे यत्र द्रव्ये स्वत्वं तत्र निरूढ़ो दाय शब्दः।' दायभाग (1/4-5)
(अर्थात् दाय शब्द देने के अर्थ में है परंतु मृत या प्रवजित आदि प्रकार के स्वामियों के स्वत्व की निवृत्ति सीधे अन्य को स्वत्व दिये जाने से नहीं होती। क्योंकि मृत आदि व्यक्ति स्वयं अपने स्वत्व का या संपत्ति का त्याग कैसे कर सकते हैं। अत: किसी द्रव्य या सम्पत्ति से पूर्व में जिस स्वामी का संबंध रहा, उस स्वामी के शांत हो जाने पर वह सम्पत्ति या द्रव्य दाय कहलाता है। इस प्रकार यह दाय शब्द रूप है।)

परंतु याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा टीका के लेखक विज्ञानेश्वर का कहना है कि स्वत्व का अर्थ हमें शास्त्र के आधार पर न लेकर सामान्य प्रयोग के अर्थ में लेना चाहिये। क्योंकि स्वत्व का भी क्रय–विक्रय चावल आदि भौतिक वस्तुओं की तरह हो सकता है। उनका यह भी तर्क है कि शास्त्रों के ज्ञान से रहित म्लेच्छ आदि में भी स्वामित्व की धारणायें पाई जाती हैं। अत: स्वामित्व भौतिक उपयोग का विषय है और वह लोकसिद्धि एवं अनुभूति का विषय है। स्वामित्व के साधनों की जो मान्यतायें परंपरा से अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही थीं, धर्मशास्त्र उनका ही प्रतिपादन करते हैं।

इस विषय में शास्त्रों ने अत्यन्त सूक्ष्मता और गहराई से विचार किया है। विज्ञानेश्वर का कहना है कि 'मनु के मत से जब ब्राह्मण गर्हित कर्मों से धन प्राप्त करते हैं (यथा किसी कुपात्र या पतित व्यक्ति से दान–ग्रहण करना, या ऐसी क्रय–वृत्ति से जो उनकी जाति के लिए निन्द्य है, धन–ग्रहण करना) तो वे उस धन

के दान से, पूत मन्त्रों (गायत्री आदि) के जप से तथा तपस्या द्वारा ही पाप से छुटकारा पा सकते हैं। यदि स्वत्व का उद्गम शास्त्र द्वारा ही हो, तो शास्त्रनिन्द्य साधनों से प्राप्त किया हुआ धन व्यक्ति का धन (सम्पत्ति) नहीं कहलायेगा और न उसके पुत्र उसका विभाजन ही कर सकते हैं, क्योंकि उसे सम्पत्ति की संज्ञा प्राप्त ही नहीं होती। यदि स्वत्व लौकिक है तो उस दिशा में गर्हित साधनों से उत्पन्न धन व्यक्ति की सम्पत्ति की संज्ञा पाता है और उस व्यक्ति के पुत्र अपराधी नहीं होते (भले ही प्राप्तिकर्ता को प्रायश्चित करना पड़े) और सम्पत्ति (दाय) का विभाजन कर सकते हैं, क्योंकि मनु ने दाय को अनुमोदित सात करणों (साधनों) में गिना है। किन्तु मदनरत्न ने इस उक्ति का अनुमोदन नहीं किया है।

वस्तुत: इस विषय में मनु ने केवल प्रायश्चित की व्यवस्था दी है–

यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम्।

तस्योत्सर्गेण शुद्धयन्ति जप्येन तपसैव च।।

अर्थात् गर्हित कर्मों के द्वारा अर्जित धन के दोष से शुद्धि के लिये ब्राह्मण को उस धन का त्याग कर देना चाहिये और गायत्री मंत्र के जप तथा एक मास तक केवल दुग्धाहार पर रहना आदि प्रायश्चित करना चाहिये। इससे उस दोष से मुक्ति मिल जाती है।

यहाँ यह नहीं कहा है कि इस प्रकार का प्राप्त धन प्राप्तिकर्ता की सम्पत्ति नहीं कहलाता।

इस प्रकार बुरे दान या साधन से प्राप्त धन पर मनु ने कोई विशिष्ट अर्थ-दण्ड आदि नहीं निर्देशित किया है, जैसा कि उन्होंने चोरी करने पर चोर के लिए स्पष्ट दंड विधान किया है और चोरी के धन को चोर की सम्पत्ति नहीं माना एवं उसके विभाजन पर चोर के पुत्रों को दण्ड देने की बात कही है।

गौतम ने स्पष्ट कहा है कि स्वत्व के पाँच उद्गम या साधन हैं – 1 रिक्थ (उत्तराधिकार में प्राप्त धन) 2 क्रय (खरीद) 3 संविभाग (अर्थात् विभाजन) 4 परिग्रह (यानी बलपूर्वक ली हुई सम्पत्ति) और 5 अधिगम (अर्थात् अनायास प्राप्त धन, गुप्त धन आदि)। इस विषय में गौतम का कहना है कि ब्राह्मण को दान से जो धन प्राप्त होता है, उस पर ब्राह्मण का स्वत्व स्थापित हो जाता है। क्योंकि दानदाता व्यक्ति स्वत्व का संकल्प पूर्वक परित्याग करके दान ग्रहण करने वाले ब्राह्मण का स्वत्व स्थापित होने की घोषणा करता है।

इसी प्रकार क्षत्रिय विजय से जो धन प्राप्त करते हैं, उस पर उनका ही स्वत्व होता है। वैश्यों को कृषि और व्यापार से जो लाभ प्राप्त होता है, वह लाभ में प्राप्त में धन उनका ही है और उस पर उनका ही स्वत्व या स्वामित्व है। इसी प्रकार शूद्र को उसके स्वामी यदि अनुग्रह पूर्वक कुछ देते हैं तो वह अनुग्रह से प्राप्त सम्पत्ति शूद्र की हो जाती है और उस पर उसका ही स्वत्व स्थापित हो जाता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि दान केवल ब्राह्मण को दिया जाता है और शूद्र को कुछ देना अनुग्रह कहलाता है। यह स्पष्टता इसलिये आवश्यक है कि वर्तमान में दान के नाम पर अनुग्रह करने को ही दान मान लिया जाता है। परंतु धर्मशास्त्रों के अनुसार अनुग्रह दान नहीं है और दान के पुण्य फल अलग हैं तथा अनुग्रह रूपी सत्कर्म से चित्त में करुणा भाव का उदय और पोषण होता है, यह एक अलग पुण्य कर्म है। जो स्वयं के लिये कल्याणकारक है। परंतु उससे दान से प्राप्त होने वाले पुण्य नहीं मिलते अर्थात् उससे स्वर्गादि की प्राप्ति नहीं होती। परंतु मन में सात्विक भाव का उन्मेष होने के रूप में शुभ परिणाम मिलता है।

धर्मशास्त्रकारों की इस विषय में सर्वसम्मति है कि पुत्रों, पुत्रियों, पौत्रों और प्रपौत्रों का स्वामित्व गृहस्वामी के धन पर जन्म से ही हो जाता है। परंतु अन्य सम्बन्धियों को धन पर जन्म से कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता। यहाँ कुछ धर्मशास्त्रकारों ने यह प्रश्न भी उठाया है कि यदि पुत्र जन्म से ही पिता के धन के अधिकारी हो जायें तो उनका पिता अपनी पत्नी को प्रेमवश जो कुछ देता है, उसका विभाजन नहीं होने का धर्मशास्त्रों का विधान बाधित होता दिखता है। क्योंकि यदि पुत्र जन्म से ही पिता के धन का स्वामित्व प्राप्त कर लेता है तो फिर उस धन को देने का अधिकार पुत्र की अनुमति के बिना पिता को कैसे हो सकता है, भले ही वह माँ को दिया जाये। इसी बात का समाधान करने के लिये

देवल तथा याज्ञवल्क्य एवं पराशर ने पिता के रहते पुत्रों का स्वत्व नहीं माना है –

पितर्युपरते पुत्रा विभजेयुर्धनं पितुः।
अस्वाम्यं हि भवेदेषां निर्दोष पितरि स्थिते।। (देवल स्मृति)

माधवाचार्य ने पराशर स्मृति की टीका 'पराशरमाधवीय' लिखी है। उसमें भी यही बात कही गई है। इसी प्रकार मदनपाल एवं उनके पुत्र के संरक्षण में रचित मदनपारिजात में भी यही बात कही गई है।

'दायभाग' नामक व्यवहार पद में दो पद हैं–'दाय' एवं 'भाग'। माता या पिता से संतान को प्राप्त धन को 'दाय' कहते हैं। निघण्टु ने विभक्त होने वाले पितृद्रव्य को दाय कहा है। निघण्टु का कथन है–विभक्तव्यं पितृद्रव्यं दायमाहुर्मनीषिण:। अर्थात् पैतृक सम्पत्ति जो विभाजित होने योग्य होती है, उसे ही मनीषी दाय कहते हैं।

निबन्धों में दाय एवं विभाग शब्द कई प्रकार से द्योतित किये गये हैं। नारद ने दायभाग व्यवहार–पद को ऐसा माना है जिसमें पुत्र अपने पिता के धन के विभाजन का प्रबन्ध करते हैं। स्मृतिचन्द्रिका तथा अन्य ग्रन्थों में उद्धृत स्मृतिसंग्रह के मत से दाय वह धन है जो माता या पिता से किसी पुरुष को प्राप्त होता है। निघण्टु ने विभाजित होने वाले पैतृक धन को दाय कहा है। दायभाग, मिताक्षरा एवं अन्य ग्रन्थों ने नारद के 'पित्रयस्य' एवं 'पुत्रै:' को केवल उदाहरण के रूप में लिया है। जहाँ कहीं दायभाग शब्द प्रयुक्त होता है उसका वास्तविक अर्थ है सम्बन्धियों के धन का सम्बन्धियों में विभाजित होना और इसका कारण है मृत स्वामी से उनका सम्बन्ध। यह मनु एवं नारद के कथनों से भी व्यक्त है, क्योंकि इन दोनों ने माता के धन का विभाजन दायभाग के अन्तर्गत ही रखा है। मिताक्षरा ने याज्ञवल्क्य उपक्रमणिका में कहा है कि दाय का अर्थ है वह धन जो उनके स्वामी के सम्बन्ध से किसी अन्य की सम्पत्ति हो जाता है। व्यवहारमयूख ने दाय को उस धन की संज्ञा दी है जो विभाजित है और जो उन लोगों को नहीं प्राप्त होता जो फिर से एक साथ हो जाते हैं।

दाय को दो कोटियों में विभाजित किया गया है–अप्रतिबन्ध एवं सप्रतिबन्ध। समस्त पैतृक सम्पत्ति 'अप्रतिबन्ध दाय' है। जब पैतृक सम्पत्ति किसी अन्य कुटुम्बी को दी जाती है तो वह सप्रतिबन्ध दाय है। यों सभी दाय सप्रतिबंध ही होते हैं क्योंकि पिता या स्वामी की मृत्यु हो जाने अथवा उसके पतित हो जाने या संन्यासी हो जाने के उपरांत ही पुत्र, पौत्र, पुत्री, पत्नी आदि को दाय का स्वामित्व प्राप्त होता है। इसीलिए स्वत्व या स्वामित्व का प्रश्न सम्पत्ति के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

स्वत्व के पाँच उद्गम या स्रोत हैं – 1. रिक्थ या वसीयत, 2. क्रय या खरीद, 3. संविभाग या विभाजन, 4. परिग्रह यानी बलपूर्वक ली हुई सम्पत्ति और 5. अधिगम यानी अनायास प्राप्त सम्पत्ति। गौतम स्मृति का कहना है कि ब्राह्मणों को दान से, क्षत्रियों को विजय से, वैश्यों को कृषि और व्यापार के लाभ से और शूद्रों को अनुग्रह से भी सम्पत्ति प्राप्त होती है जो कि पैतृक सम्पत्ति की तरह ही सम्पत्ति है। माना यह जाता है कि स्वत्व या स्वामित्व की एक लोकसिद्ध परम्परा चली आ रही थी और शास्त्रों ने केवल उनको व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया। सम्पत्ति के स्वामित्व को लेकर शास्त्रों में विशद विवेचना है। परन्तु आधुनिक राज्य सम्पत्ति का परम स्वामी 'राज्य' यानी स्वयं को मानता है। वह सम्पत्ति–सीमा, भूमि–हदबन्दी, आय–सीमा आदि भाँति–भाँति के कानूनों द्वारा दाय एवं सम्पत्ति का परिग्रह करता रहता है। यह धर्म–सम्मत नहीं है। राज्य द्वारा नागरिकों की सम्पत्ति पर स्वत्व की यह स्थापना परिग्रह–पूर्वक की गई है। इस्लाम काफिरों की सम्पत्ति पर बलपूर्वक स्वत्व स्थापित करता है परंतु मोमिनों की सम्पत्ति पर केवल राज्य का स्वत्व इस्लाम में मान्य नहीं है। यूरोक्रिश्चियन लॉ से संचालित राज्य और कम्युनिस्ट राज्य नागरिकों की सम्पत्ति पर परिग्रहपूर्वक राज्य का स्वत्व स्थापित करते हैं। **(क्रमशः)**

ए 141, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा, भोपाल-462030 (म.प्र.)
मो. 8349350267

पाण्डवों का द्वैतवन में प्रवेश और महर्षि मार्कण्डेय का धर्मादेश

- कुसुमलता केडिया

इतिहास, समाज विज्ञान और अर्थशास्त्र की गहरी अध्येता और तर्कपूर्ण विवेचना में सिद्धहस्त विदुषी प्रो. कुसुमलता केडिया के वैचारिक आलेखों का श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशन किया जा रहा है ताकि हमारे पाठकों में बौद्धिक उत्तेजना उत्पन्न हो और वे हमारी ज्ञान परंपरा को तार्किक ढंग से आत्मसात कर मौलिक लेखन की ओर प्रवृत्त हों। प्रस्तुत है इस लेखमाला की अगली किश्त **'पाण्डवों का द्वैतवन में प्रवेश और महर्षि मार्कण्डेय का धर्मादेश'** *पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।*

- सम्पादक

स्वदेशी अर्थचेतना की संवाहक।

जन्म - 2 जुलाई 1954।

जन्म स्थान - पडरौना (उ.प्र.)।

शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी.।

रचनाएँ - अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर भगवान श्री कृष्ण तथा सभी राजा अपने-अपने नगर को प्रस्थान कर गये। इसके बाद पाण्डव द्वैतवन की ओर चले। महर्षि वेदव्यास वनपर्व में अध्याय 22 के श्लोक 54 में कहते हैं कि महामना युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों की अनुमति से वन में प्रस्थान की तैयारी की। उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणों को गौएँ तथा स्वर्ण मुद्राएँ में देकर उनकी अनुमति से यात्रा प्रारंभ की। 12 वर्ष के वनवास की तैयारी से वे द्वैतवन में घुसे। तब युधिष्ठिर ने अपने भाईयों से कहा कि हमें ऐसे स्थान 12 वर्ष रहना चाहिये जहाँ पुण्यात्मा जन रहते हों और जो फूलों और फलों से शोभित सुंदर स्थान हो-

बहुपुष्पफलं रम्यं शिवं पुण्यजनावृतम्।
यत्रेमाः शरदः सर्वाः सुंख प्रतिवसेमहि।। (वन पर्व अध्याय 24 श्लोक 3)

महाराज युधिष्ठिर द्रौपदी और भाईयों के साथ द्वैतवन नामक विशाल सरोवर के समीप पहुँचे जो द्वैतवन के मध्य में स्थित था। वह महान वन तमाल, ताल, आम, महुआ, नीम, कदम्ब, साल, अर्जुन, और कनेर आदि वृक्षों से सम्पन्न था और वहाँ उन्नत वृक्षों की ऊँची शाखाओं पर मयूर, कोकील, चातक, चकोर आदि पक्षी मनभावन मधुर बोली बोलते हुये बैठे दिखते थे। इसके साथ ही वहाँ हथिनियों के झुंड के साथ अनेक मदमत्त गजराज विचारण कर रहे थे तथा चारों ओर अनेक ऋषि और महर्षि साधनारत थे। जब महाराज युधिष्ठिर ने वहाँ डेरा डाला तो सभी ब्राह्मण एवं महार्षि उनके पास आये। युधिष्ठिर ने उन सभी का फलो और मूलों से सत्कार किया।

एक दिन अतिथि के रूप में महान तेजस्वी महर्षि मार्कण्डेय वहाँ आये। महाराज ने उनका स्वागत किया। तदुपरांत महर्षि ने धर्मोपदेश दिया-

महाबलान् पर्वतकूटमात्रान्
विषाणिनः पश्य गजान् नरेन्द्र।
स्थितान् निदेशे नरवर्य धातु-
र्नेशे बलस्येति चरेधर्मम्।।
सर्वाणि भूतानि नरेन्द्र पश्य
तथा यथावद् विहितं विधात्रा।
स्वयोनितः कर्म सदा चरन्ति
नेशे बलस्येति चरेदधर्मम्।। (वनपर्व अध्याय 25 श्लोक 15 एवं 16)

अर्थात् हे राजन, महाबली गजराजों और यहाँ चारों ओर विचर रहे सभी प्राणियों को ध्यान से देखिये यह सब स्वधर्म पालन में लगे है। अतः आप भी स्वयं को बलवान समझकर अधर्म का आचारण नहीं कीजियेगा। सद् स्वधर्म का पालन ही कीजियेगा।

तब वनवास की अवधि पूर्ण कर आप अपनी तेजस्वी राजलक्ष्मी को निश्चय ही प्राप्त करेंगे।

इसी प्रकार एक अन्य दिन बक नामक महर्षि ने युधिष्ठिर को उपदेश दिया। इसी तरह प्रतिदिन उन्हें कोई न कोई तेजस्वी ब्राह्मण और महर्षि धर्म उपदेश देते रहते थे। इससे युधिष्ठिर में गहरा शांत भाव जागृत हो गया। तब परम बुद्धिमति द्रौपदी ने कर्त्तव्य समझकर शत्रु के विषय में क्रोध जाग्रत करने वाली कथाएँ कहना आरंभ किया।

द्रौपदी ने प्रहलाद और बलि के संवाद का वर्णन किया। प्रहलाद बलि के पितामह थे। बलि ने पूछा–पितामह क्षमा और तेज में श्रेष्ठ क्या है। प्रह्लाद ने उत्तर दिया–

न श्रेयः सततं तेजो न नित्यं श्रेयसी क्षमा।
इति तात विजानीहि द्वयमेतदसंशयम्।।
यो नित्यं क्षमते तात बहून् दोषान् स विन्दति।
भृत्याः परिभवन्त्येनमुदासीनास्तथारयः।।
सर्वभूतानि चाप्यस्य न नमन्ति कदाचन।
तस्मान्नित्यं क्षमा तात पण्डितैरपि वर्जिता।।

(वनपर्व अध्याय 28, श्लोक 6, 7, 8)

अर्थात् हे पुत्र, न तो सदा तेज ही श्रेष्ठ है और न ही क्षमा इन दोनों के विषय में सम्यक ज्ञान आवश्यक है। जो सदा क्षमाशील होते हैं, उन्हें अनेक दोष प्राप्त होते हैं। उनके सेवक, शत्रु, और उदासीन सभी लोग उनका तिरस्कार करने लगते हैं। लोग उनसे विनम्र व्यवहार नहीं करते। इसलिये सदा क्षमाशील रहना पण्डितों के द्वारा वर्जित है।

आगे प्रह्लाद ने क्षमा के अनेक दोष 30 श्लोकों में गिनाये और समझाया कि न तो नित्य उग्रता का प्रदर्शन करना चाहिये और न ही सदा क्षमाशील रहना चाहिये। अपितु अवसर के अनुकूल दोनों प्रकार का व्यवहार करना चाहिये। क्योंकि कोमल बर्ताव करने वाले की सभी लोग अवहेलना करते हैं और उग्र स्वभाव वाले से सब उद्विग्न रहते हैं। अतः उचित अवसर पर दोनों ही बर्ताव आवश्यक हैं।

इस पर युधिष्ठिर ने क्षमा भाव की विशेष प्रशंसा की। इससे द्रौपदी क्षुब्ध हो गई और बोली–

नमो धात्रे विधात्रे च यौ मोहं चक्रतुस्तव।
पितृपैतामहे वृश्रे वोढव्ये तेऽन्यथा मतिः।।

(वनपर्व अध्याय 30 श्लोक 1)

अर्थात् भगवान को और प्रारब्ध को नमस्कार है। जिन्होंने आपकी बुद्धि में मोह भर दिया है। अपने पूर्वजों के आचरण का भार वहन करने में आप विफल दिखाई पड़ते हैं। आपकी मति पूर्वजों के आचार से विपरीत है। इसी बुद्धि के कारण आप राज्य खोकर इस निरजन महावन में निवास कर रहे हैं। इस पर युधिष्ठिर ने पुनः श्रद्धा और क्षमा का महत्व प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा कि सत् कर्मों और पाप कर्मों का फल कब उदित होता है और कब दिखाई नहीं पड़ता, यह बात देवगुह्य है। तपस्वी ब्राह्मण ही उसे देख पाते हैं। इसलिये धर्म का फल तुरंत नहीं दिखाई पड़े तो भी धर्म पर शंका नहीं करनी चाहिये। श्रद्धापूर्वक स्वधर्म का आचरण करते रहना चाहिये।

इस प्रकार का तर्क–वितर्क सात अध्यायों में (अ. 27 से 33 तक) महाभारत वनपर्व में वर्णित है। इसके बाद भीमसेन भी द्रौपदी की तरह युधिष्ठिर को पुरुषार्थ के लिये प्रेरित करते हैं। अंत में व्यास जी वहाँ पधारते हैं और वे कहते हैं कि तात्, तुम्हारे मन में भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा आदि को लेकर भय समा गया है। यह मुझे पता चल गया, इसीलिये मैं यहाँ आया हूँ। इतने कहकर वह युधिष्ठिर को एकांत में ले गये और वहाँ उन्हें प्रतिस्मृति नामक विद्या प्रदान की। इसके साथ आदेश दिया महाबाहु अर्जुन दिव्याशस्त्रों की प्राप्ति के लिये देवराज इंद्र, रुद्र, वरुण, कुबेर तथा धर्मराज के पास जाये और तुम लोग सब अब दूसरे वन की ओर जाओ, क्योंकि एक ही स्थान पर अधिक दिनों तक रहना उचित नहीं है। साथ ही तुम्हारे यहाँ रहने से तपस्वी महात्माओं के तप में विघ्न पड़ सकता है। जो ठीक नहीं है।

महर्षि वेद व्यास की आज्ञा मानकर युधिष्ठिर ने अर्जुन को भी प्रतिस्मृति विद्या दी और उन्हें इन्द्र आदि की तपस्या करने के लिये विदा किया। अर्जुन ने इंद्रकील पर्वत पर जाकर तपस्या

की एवं यज्ञ किया। इससे प्रसन्न होकर इन्द्र ने अर्जुन को देवाधिदेव महादेव की तपस्या करने के लिये कहा। अर्जुन ने उग्र तपस्या की। तब भगवान शंकर किरात वेष धारण कर भगवती पार्वती के साथ प्रगट हुये। उनके प्रगट होते ही वन में स्तब्धता छा गई। तभी शूकर रूप धारण कर एक भयानक दानव अर्जुन की ओर मार डालने के भाव दौड़ा। अर्जुन उसे मारने के लिये धनुष पर बाण चढ़ाया। इस पर किरात वेषधारी भगवान शंकर ने अर्जुन से कहा कि यह मेरा लक्ष्य है, तुम इस पर बाण मत चलाओ, परन्तु अर्जुन नहीं माना। उसने सूअर पर बाण चला दिया और उसी समय तेजस्वी किरात ने भी बाण चलाया। सूअर अपना दानव रूप प्रगट कर मर गया। अब शूकर के वध को लेकर अर्जुन और किरात वेषधारी भगवान शंकर में विवाद हुआ है फिर दोनों में बात युद्ध तक बढ़ गई। अर्जुन नें बाणों की वर्षों की जिसे भगवान शंकर ने ग्रहण कर लिया और उनके शरीर पर कोई भी चोट नहीं पहुँची। इससे अर्जुन को शंका हुई कि ये किरात वेष में भगवान शंकर ही होना चाहिये। अर्जुन के सब बाण समाप्त हो गये। फिर अर्जुन ने अग्नि देव से प्राप्त दिव्य धनुष का प्रयोग किया। परन्तु वह भी निष्फल रहा। इस प्रकार बहुत देर तक अनेक प्रकार से युद्ध हुआ। अर्जुन ने किरात को अपने देहबल से दबाने का प्रयास किया। प्रतिउत्तर में किरात ने अर्जुन को जोर से दबाया जिससे उसे लगा कि अब प्राणांत हो जायेगा। अर्जुन दो घड़ी तक बेहोश पड़ा रहा। फिर उठकर उसने भगवान शंकर की आरधना की और उन्हें माला अर्पित की। तभी उसने देखा कि वह माला तो स्वयं उन किरात के गले पर है। इससे अर्जुन समझ गये कि यही भगवान शंकर हैं और उनकी भावपूर्ण स्तुति की तथा बारम्बार क्षमा माँगी तब भगवान शंकर अर्जुन पर प्रसन्न हुये फिर अर्जुन ने उनसे पाशुपतास्त्र माँगा भगवान शंकर ने वह दे दिया। इसके बाद अर्जुन और भी तपस्या कि जिससे दिक्पालों ने प्रसन्न होकर उन्हें दिव्यास्त्र दिये। इसके बाद अर्जुन ने देवराज इंद्र का ध्यान किया। तब देवराज ने अपना रथ वहाँ भेजा जिस पर बैठकर अर्जुन इंद्र लोक पहुँचे। इंद्र की सभा में अर्जुन की प्रशंसा हुई। वहाँ अनेक शस्त्रों की शिक्षा दी गई और साथ ही संगीत की शिक्षा भी दी गई। अप्सरा उर्वशी अर्जुन पर मोहित हो गई और उनसे प्रणय निवेदन किया परन्तु अर्जुन ने विनम्रतापूर्वक उन्हें अपनी माता के समान कहकर प्रमाण किया। इससे उर्वशी कुपित हो गई और उसने अर्जुन को शाप दिया कि तुम्हें सम्मान रहित होकर नर्तक बनाकर स्त्रियों के बीच रहना पड़ेगा और तुम नपुंसक कहलाओगे। उर्वशी शाप देकर चली गई। भयभीत अर्जुन पिता देवराज के पास पहुँचा तब देवराज ने कहा कि तुम्हें तेरहवें वर्ष में अज्ञातवास के समय यह शाप एक वर्ष के लिये फलित होगा और इस शाप से कई प्रयोजन सिद्ध होंगे अत: चिन्ता की बात नहीं है। इस प्रकार अपने संयम के कारण अर्जुन ने देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त किया और शाप भी उसके लिये वरदान हो गया।

ए-142, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा,
भोपाल-462036 (म.प्र.)
मो.-8349350267

सूचना

अक्षरा के सम्माननीय पाठकों, सदस्यों से विनम्र आग्रह है कि पते के साथ अपना मोबाइल नंबर भी अवश्य भेजें। ताकि पत्रिका आपको पहुँचने में विलंब न हो।

जो चाँद को अपने घर ले आये

मूल - नील जॉन
अनु. - विभा खरे

शिक्षा - एम.एच.एस.सी., एम.ए.।

रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में लेखन।

विशेष - अनुवाद में विशेष कार्य ।

वे वैज्ञानिक जिनके व्यक्तित्व को जब आप देखते हैं आप स्वयं से पूछते हैं कि क्या यह साधारण व्यक्ति वह कर पाएगा जिसे करने में दुनिया विफल हो गयी?

वे चश्मा पहनते हैं, शर्ट को पतलून से बाहर पहनते हैं, चेक जिनका पसंदीदा डिज़ाइन पैटर्न है, वे अभी भी स्टील की थाली या केले के पत्ते में अपने हाथ से खाना खाना पसंद करते हैं। उनमें से सभी को रूढ़िबद्ध नहीं किया जा रहा है, लेकिन उनमें से अधिकांश अपने शोध के पोर्टलों के भीतर रहते हैं।

छोटे-छोटे नवाचारों पर गर्व करते हैं जो उनकी बड़ी सफलता का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

बातचीत के लिए उन्होंने वे भाषाएँ चुनीं जो उनके कामकाजी माहौल के अनुकूल हैं। जिन्हें अंग्रेजी जानना जरूरी है ताकि उन्हें पता चलता रहे कि उनके वातावरण में लोग पहले ही क्या कर चुके हैं। सापड़िया... सबसे आम शब्दों में से एक है जिस पर मैंने उन्हें बातचीत करते हुए सुना है। मुझे लगता है इसका मतलब यह पूछना है कि क्या आपने खाना खा लिया है?

हो सकता है कि ये प्रतिभाएँ अपनी कक्षाओं में अव्वल न रही हों और कई लोगों ने भीड़ में उनकी उपस्थिति को नज़रअंदाज कर दिया हो। लेकिन हर किसी के पास एक ऐसी कहानी है जो सुनने लायक है, एक ऐसा संघर्ष जो उन लोगों के लिए समझ से बाहर है जो उस कार्यस्थल को साझा नहीं करते हैं।

सफलताएँ और असफलताएँ उन्हें बड़े संगठनात्मक लक्ष्य प्राप्त करने से नहीं रोक पाईं। उनके लिए राष्ट्रवाद वह है जो वे तमगे की तरह अपनी आस्तीन पर पहनते हैं, झंडे पर गर्व करते हैं।

चंद्रमा पर जादू था चंद्रयान, अंतरराष्ट्रीय मिशन की आधी लागत में, यहाँ तक कि हमारे सबसे बड़े आलोचक अमेरिका और नासा ने भी इसे लाइव कवर किया। दुनिया ने देखा कि अनुभव और दिमाग की ये भीड़ एक कमांड सेंटर में एकत्रित होकर बैठी थी।

लैंडिंग त्रुटिहीन, भावना अनियंत्रित और प्रयास जीतने योग्य। चाँद पर भारत, हमारे द्वारा गाए गए सभी बॉलीवुड गानों को एक नया अर्थ मिला और चाँद पर जिन देवताओं की हम पूजा करते हैं वे मुस्कुराए।

आखिर यही वो देश है. . . जिसका हर नागरिक. . . हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई साथ मिल कर सफलता की प्रार्थना में मगन थे। आईपीएल फाइनल से भी ज्यादा जुड़े हुए।

इस महान लोकतंत्र को जो बाँधता है वह अवर्णनीय है, वह जाति, पंथ, धर्म या आस्था नहीं है। यह भारत है और इसकी अवधारणा, इसका राष्ट्रवाद मतभेदों को मिटा देता है और इसकी भावनाओं को सफलताएँ समृद्ध करती हैं। हम एक भावुक राष्ट्र हैं, हम दुखद फिल्मों के दौरान रोते हैं, एक शहीद के दाह संस्कार को उत्सव की तरह मनाने के लिए बड़ी संख्या में बाहर आते हैं।

हम अपने तरीकों और विश्वासों पर लड़ सकते हैं, लेकिन यह केवल कुछ गुमराह लोग हैं, एक साथ हम मजबूत हैं, हम जीवित रहेंगे, टिके रहेंगे और प्रबल होंगे। इसरो को सलाम, भारत सरकार को सलाम, उन सभी को सलाम जिन्होंने परदे के पीछे से काम किया और नेपथ्य में रहेंगे। हमने इतिहास में एक छाप छोड़ी है, इसलिए जश्न शानदार होना चाहिए।

ये पागल भारतीय वैज्ञानिक : जो चाँद को अपने घर ले आये

भारत माता की जय. . .जय भारत।

एच.आई.जी., 72,
हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, बागमुगलिया,
एक्सटेंशन, भोपाल-462043 (म.प्र.)
मो.- 9425079134

शिक्षक की आत्मा का दर्पण है अध्यापन

– उमराव सिंह चौधरी

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर के कुलपति रहे। आपने एक सौ पचास अंग्रेजी कविताओं का अनुसृजन समय के हृदय की धड़कन नाम से किया।

यानुश कोर्चाक (1878–1942) एक पराक्रमी पोलिश शिक्षक और शिक्षाविद थे। शैक्षणिक योग्यता के मान से वे चिकित्सक थे, लेकिन परिस्थिति के तकाज़े और बच्चों से अदम्य लगाव के कारण वे शिक्षक बन गए। यानुश कोर्चाक के शब्द पोलैंड तथा रूस के अनेक शिक्षकों के लिए 'नीति वाक्य' बन गए थे। वे वारसा की यहूदी बस्ती के अनाथालय में बच्चों का पालन एवं शिक्षण करते थे। हिटलरी दरिन्दों ने इन अभागों, अनाथ बच्चों को त्रैब्लीन्का मृत्यु शिविर की भट्टियों में झोंकने का फैसला कर लिया था। जब यानुश कोर्चाक से यह पूछा गया कि वे क्या चुनेंग : 'बच्चों के बिना जिन्दगी या बच्चों के साथ मौत, तब उन्होंने बिना किसी दुविधा के दृढ़ता के साथ उत्तर दिया कि वे बच्चों के साथ मृत्यु का ही चुनाव करेंगे।'

गैस्टापो के एक अधिकारी ने उनसे कहा कि आप एक अच्छे डॉक्टर हैं, आपके लिए त्रैब्लीन्का जाना जरूरी नहीं है। जवाब में अविचलित भाव से डॉ. कोर्चाक ने कहा : 'मैं ईमान का सौदा नहीं करता।' अंत में, इस वीर शिक्षक ने बच्चों के साथ मृत्यु का आलिंगन किया। भट्टी में झोंके जाने से लगाकर अंतिम क्षण तक वे यही कोशिश करते रहे कि कहीं बच्चे घबरा न जाएँ। उनका धीरज बना रहे और बाल हृदयों में मौत के इंतजार का काला डर समा न जाए। कोर्चाक के अपूर्व बलिदान, असाधारण नैतिक बल और अंत:करण की अद्भुत निर्मलता के सामने हमारे जैसे लाखों लोगों का शिक्षक होने का दावा अत्यंत खोखला और फीका नजर आता है।

अनुपम नैतिक सौंदर्य के स्वामी कोर्चाक तथा उनके अनुयायी प्रसिद्ध रूसी शिक्षाविद वसीली सुखोम्लीन्स्की मानते थे कि वही व्यक्ति सच्चा शिक्षक हो सकता है, जो यह नहीं भूलता कि कभी वह भी बच्चा था। कोर्चाक अपनी छोटी सी पुस्तिका 'जब मैं फिर छोटा हो जाऊँगा' में लिखते हैं कि 'कोई भी नहीं जानता कि बच्चा कब अधिक ज्ञान प्राप्त करता है–जब वह ब्लैक बोर्ड की ओर देख रहा होता है तब या उस समय जबकि एक उद्दाम शक्ति (सूरजमुखी को घुमाने वाला सूर्य) उसे खिड़की के बाहर देखने को विवश करती है। ऐसे क्षण में उसके लिए क्या अधिक महत्त्वपूर्ण है? ब्लैक बोर्ड की चौखट में जड़ा तार्किक जगत या खिड़की के बाहर फैली चंचल दुनिया?' बच्चे की आत्मा के साथ जबर्दस्ती मत कीजिए। प्रत्येक बच्चे के नैसर्गिक विकास के नियमों को ध्यान से देखिए। यह समझने की कोशिश कीजिए कि बच्चे की अपनी क्या खासियत है किन बातों में उसका मन रमता है, और उसे क्या चाहिए?

सुखोम्लीन्स्की ने अपनी पुस्तक 'बाल हृदय की गहराइयाँ' में कोर्चाक के एक पत्र का उल्लेख किया है, उसे कोर्चाक का मात्र एक पत्र नहीं, अंत:करण का अंश कहा जाना चाहिए। कोर्चाक शिक्षकों को संबोधित करते हुए कहते हैं कि उन्हें 'बच्चे को कृपा-दृष्टि से देखने के बजाय उसके अंत:करण के स्तर तक ऊँचा उठाना चाहिए। सच्चा शिक्षक बच्चे को अलौकिक गुणों की खान अथवा आदर्श नहीं मानता, किन्तु उसे इस पहलू की भी अनदेखी नहीं करनी चाहिए कि बच्चे किन नजरों से दुनिया को देखते हैं। अपने पास-पड़ोस के प्रति उनकी जो भावनात्मक एवं नैतिक प्रतिक्रिया होती है, उसमें एक विशिष्टता, स्पष्टता, सरलता, निष्कपटता तथा एक खास किस्म की बारीकी होती है।' इस प्रकार, कोर्चाक शिक्षकों को बताना चाहते हैं कि बच्चों का एक बाल सुलभ 'विश्व बोध' होता है, जिसे बड़ी सूक्ष्मता और संवेदनशीलता के साथ शिक्षकों को समझना और अनुभव करना चाहिए।

सुखोम्लीन्स्की का दृढ़ विश्वास था कि मानव आत्मा के कुछ विशिष्ट गुणों के बिना कोई व्यक्ति सच्चा शिक्षक या चरित्र-निर्माता नहीं बन सकता। इन गुणों में सर्वोपरी है बच्चे के 'आंतरिक जगत' या उसके 'मन की दुनिया' में पैठने की क्षमता। सच्चा शिक्षक बनने के लिए मनुष्य में जो आत्मिक स्तर होना चाहिए उसका निर्णायक लक्षण है–बच्चों से गहरा लगाव उनमें आत्मीय अनुरक्ति। वैसे तो, मनुष्य का कई बार अपनी

भावनाओं पर वश नहीं चलता, परंतु शिक्षक के लिए अपनी भावनाओं को गढ़ना और परिष्कृत करना ही उच्च आत्मिक स्तर अथवा 'उच्च शिक्षण संस्कृति' है।

सच्चा स्कूल केवल ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ बच्चे किन्हीं विषयों का ज्ञान प्राप्त करते हैं या कुछ करना सीखते हैं। सच्चा स्कूल वही है, जहाँ बच्चों का बहुमुखी आत्मिक जीवन होता है, जिसमें शिक्षक और छात्र अनेकानेक रुचियों और शौकों द्वारा एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। सुखोम्लीन्स्की कहते हैं, 'वह व्यक्ति जो छात्रों से केवल कक्षा में मिलता है-मेज के एक तरफ शिक्षक और दूसरी तरफ छात्र, वह बाल हृदय की गहराइयों को नहीं जानता और जो बच्चों को नहीं जानता, वह उनका चरित्र निर्माता नहीं हो सकता। ऐसे व्यक्ति के लिए बच्चों के विचार, भावनाएँ और उनकी आकांक्षाएँ सात तालों में बंद होती हैं। कई बार शिक्षक की मेज वह परकोटा बन जाती है, जिसके पीछे से वह 'दुश्मन' यानी छात्र पर हमला करता है। लेकिन, ज्यादातार मामलों में यह मेज घिरे हुए किले के समान हो जाती है, जिसे दुश्मन (छात्र) थका-थका कर जीत लेता है तथा किले में घिरा हुआ 'सेनापति' अपने को बिल्कुल असहाय महसूस करता है।'

नि:संदेह, अध्यापन एक साहसिक कार्य है। संभवत: इसीलिए उसे 'सभी कलाओं से कठिन और सभी विज्ञानों से गहन माना जाता है।' पार्कर जे. पामर ने अपनी पुस्तक 'पढ़ाने का साहस' में जिस साहस का जिक्र किया, वह और कुछ नहीं, बस अपने आंतरिक जीवन की कुंडली को कक्षा में खोल देना है। सचमुच, अध्यापन शिक्षक की आत्मा को प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण है। शिक्षक को इस दर्पण से आँख मिलाकर स्वयं को जानने-समझने का प्रयास करना चाहिए। जिस प्रकार अच्छे अध्यापन के लिए छात्र और विषय को भली-भाँति जानना जरूरी है, उसी तरह अपने आप को भी। क्योंकि हम जो हैं, वही हम पढ़ाते हैं।'

अध्यापन एक सच्ची मानवीय प्रकिया है। अंत:करण ही उसका उद्गम है। जब कोई सच्चा और अच्छा शिक्षक पढ़ाता है, तब वह अपनी आत्मिक स्थिति को अपने छात्रों पर प्रक्षेपित करता है। पढ़ाने के साहस का आशय है अपने हृदय को उस सीमा तक खुला रखना जब तक उसमें और अधिक स्वीकारने और सँभाले रखने की शक्ति नहीं रहती। अच्छा अध्यापन अच्छे लोग ही कर पाते हैं। अच्छे शिक्षक अपने आपको छुपाने के बजाए पारदर्शिता के साथ सीधे-सच्चे रूप में छात्रों के समक्ष उपस्थित रहते हैं। जैसे वे अपने अंतरंग से साक्षात्कार करने में संकोच नहीं करते, वैसे ही छात्र के अंतरंग तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। अच्छे शिक्षकों की एक 'पहचान' और 'समग्रता' होती है वे विभाजित और चालबाज नहीं होते। वे अपनी संपूर्णता में, कक्षा में मुखर होकर उत्साहपूर्वक विषयवस्तु का अध्यापन करते हैं। वे विषय में डूबकर जो चित्रोपम प्रस्तुति करते हैं, उससे भूत और भविष्य वर्तमान में जीवंत हो जाते हैं। वे टिप्स, ट्रिक्स और टेक्निक को अपनी बैसाखी नहीं बनाते। दूसरे के द्वारा तैयार की गई भूमिकाओं को अदा करने के बजाए, वे अपनी भूमिका का आलेख स्वयं लिखते हैं। अच्छे अध्यापकों के शब्द और कार्य उनके चेहरे के सामने तैरते रहने के बजाए सीधे-साधे छात्र के अंत:करण तक पहुँचते हैं। उनका अध्यापन वस्तुपरक और बाह्य अभियान न रहकर अंत:करण का अंत:करण से संवाद बन जाता है।

सारे बुरे अध्यापक एक जैसे होते हैं। वे प्राय: छात्र और विषय से दूर, दुबके हुए रहना चाहते हैं। उनके पढ़ाने के तौर-तरीके भी लगभग एकरूप होते हैं। दूसरी ओर, अच्छे शिक्षक एक-दूसरे से भिन्न होते हैं, वे छात्रों से आत्मीय सरोकार रखते हैं, तथा उनकी अध्यापन विधियाँ व्यापक एवं विविध होती हैं। उनमें छात्र, विषय और स्वयं को एक समुदाय के रूप में जोड़ने की महारत होती है। डॉ. पामर की राय में, 'अच्छे अध्यापक ऐसी बुनावट करते हैं, जो उन्हें छात्रों और विषयों से जोड़ती हैं। उनका अंत:करण वह करघा होता है, जिस पर धागे बँधे रहते हैं, तनाव बनाए रखा जाता है, भरनी (शटल) चलती रहती है और कपड़ा तना रहता है। अध्यापन छात्र की ओर अग्रसर होता है तथा उसके हृदय में बैठता है। हृदय को खोलता ही नहीं, मर्म को छूता है। जो अध्यापक अपने अध्यापन पर जितना आसक्त होता है, उतना ही उसका अध्यापन मार्मिक और तलस्पर्शी होता है।'

बीसवीं शताब्दी में प्रौद्योगिकी ने वस्तुकरण और छलयोजन (मैनीप्युलेशन) को खूब बढ़ावा दिया। परिणामस्वरूप यथार्थ और शक्ति का दायरा बाह्य जगत की वस्तुओं और घटनाओं तक सीमित हो गया। प्रौद्योगिकी से सम्मोहित होकर हमने अंतर्जगत की उपेक्षा ही नहीं की, उसे खारिज कर दिया। छात्रों के दिलों को जीतने के बजाए, अध्यापक प्रविधियों और तकनीकों पर अधिकार जमाने में व्यस्त हो गए। शिक्षा छात्रों के आंतरिक जीवन के परिदृश्य को बदलने में असमर्थ हो गई। जिस प्रकार बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शरीर को रोगमुक्त रखने के लिए गहरे मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक आयामों पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है, उसी प्रकार अधिगम और अध्यापन को भी स्वस्थ और निर्दोष बनाने के लिए नए सीमांतों की तलाश हो गई है। ये नए सीमांत छात्रों और शिक्षकों के आंतरिक जीवन हैं। इन्हीं के बीच संवाद स्थापित करना शिक्षक का मर्म और धर्म है।

के. 404 शालीमार टाउनशिप
ए. बी. रोड, इंदौर-10(म.प्र.)
मो.- 9826803229

हिंदी के अग्रदूत किशोरीदास वाजपेयी

– **प्रकाश मनु**

जन्म – 12 मई 1950।
शिक्षा – एम.एस.सी., एम.ए.।
रचनाएँ – नब्बे पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – हिंदी अकादमी के साहित्यकार सम्मान सहित अनेक सम्मानों से अलंकृत।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी हिंदी के अनन्य साधक, महान विद्वान और ऐसे अद्भुत व्याकरणाचार्य हैं, जिन्हें पूरा हिंदी जगत बड़े आदर और कृतज्ञता के साथ 'हिंदी का पाणिनि' कहकर पुकारता है। वे हिंदी के पहले मौलिक विचारों वाले भाषाशास्त्री और व्याकरणाचार्य हैं, जिनकी स्थापनाओं के पीछे हिंदी भाषा की बुनियादी समझ और ठोस वैज्ञानिक आधार था। लेकिन अद्भुत पांडित्य के साथ ही साथ वे ऐसे जुझारू, खरे और खुद्दार किस्म के विद्वान थे कि अपने जीवन-काल में ही किंवदंती-पुरुष बन गए।

अपनी गँवई गरीबी पर गर्व करने वाले वाजपेयी जी कभी किसी बड़े से बड़े धन्नासेठ या बड़े सत्ताधीश के आगे नहीं झुके। वे हिंदी के ऐसे साधक थे जो खून तपाकर जीते थे और दिन-रात अपने काम और साधना के सुरूर में ही मस्त रहते थे। कबीर की तरह 'हमन मस्ताना रे!' तन पर मोटा खादी का कुरता और हाथ में सोटा, यह उनकी ऐसी खाँटी देसी धज और पहचान थी जिसके आगे बड़े-बड़ों का आभिजात्य भरा अहंकार चूर हो जाता था।

बड़े-बड़े विद्वानों और व्याकरणाचार्यों से अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाने वाले वाजपेयी जी का जीवन जिन अभावों, मुश्किलों और विषम गरीबी के चक्कों के बीच पिसते हुए गुजरा, उसकी कल्पना भी हमें सिहरा देती है। बिठूर के निकट उनका गाँव है रामनगर, जहाँ उनके पिता एक किस्म के खेतिहर मजदूर थे। किशोरीदास वाजपेयी ने बचपन और किशोरावस्था में जीवन-यापन के लिए बकरियाँ चराने, चार-छ: आने दिहाड़ी पर मजदूरी, छतों की मरम्मत और बोझा ढोने समेत ऐसे बहुत से काम किए, जिनके बारे में सोचकर भीतर एक थरथराहट-सी पैदा होती है। दूसरे बच्चों की तरह पोथी पढ़ने और वर्णमाला सीखने का तो प्रश्न ही कहाँ था, जब रोटी के भी लाले पड़े थे। पर बुद्धि की प्रखरता बचपन से ही थी, जो सामने आने के लिए रास्ता जोह रही थी।

बेइंतिहा तकलीफें झेलने के बाद वे घर से भाग निकले और फिर जहाँ जो काम मिला, करते हुए अपने पढ़ने-लिखने की जुगत करते रहे। और फिर यहाँ-वहाँ के धक्के खाने के बाद धीरे-धीरे सुगबुगाते हुए जब रास्ता मिला तो वे एकाएक ऐसे प्रकाशपुंज की तरह सामने आए कि उस भास्वर मेधा के आगे बड़े-बड़े विश्वविद्यालयीय पढ़ाकू विद्वानों की विद्वत्ता फीकी पड़ गई। सब ओर उनका नाम और कीर्ति-पताका छा गई। उनके आचार्यत्व के तप और तेज का बड़े-बड़े विद्वान लोहा मान गए।

वाजपेयी जी हिंदी के पहले मौलिक भाषाशास्त्री थे, जिन्होंने 'हिंदी शब्दानुशासन' के रूप में हिंदी का पहला व्याकरण ही नहीं बनाया, बल्कि आगे के लिए उसका रूप स्थिर किया और उसकी वैज्ञानिकता की ओर सबसे पहले देश-दुनिया का ध्यान आकर्षित किया। इस रूप में वे सचमुच हिंदी के पाणिनि थे, जिन्होंने पहली बार हिंदी को संस्कृत से अलग रखकर देखा और एक सार्वभौम भाषा के रूप में स्वतंत्र ढंग से उस पर विचार किया। हिंदी व्याकरण की मौलिक अवधारणाओं और उद्भावनाओं से जनमा उनका 'हिंदी शब्दानुशासन' निर्द्वंद्व रूप से हिंदी व्याकरण की पहली सर्वांगपूर्ण कृति मानी जाती है, जिसकी टक्कर का कोई दूसरा ग्रंथ आज भी नहीं है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन और डॉ. रामविलास शर्मा समेत हिंदी के प्राय: सभी बड़े विद्वानों ने उसकी सराहना की। उन्होंने भी, जिनकी वाजपेयी जी से कुछ असहमतियाँ थीं, बड़े आदर और कृतज्ञता के साथ स्वीकार किया कि हिंदी व्याकरण की उनकी उद्भावनाएँ एकदम मौलिक और विलक्षण हैं और एक चुनौती पैदा करती हैं।

हालाँकि इसके बावजूद आचार्य किशोरीदास वाजपेयी को इतनी अकथनीय उपेक्षा झेलनी पड़ी कि मन खिन्नता और क्षोभ से भर जाता है। आश्चर्य, उन जैसे विद्वान को पूरा जीवन आर्थिक विपन्नता की हालत में काटना पड़ा। हिंदी व्याकरण का जैसा महाग्रंथ हिंदी में एक भी नहीं है, उसका लेखक जीवन भर गरीबी और बदहाली की स्थिति में रहा। इसीलिए रामविलास शर्मा बार-बार बड़ी कसक के साथ कहा करते थे कि हिंदी जाति में लेखकों का सम्मान नहीं है। यही नहीं, बल्कि हिंदी के लोग स्वाभिमान से भी रहित हैं, जो अपने एक बड़े और प्रतिभावान साहित्यकार की मेधा का सम्मान नहीं कर सके।

वाजपेयी जी कितने खुद्दार और स्वाभिमानी लेखक थे, यह आज किंवदंतियों का विषय बन चुका है और इस पर इतनी नाना किस्म की कथाएँ कही जाती हैं कि उन्हें एक जगह सँजो लिया जाए, तो मजे में एक बृहत् उपन्यास लिखा जा सकता है। हालाँकि उनका असाधारण हिंदी-प्रेम कोई सनक नहीं, हिंदी के एक प्रखर और स्वाभिमानी साधक का बड़ा ही स्वाभाविक अभिमान था, जिसे ठीक से समझा नहीं गया। लोगों ने जिन्हें हास-परिहास की वस्तु माना, वाजपेयी जी के लिए वे जीने-मरने के सवाल थे।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने 'हिंदी शब्दानुशासन' में पंडित किशोरीदास वाजपेयी पर लिखे गए लेख में उनकी प्रतिभा और असाधारण हिंदी सेवा के प्रति बेहद आदर प्रकट करते हुए लिखा है कि विलक्षण व्यक्तियों की अकड़ और खुद्दारी को भी हमें सही ढंग से देखना और बरदाश्त करना आना चाहिए। इस संदर्भ में उन्होंने रूसी चिंतक पावलोफ का उदाहरण दिया—

'हरेक असाधारण प्रतिभाशाली पुरुष में कुछ ऐसी विलक्षणता या विशिष्टता भी होती है जिसे सभ्य गुणग्राही समाज को बरदाश्त करने के लिए तैयार रहना पड़ता है। यह कोई महँगा सौदा नहीं है, क्योंकि थोड़ी सी नाजबरदारी करके आप उनसे बहुमूल्य वस्तु प्राप्त कर सकते हैं। प्रतिभाएँ सात खून माफ वाली श्रेणी में होती हैं। पावलोफ लेनिन तथा सभी बोल्शेविकों को हमेशा गालियाँ सुनाता था, जबकि बोल्शेविक अभी-अभी अधिरकारारूढ़ हुए ही थे। लेकिन लेनिन उनकी सभी कटूक्तियों को हँसकर टाल दिया करते थे और कहते थे कि पावलोफ जीवन और मनोविज्ञान के ऐसे तत्वों और तथ्यों का आविष्कार कर रहा है, जो मार्क्सवादी भौतिकवाद के जबरदस्त समर्थक हैं। यह प्रतिभाओं की कद्रदानी उनकी नाजबरदारी और सब तरह से उनकी सेवा की भावना ही है जिसके कारण बोल्शेविक आज ज्ञान-विज्ञान में दुनिया के अगुवा हैं।'

हिंदी वालों को किशोरीदास वाजपेयी के होने का अर्थ समझाते हुए राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं, 'आचार्य वाजपेयी हिंदी के व्याकरण और भाषाविज्ञान पर असाधारण अधिकार रखते हैं। वाजपेयी जी रस और अलंकार के अखाड़े में भी भारी पहलवान हैं। हिंदी साहित्य के कितने ही विषय हैं जिन पर खुलकर लिखने के अधिकारी उनके जैसे नहीं हैं। वाजपेयी जी लीक पर चलने वाले पुरुष नहीं हैं।'

कहना न होगा कि आज समय के साथ राहुल सांकृत्यायन की बातों का मर्म कहीं अधिक प्रखरता और गहराई के साथ सामने आ रहा है। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी की महान हिंदी सेवा और उनके अद्भुत व्याकरण ग्रंथ का महत्त्व हिंदी के विद्वान बड़ी कृतज्ञता के साथ स्वीकार करने लगे हैं, यह सुख की बात है।

अंग्रेजी सत्ता को चुनौती :- आचार्य किशोरीदास वाजपेयी वाकई अक्खड़ थे। पर उनकी अक्खड़ता उनके अगाध ज्ञान, पांडित्य और स्वाभिमान से जुड़ी थी। जीवन के शुरुआती चरण में वे जिस अभाव, दारिद्य और भीषण कठिनाइयों से गुजरे, उन्होंने अगर उन्हें अक्खड़ बनाया, तो इसमें आश्चर्य क्या! लेकिन अपनी इसी अक्खड़ता के कारण वाजपेयी जी अन्याय के खिलाफ खड़े होने में जरा भी देर नहीं लगाते थे। यहाँ तक कि उन्होंने अंग्रेजी सत्ता की भी परवाह नहीं की और जो सही लगा, वह कहने से कभी नहीं चूके। उनके शुरुआती दिनों की बात है। वे हरिद्वार के एक स्कूल में अध्यापक थे। उन्हीं दिनों एक अंग्रेज अधिकारी ए. ह्यूम ने उनसे थोड़ी देर बात करने पर कुछ शंकित होकर पूछा, 'तो क्या तुम चाहते हो कि अंग्रेज इस देश से चले जाएँ?'

इस पर वाजपेयी जी ने बड़ा ही कूटनीति से भरा जवाब दिया। बोले—'नहीं, ऐसा मैं क्यों कहूँगा? आखिर इंग्लैंड में भी तो भारतीय रहते ही हैं।'

अंग्रेज अधिकारी वाजपेयी जी के तर्क-कौशल से कुछ चौंका। अब के उसने सीधा-सीधा सवाल दाग दिया। पूछा, 'अच्छा, यह बताओ कि क्या तुम अंग्रेजी शासन के विरुद्ध हो? क्या तुम चाहते हो कि अंग्रेजी राज भारत से चला जाए?'

इस पर किशोरीदास वाजपेयी का एकदम निर्भीक उत्तर था, 'ऐसा कौन भारतीय नहीं चाहेगा? जो ऐसा नहीं कहते, जरा उनके भी दिल से पूछिए तो आपको पता चलेगा कि वे भी ऐसा ही सोचते हैं। भले ही वे यह बात कहें या नहीं।'

उस अंग्रेज अधिकारी को पता नहीं था कि उसने सवाल पूछा किससे है। इसलिए किशोरीदास वाजपेयी का निर्भीक उत्तर सुनकर कुछ देर के लिए तो वह बुरी तरह हकबका सा गया। फिर बोला, 'अरे, तुम तो बड़े खतरनाक आदमी हो!' कहकर उसने वाजपेयी जी को फौरन नौकरी से बर्खास्त कर दिया।

पर किशोरीदास वाजपेयी को इस बात की परवाह ही कब थी? वे जेल में जाने के लिए हर वक्त तैयार रहते थे। उनके साथ जनता का इतना बल था कि अंग्रेज सरकार उन्हें हाथ लगाते डरती थी। जेल जाना उनके लिए खेल था। वहाँ भी वे सभी कैदियों पर अपनी विद्वत्ता की गहरी छाप छोड़ते थे। यहाँ तक कि एक बार तो उन्होंने जेल में रस-अलंकार पर एक पूरी पुस्तक ही लिख डाली। उसमें उदाहरण के लिए उन्होंने स्वयं की रची हुई बड़ी सुंदर और भावपूर्ण कविताएँ जगह-जगह गूँथ दीं।

इस पुस्तक की खास बात यह थी कि जो काव्य-पंक्तियाँ उसमें दी गई थीं, वे भारतीय स्वाधीनता संग्राम के जुझारू नायकों और देशाभिमानियों के त्याग और वीरतापूर्ण प्रसंगों को आधार बनाकर लिखी गई थीं। और वाजपेयी जी ने उन्हें जेल में ही खासकर इस पुस्तक के लिए लिखा था। लिहाजा यह अपने ढंग की निराली पुस्तक थी, जिसमें आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के पांडित्य और काव्य-प्रतिभा दोनों की छाप थी।

बाद में यह पुस्तक अंग्रेज सरकार ने जब्त कर ली। और फिर उसका क्या हुआ, कुछ पता नहीं चला। यों अंग्रेज सरकार की इस संवेदनशून्यता के कारण रस-अलंकार विवेचन पर इतनी मेहनत से लिखी गई आचार्य किशोरीदास वाजपेयी की पुस्तक और उनका देशभक्तिपूर्ण काव्य भी हमेशा के लिए लुप्त हो गया। पर वाजपेयी जी सरीखा जीवट वाला व्यक्ति भला हार कैसे मान लेता? उन्होंने आगे चलकर एक ओर कांग्रेस का इतिहास लिखा और दूसरी ओर रस-अलंकार पर लिखे गए कहीं अधिक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथों के आधार पर अपनी वैसी ही धाक कायम की।

आपके पांडित्य ने मुझे मोह लिया :- आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तक किशोरीदास वाजपेयी की प्रतिभा से चमत्कृत थे। 15 मई, 1932 को उन्होंने अपने गाँव दौलताबाद से वाजपेयी जी को पहला पत्र लिखा। उसमें उनकी सहृदयता की प्रशंसा करते हुए उन्हें कालिदास याद आए, 'इधर आपके कई लेख देखने को मिले। कुछ मैंने खुद पढ़े कुछ पढ़वाकर सुने। आपके पांडित्य ने मुझे मोह लिया। आप बड़े सरस हृदय, काव्य-मर्मज्ञ और सत्समालोचक हैं। कुछ-कुछ कालिदास के शब्दों में परमात्मा से मेरी प्रार्थना है—उदन्वदाकाश महीतलेषु न रोधमाप्नोतु यश: मदीयम्।'

26 जुलाई, 1933 को आचार्य द्विवेदी जी ने फिर उन्हें पत्र लिखा। वे हिंदी लेखकों के भाषा-संबंधी अतिचार और अराजकता से दुखी थे, जिनकी किशोरीदास वाजपेयी अपने लेखों में बड़ी अच्छी तरह खबर लेते थे। द्विवेदी जी के लिए यह बड़े संतोष की बात थी कि हिंदी की स्वाभाविक प्रकृति और मर्यादा की बात करने वाला कम से कम एक खाँटी लेखक तो हिंदी में है। 'माधुरी' में प्रकाशित वाजपेयी जी का एक लेख पढ़कर लिखे गए इस पत्र में गहरी आत्मीयता के साथ-साथ वाजपेयी जी के लेखन और पांडित्य के प्रति द्विवेदी जी के अगाध विश्वास का भी पता चलता है—

'1 जुलाई को 'माधुरी' में आपका लेख पढ़े बिना मुझसे न रहा गया। मनोमुकुल खिल उठा। आप सहृदय ही नहीं, काव्यज्ञ और शास्त्रज्ञ भी हैं। कभी-कभी इसी तरह इन लोगों को खटखटा दिया करो। इनकी हरकतें देखकर यदा-कदा मेरा जी जल उठता है।'

मानो द्विवेदी जी यह देखकर प्रसन्न हैं कि उनके अधूरे काम को हिंदी के एक उठते हुए भाषाशास्त्री और विद्वान किशोरीदास वाजपेयी अपने ढंग से आगे बढ़ा रहे हैं, जिनके मन में हिंदी के लिए गहरा प्रेम और अनुराग है।

इससे पता चलता है कि आचार्य द्विवेदी हिंदी की हित-चिंता और उसकी मर्यादा की रक्षा के मामले में किशोरीदास वाजपेयी को मानो अपने योग्य और समर्थ उत्तराधिकारी के रूप में देख रहे थे। और किशोरीदास वाजपेयी हिंदी का उपहास करने वाले उर्दू वालों की सनकों और विसंगतियों को कभी-कभी इतने तार्किक ढंग से दर्शाते थे कि अच्छे-अच्छे उर्दूदाँ हक्के-बक्के रह जाते थे।

डॉ. अंबाप्रसाद सुमन ने वाजपेयी जी पर लिखे गए संस्मरण में एक प्रसंग का जिक्र किया है कि एक बार उन्होंने आचार्य किशोरीदास वाजपेयी को अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में व्याख्यान के लिए बुलाया। उसमें वाजपेयी जी ने उन उर्दू वालों को निरुत्तर कर दिया था, जो हिंदी के शब्दों को बिगाड़कर बोलते हैं। वाजपेयी जी का कहना था, 'उर्दू वाले नामी-ग्रामी को नामी-गिरामी बोलते हैं। वे किलोग्राम को किलोगिराम क्यों नहीं बोलते?'

जाहिर है, उर्दू वालों के पास इसका कोई जवाब नहीं था। वे पहली बार हिंदी के एक ऐसे आचार्य को देख और सुन रहे थे, जिसके ठेठ हिंदुस्तानी ठाट और देसी धज में बड़ा ठसका था और जिसके तर्क जीवन से सीधे-सीधे निकले होने के कारण सामने वाले को लाजवाब कर देते थे।

यही कारण है कि डॉ. रामविलास शर्मा ने वाजपेयी जी को भेजे गए एक पत्र में हिंदी भाषा में उनके बड़े योगदान को याद करते हुए बड़े प्रेम और आदर के साथ लिखा, 'चंद्रमा किस-किस को शीतलता प्रदान करता है, स्वयं ही नहीं जानता। आपसे कितने लोग स्नेह-संबंध से जुड़े हैं, आप भी न जानते होंगे।'

पं. श्रीनिवास चतुर्वेदी उन्हें 'आदरास्पद' मानते थे। उनकी तपस्या और तेजस्विता की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा, 'निश्चय ही भावी पीढ़ी पंडितजी के तेजस्वी व्यक्तित्व का और उनके महत्त्वपूर्ण और मौलिक कृतित्व का उचित मूल्यांकन करेगी, इसमें मुझे संदेह नहीं है। उनकी कर्मठता, उनकी तपस्या, उनकी निश्छलता और नीर-क्षीर विवेकी बुद्धि ने मेरे लिए उन्हें आदरास्पद बनाया है।'

दिनकर भी वाजपेयी जी की कठोर सत्यप्रियता और निर्भीकता की भावमग्न होकर चर्चा करते हैं। उनका कहना है कि अगर कोई हिंदी की सेवा करना चाहता है, तो वह किशोरीदास वाजपेयी से बहुत कुछ सीख सकता है। दिनकर जी के शब्द-शब्द में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के लिए प्रेम और आदर छलछला रहा है—

'हिंदी संसार पंडित किशोरीदास वाजपेयी को तार्किक के रूप में जानता है, शास्त्रार्थी और भाषा के आचार्य के रूप में जानता है और अनेक लोग प्रसन्न अथवा अप्रसन्न होकर उनके अस्तित्व को इसलिए स्वीकार करते हैं कि वाजपेयी जी में कठोर सत्यप्रियता और निर्भीकता कूट-कूटकर भरी है। वे साहित्य के उद्भट विद्वान हैं और जिसकी भी होशहवास के साथ साहित्य में काम करने की इच्छा हो, उसे वाजपेयी जी के निबंधों को ध्यान से पढ़ना चाहिए। वाजपेयी जी के लेखन में कितनी ही विलक्षणताएँ हैं जो अन्यत्र नहीं मिलतीं।'

प्रभाकर माचवे ने आचार्य वाजपेयी की प्रखर मेधा का स्मरण करते हुए उन पर बड़ा अच्छा संस्मरण लिखा है। वाजपेयी जी से पहली मुलाकात का स्मरण करते हुए वे लिखते हैं, 'सबसे पहले मैंने आचार्य जी के दर्शन 1942 के ग्रीष्म में, जब मैं 'शासन शब्द-कोश' नामक 16000 अंग्रेजी-हिंदी पर्यायवाची कोश के संपादन-कार्य में महापंडित राहुल सांकृत्यायन के साथ सत्यनारायण कुटीर इलाहाबाद में संलग्न था...तब उन दो महान भाषाशास्त्रियों की भेंट के साक्षी के नाते, किए।'

उसके बाद माचवे जी ने वाजपेयी जी के बारे में तमाम बातें और किस्से सुने। इनमें एक किस्सा एक रूसी शोध-छात्र से संबंध रखता है। वह वाजपेयी जी से मिलने पहुँचा था। पर उन दिनों वाजपेयी जी के आसपास ही हेमचंद्र जोशी और भगवतशरण उपाध्याय भी रहते थे। तीनों अपने-अपने कामों में जुटे थे। पर सुबह वे साथ-साथ घूमने जाते, तो आपस में खुलकर बतकही भी होती जो कभी-कभी घनघोर बहस में बदल जाती थी। कई बार वाजपेयी जी क्रुद्ध भी हो जाते थे।

पर प्रभाकर माचवे अच्छी तरह जानते हैं कि वाजपेयी जी के रोष और क्रोधी स्वभाव के पीछे बहुत कुछ है, जिसे जानने के बाद वाजपेयी जी का एक बड़ा भव्य चरित्र हमारी आँखों के आगे आता है। वाजपेयी जी ने जितना बड़ा काम किया, उसकी तुलना में उन्होंने बहुत कम लिया। पर वे लाखों हृदयों में राज कर रहे हैं, यह क्या भुलाने की बात है? वर्तमान हिंदी का रूप गढ़ने में वाजपेयी जी की लंबी साधना का जिक्र करते हुए माचवे जी कहते हैं—

'उन्होंने अपने ग्रंथों से सिद्ध किया कि हिंदी व्याकरण की काया कामताप्रसाद गुरु की तरह नेलसन्स ग्रामर (अंग्रेजी) के आधार पर नहीं बनेगी, न डॉ. आर्येंद्र शर्मा की तरह या डॉ. रघुवीर की तरह केवल संस्कृत व्याकरणों पर अधिकृत रहेगी। हिंदी की शौरसेनी प्राकृत की ब्रजभाषा वाली मूल प्रकृति भिन्न है। वहीं हिंदी-उर्दू की जड़ें हैं। यह विश्वास उन्हें व्याकरण नियमों और अपवादों, कृदंत और प्रत्यय उपसर्गों के अनुसंधान में ले गया। वे शत-प्रतिशत स्वदेशी विद्वान थे, अंग्रेजी से अप्रदूषित। मराठी

के वैद्यनाथ काशीनाथ राजवाड़े ऐसे ही थे, बंगला में क्षितिमोहन सेन ने ऐसा ही काम किया। ओड़िया के पूर्णचंद्र महाराज कोश के संपादक और असमिया के हेमचंद्र गोस्वामी ऐसे ही मूलगामी विद्वान थे। गुजराती में पं. सुखलाल जी ने वही हेमचंद्र की परंपरा आगे बढ़ाई। आज हिंदी के पचास विश्वविद्यालय विभागों में चिराग लेकर दस भी प्राकृत के विद्वान नहीं मिलेंगे। नई पीढ़ी में तो वे भी नहीं। इसलिए 'प्राकृत जन गुणगान' करते समय किशोरीदास का नाम हम अव्वल नंबर पर अभिमान से लेंगे।'

किशोरीदास वाजपेयी उन लोगों का उपहास उड़ाने का कोई अवसर नहीं छोड़ते थे, जो कुछ पश्चिमी लेखकों की किताबें पढ़कर उन्हीं के सहारे अपनी विद्वत्ता का ढिंढोरा पीटते हुए घूम रहे थे। पर वाजपेयी जी उन्हें विद्वान मानना तो दूर, उनकी स्थापनाओं को चर्चा के लायक भी नहीं मानते थे। भाषाविज्ञान के ऐसे तथाकथित विद्वानों के बारे में उनका स्पष्ट कहना था कि चार अंग्रेजी की किताबें पढ़कर कोई विद्वान नहीं हो जाता, जब तक किसी ने देशज भाषा बोलने वालों और भाषाक्षेत्रों को निकटता से देखा-जाना और महसूस नहीं किया।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के प्रशंसकों में जगदीश गुप्त भी थे, जिन्हें इस स्वाभिमानी हिंदीभक्त को निकटता से देखने का सौभाग्य मिला। जगदीश गुप्त की वाजपेयी जी से कई मुलाकातें हुईं, जिन्हें उन्होंने बड़े आदर से याद किया है। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान की ओर से वाजपेयी जी के सम्मान का जिक्र करते हुए वे लिखते हैं—

'राष्ट्र की ओर से वाजपेयी जी का अद्भुत सम्मान! मैं इस सम्मान समारोह में उपस्थित था और पूरी नाटकीयता का साक्षी होकर अपने को कृतार्थ मानता हूँ। 18 सितंबर 1977 को हिंदी संस्थान उत्तर प्रदेश द्वारा आयोजित विशेष हिंदी समारोह में आचार्य पं. किशोरीदास वाजपेयी को राष्ट्र की ओर से सम्मानित करने के लिए माननीय श्री मोरारजी देसाई, प्रधानमंत्री, भारत सरकार, स्वयं मंच से उतरकर नीचे आए। श्रोताओं में बैठे हुए आचार्य वाजपेयी भावविभोर हो गए, त्यागमूर्ति आचार्य वाजपेयी तथा परम विद्यानुरागी प्रधानमंत्री सात्विक आनंद मुद्रा में।'

कहना न होगा, अगले दिन के अखबारों के मुखपृष्ठों पर एक विनम्र राजनेता द्वारा हिंदी के एक महान आचार्य के सम्मान के लिए मंच से उतरकर स्वयं आचार्य के सम्मुख पहुँचने का समाचार छाया हुआ था। यहाँ तक कि हिंदी के लिए एक शब्द भी बरबाद न करने वाले अंग्रेजी अखबारों ने भी उसे बड़ी प्रमुखता से छापा। यह हिंदी के एक बड़े आचार्य और सरस्वती-पुत्र के स्वाभिमान की विजय का एक विलक्षण उदाहरण था—और संभवत: पहला भी!

घोर निर्धनता और अभावों से भरा जीवन :- जैसा कि ऊपर कहा गया है, वाजपेयी जी का बाल्यकाल घोर निर्धनता और अभावों के बीच कटा। आखिर घर से भागकर वे वृंदावन पहुँचे। वृंदावन का यह प्रवास उनके जीवन में एक नया मोड़ ले आया। उनके पढ़ने-लिखने, गुनने और समझने की शुरुआत यहीं से हुई। और एक बार अध्ययन शुरू हुआ तो वह जीवन भर रुका नहीं।

आचार्य वाजपेयी जी सरलता और सादगी की मिसाल थे। अपने उपमान स्वयं, किसी से उनकी तुलना नहीं हो सकती थी। उनका जन्मस्थान गाँव रामनगर, बिठूर के पास है। एक पुस्तक में अपने जन्मस्थान को भावविभोर होकर याद करते हुए वे उसकी मनोरमता और प्रकृति की सुंदरता के बारे में लिखते हैं —

ताके ढंग अभिराम, ग्राम एक छोटो सोहे,
रामनगर सुचि नाम, सुनत सैननि हठि मोहे।
माटी के घर सुघर, पिंडोरनि पुते लसत हैं,
नगरनि ते जनु मजे, सतोगुन मन दरसत हैं।

हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' से बातचीत में वाजपेयी जी ने अपने दारिद्र्य और अभावग्रस्त बचपन की एक झलक सामने रखी है। वे बताते हैं— 'पिता जी खेतीबाड़ी करते थे, पर अपनी फुट भर जमीन भी न थी। हमने बेहद गरीबी का जीवन बिताया। बचपन में ही जब परिवार प्लेग का शिकार हो गया, तब मैंने क्या-क्या नहीं किया। एक दिन कचालू बनाकर गाँव के छोटे से स्टेशन पर बेचे। दो आने मजदूरी पर छत का चूना कूटा, गाय-भैंसें चराईं, छ: आने रोज पर खेतों में निराई की, मजदूरी की। कानपुर में कपड़ा मिल में बंडल उठाने का काम किया, मकानों की पुताई करने वाले मजदूरों के साथ लगा। लेकिन कभी-कभी पढ़ने की इच्छा जोर मारती थी और तब एक दिन भाग पड़ा वृंदावन के लिए। वहीं छोटे-छोटे काम भी किए, साथ ही कुछ पढ़ाई भी।'

वृंदावन में ही उन्होंने अपना नाम किशोरीदास वाजपेयी रखा। उनका पारिवारिक नाम था गोविंदप्रसाद। पर वह उन्हें ज्यादा

प्रिय न था। वृंदावन में राधा के किशोरी और कृष्ण के किशोरीरमण नाम ने शायद उन्हें आकर्षित किया हो। सो वे किशोरीदास वाजपेयी हो गए।

धीरे-धीरे यहीं ज्ञान की भूख जागी और उन्होंने अध्ययन शुरू किया। यह अध्ययन विशेषकर संस्कृत में था। उन्होंने काशी से प्रथमा परीक्षा बहुत अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की। प्रथम श्रेणी और सभी परीक्षार्थियों में तीसरा स्थान। फिर पंजाब विश्वविद्यालय से उन्होंने संस्कृत में शास्त्री की परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रथम रहकर उत्तीर्ण की। इससे सब ओर उनके नाम का डंका बजने लगा। उस समय पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री की परीक्षा कितनी कठिन थी, इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि उसी वर्ष राहुल सांकृत्यायन भी शास्त्री की परीक्षा में बैठे थे, पर वे अनुत्तीर्ण हो गए थे।

वाजपेयी जी को दीक्षांत समारोह में उपाधि लेने के लिए बुलाया गया। पर उस समय पंजाब के गवर्नर जनरल ओ डायर थे। वाजपेयी जी ने तय कर लिया कि वे हत्यारे डायर के हाथ से सनद नहीं लेंगे।

इसी बीच डायर को जाना पड़ा और उसकी जगह गवर्नर बने मैकलेगन। वाजपेयी जी उनके हाथ से उपाधि लेने के लिए तैयार हो गए। उन्हें बताया गया कि उपाधि ग्रहण करते समय गाउन और हुड पहनना जरूरी है। पर उन्होंने तय किया कि गाउन और हुड नहीं पहनेंगे। उप-रजिस्ट्रार दत्ता साहब ने उपाधि ग्रहण करने का सही तौर-तरीका समझाया था कि किस तरह सिर थोड़ा झुकाकर दोनों हाथों से उपाधि लेनी है। फिर एक हाथ में उपाधि लेकर दूसरा हाथ आदर से आगे बढ़कर हाथ मिलाना है। फिर तत्काल पीछे नहीं मुड़ना, क्योंकि यह बड़ी बेअदबी समझी जाएगी। बल्कि कुछ कदम उलटा पीछे चलते हुए फिर मुड़कर अपनी जगह जाकर बैठ जाना है। वाजपेयी जी बिना गाउन पहने अपनी खाँटी वेशभूषा में उपाधि ग्रहण करने के लिए पहुँचे। उन्होंने बिना सिर झुकाए एक हाथ से उपाधि ली, पर दूसरा हाथ आगे नहीं बढ़ाया। हाथ मिलाने के लिए बढ़ा गवर्नर का हाथ हवा में झूलता रहा और वाजपेयी कुछ कदम उलटे पैरों पीछे जाने के बजाय, फौरन मुड़कर वापस आ गए। न जाते हुए सलाम किया और न आते हुए। लोगों ने समझ लिया कि हिंदी का स्वाभिमानी विद्वान कैसा होता है।

इसके बाद आजीविका के सिलसिले में रावलपिंडी, करनाल आदि कई जगहों की परिक्रमा करने के बाद, आखिर घूम-घामकर वे कनखल आए और फिर यहीं आकर टिक गए। उनका अधिकांश साहित्य यहीं लिखा गया। पर इसके साथ ही वे स्वाधीनता संग्राम में भी सक्रिय रहे और कई बार जेल गए।

सन् 42 के जन आंदोलन में उनकी सक्रिय भूमिका थी। उस समय लोग इतने आक्रोश में थे कि जगह-जगह सरकारी दफ्तर, डाकखाने आदि जला दिए गए। अंग्रेज सरकार इससे बुरी तरह चिढ़ गई थी। जनता के कठोर और हिंसक दमन के साथ-साथ वाजपेयी जी को भी गिरफ्त में लेने की साजिशें तैयार हो रही थीं। उनके बेटे मधुसूदन वाजपेयी ने पिता पर लिखे गए संस्मरण में यह पूरा ब्योरा लिखा है—'एक ट्रक भरकर सशस्त्र पुलिस आई और उसने मकान को घेर लिया, तिरंगा झंडा उतारकर ले गई और पिता जी को गिरफ्तार कर लिया गया। मैं पीछे-पीछे उनका सामान जमा करने थाने गया। कुछ दिन बाद सहारनपुर जेल में वारंट पहुँचा और पिता जी को एक हाथ में हथकड़ी डालकर मुकदमे के लिए हरिद्वार लाया गया। यहाँ मुकदमे में पिता जी ने महात्मा गाँधी की अहिंसा का नाम लिया तो अंग्रेज मजिस्ट्रेट खुश हो गया, जब कि दारोगा बहुत बौखलाए। उन्होंने पिता जी से पूछा—क्या आप अहिंसावादी हैं? पिता जी ने कहा—कांग्रेसी होने के नाते हूँ ही। पचास रुपए जुर्माना और अदालत उठने तक की सजा हुई। मैं भी भीड़ के साथ फैसला सुन रहा था। पिता जी ने अदालत में ही इशारे से मुझे बुलाया और कहा कि खादी आश्रम से झंडा खरीदकर घर में लगाओ। इस बीच पुलिस वाले पचास रुपए जुर्माने की वसूली के लिए कुर्की हेतु बहुत सा सामान उठा ले गए, क्योंकि माता जी ने कह दिया था हम जुर्माना नहीं देंगे।'

यों आचार्य किशोरीदास वाजपेयी जेल से छूटकर आए और घर में फिर तिरंगा फहराने लगा था। पुलिस बौखलाई हुई थी, पर कुछ न कर सकी। और लोगों के मन में अपने इस तपे हुए खाँटी नेता के लिए आदर कई गुना अधिक बढ़ गया।

गंभीर अध्ययन-मनन और रचना-यात्रा :- इसी के साथ ही रात-दिन वाजपेयी जी का अध्ययन-मनन और लेखन निरंतर जारी था। अब तक उनके लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगे थे। इनमें 'अर्जुन, हिंदुस्तान, नवभारत टाइम्स, राष्ट्रदूत, नवजीवन' और 'भारत' प्रमुख हैं। वाजपेयी जी ने साहित्यिक आलोचना के साथ-साथ सामाजिक-राजनीतिक विषयों पर भी खुलकर लिखा है। यहाँ तक कि उन्होंने कांग्रेस का संक्षिप्त

इतिहास भी लिखा, जिसकी प्रामाणिकता की कई बड़े राजनेताओं ने भी सराहना की। फिर भाषाशास्त्र पर तो उनका अतुलनीय काम है ही।

वाजपेयी जी ने एक ओर रस, अलंकार और साहित्य की रस-मीमांसा सरीखी पुस्तकें लिखीं तो दूसरी ओर 'द्वापर की राज्य-क्रांति सुदामा' सरीखा खंड-काव्य भी। तीसरी धारा उनके राजनीतिक-सामाजिक और धार्मिक विषयों पर लेखन की थी, जहाँ वाजपेयी जी का एक बिल्कुल अलग रूप सामने आता है। उनकी लिखी पुस्तकें हैं—'द्वापर की राज्य-क्रांति' 'सुदामा' (1936), 'ब्रजभाषा का व्याकरण' (1944), 'ब्राह्मण, सावधान' (1946), 'कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास' (1948), 'काव्य में रहस्यवाद' (1950), 'अच्छी हिंदी का नमूना' (1952), 'साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण' (1953), 'संस्कृति' (1956), 'हिंदी की वर्तनी' (1968), 'लेखन कला' (1940), 'साहित्य रसमीमांसा' (1926), 'रस और अलंकार' (1930), 'काव्य-प्रवेशिका' (1930), 'साहित्य की उपक्रमणिका' (1931), 'वैष्णव धर्म और आर्य समाज', 'सरल शब्दानुशासन' (संवत् 2015) तथा 'तरंगिणी' (संवत् 1993)।

वाजपेयी जी निस्संदेह बड़े प्रतिभावान साहित्यमनीषी और भाषाशास्त्री थे, लेकिन जो विपुल सृजन उन्होंने किया, उसमें सिर्फ प्रतिभा ही नहीं, बड़ी कठोर साधना भी थी। उनकी इस रचना-यात्रा की शुरुआत हिंदी के मूल स्वरूप को लेकर खुद से ही प्रश्न करने से हुई और फिर चिंतन-मनन का यह सिलसिला चलते-चलते वहाँ पहुँचा, जहाँ एक उद्भट भाषाविज्ञानी के रूप में उनकी सबसे अलग और सर्वोपरि छवि बनी। पं. हरिदत्त भट्ट 'शैलेष' से बातचीत में वे बताते हैं—

'1916 में 'वैष्णव सर्वस्व' में 'दशधा भक्ति' शीर्षक से मेरा पहला लेख छपा था। तब श्री किशोरीलाल गोस्वामी से इसलिए झगड़ बैठा कि मेरे एक वाक्य में दश प्रकार की भक्ति के 'दश' को काटकर 'दस' गलत क्यों कर दिया गया? गोस्वामी जी ने मुस्कुराकर केवल इतना ही कहा कि हिंदी में दस ही चलता है। यह आगे मालूम हो जाएगा। बस, यहीं से मेरा चिंतन-मनन प्रारंभ हुआ और सन् 1919 तक मैंने हिंदी का रूप बहुत कुछ समझ लिया था।'

इससे पता चलता है कि वाजपेयी जी जिद्दी तो शुरू से ही थी। पर इसी जिद ने उनके भीतर हिंदी के सही और प्रकृत स्वभाव को जानने की गहरी उत्कंठा भी पैदा की। वे जिस बात की खोज पर निकले, उसकी जड़ों तक पहुँचे बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता था। यही कारण है कि थोड़े ही समय में उनकी गिनती हिंदी के सबसे सम्मानित और विद्वान भाषाशास्त्रियों में हुई, जिनके अगाध पांडित्य के आगे बड़े-बड़े विश्वविद्यालयीय प्रोफेसरों के छक्के छूटते थे।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने ब्रज भाषा में काव्य-रचना की। उनकी ब्रज भाषा आधुनिकता का गहन संस्कार लिए हुए, बोचचाल की ब्रजभाषा थी। लिहाजा उनकी बातें सीधे-सीधे दिल को छू जाती हैं—

क्यों रोवत हिमगिरि इतै, बृथा बहावत नीर,
भारत के वै दिन गए, गए बाँकुरे बीर।
अखरत सासन बाहरी, जदपि होय सुख-सील,
देति देह नहिं दुख कहा, चुभि सोने की कील।
नीको लगत गुलाम को, नहीं विलासी भेस,
मिटे दुसासन जगत से, सुरझे द्रोपदि-केस।
छरति छरहरी छवि-भरी, धान छबीली बाम,
मनु व्याधिनि के सीस पै, देति मुसल अविराम।

जैसे कील सोने की हो, तो भी चुभती ही है। इसी तरह अंग्रेजों के समय में अगर सुख-शांति हो, तो भी अंग्रेजी राज्य हमें अस्वीकार्य है। इसलिए कि गुलामी की पीड़ा और दंश तो उसके साथ जुड़ा ही है। इसी तरह गुलामी के काल में हमारी विलासिता शोभा नहीं देती। सुख तो तभी मिल सकता है, जब यह दुःशासन खत्म हो और दुखियारी द्रोपदी के केश सुलझ जाएँ!

निर्भीक चिंतक और विद्वान :- आचार्य किशोरीदास वाजपेयी का इतना सम्मान इसलिए भी है कि वे बड़े निर्भीक चिंतक और विद्वान थे। जो बात ठीक जँचती थी, उसे डंके की चोट पर कहने का साहस और माद्दा उनमें था। अक्सर लोग यह कहते हैं कि संस्कृत से हिंदी का जन्म हुआ है यानी हिंदी संस्कृत की पुत्री है। आचार्य वाजपेयी संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। पर वे हिंदी की स्वायत्त और सार्वभौम सत्ता मानते हैं। संस्कृत से हिंदी जनमी है, इस रूढ़ विचार या स्थापना को वे गलत मानते हैं और अपनी बात के समर्थन में तर्क देते हैं। 'हिंदी शब्दानुशासन' के प्रारंभ में ही वाजपेयी जी बहुतों को हैरान करने वाली एक बड़ी क्रांतिकारी स्थापना सामने रखते हैं। उनका कहना है—

'हिंदी की उत्पत्ति उस संस्कृत भाषा से नहीं है जो वेदों में,

उपनिषदों में तथा कालिदास या वाल्मीकि के ग्रंथों में हमें उपलब्ध है। 'करोति' से 'करता है' एकदम कैसे निकल पड़ेगा? 'रामः करोति' की तरह 'सीता करोति' भी संस्कृत में चलता है। परंतु हिंदी में लड़का चलता है, करता है, खाता है, और लड़की चलती है, करती है, खाती है—होता है। कितना अंतर! यह ठीक है कि चल, खा, कर शब्द-रूप संस्कृत के चल, कृ, खाद् से मिलते-जुलते हैं, परंतु इस मेल-जोल का यह मतलब नहीं कि 'चलति' से 'चलता है' निकल पड़ा। दोनों की चाल एकदम अलग-अलग है।'

वाजपेयी जी ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि हिंदी और संस्कृत दोनों का पृथक् और स्वतंत्र पद्धति पर विकास हुआ है। वाजपेयी इन दोनों को एक ही मूल भाषा की शाखाएँ मानते हैं। उनका कहना है कि ये दोनों शाखाएँ इतनी विशाल हैं कि तना कहीं भी दिखाई नहीं देता और उसका इतना अधिक विस्तार है कि कोई सहसा समझ नहीं पाता कि कहाँ से ये चली हैं।

वाजपेयी जी की तीसरी स्थापना को डॉ. रामविलास शर्मा ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि वाजपेयी जी के सामने एक निष्कर्ष स्पष्ट है कि हिंदी की अनेक विशेषताओं का संबंध न वैदिक संस्कृत से है, न लौकिक संस्कृत से और न अपभ्रंश से ही। उनका संबंध खड़ी बोली क्षेत्र की किसी प्राचीन बोली से ही हो सकता है। वाजपेयी जी के भाषा-चिंतन का निचोड़ सामने रखते हुए रामविलास जी लिखते हैं—'किशोरीदास वाजपेयी ने बहुत स्पष्टता और दृढ़ता से इस धारणा का खंडन किया है कि हिंदी की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है। जहाँ ब्लूमफूल जैसे भाषाविज्ञानी फ्रांसीसी को लैटिन का अत्याधुनिक रूप कहते हैं, वहाँ डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या जैसे पारंगत भाषाविद् संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश की सीढ़ियों के बिना आधुनिक भाषाओं तक नहीं पहुँच पाते, वहाँ संस्कृत के प्रकांड पंडित होते हुए वाजपेयी जी का यह कहना कि हिंदी संस्कृत की पुत्री नहीं है, बौद्धिक ईमानदारी की एक अनुकरणीय मिसाल है। ईमानदारी के अलावा यह साहस का भी काम है, क्योंकि संस्कृत के प्रति श्रद्धा की होड़ में कोई भी हिंदी की स्वतंत्र सत्ता मानने की ढिठाई नहीं कर सकता। इसलिए वाजपेयी जी की हिंदी-संस्कृत संबंधी स्थापना का अन्यतम महत्त्व है।' **(पृ. 24)**

'हिंदी शब्दानुशासन' की भूमिका में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी लिखते हैं, 'हिंदी का यह ऐसा व्याकरण बन रहा है जिसे संक्षिप्त भी नहीं कहा जा सकता और पूर्ण भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अभी कुछ और सोचने-करने की गुंजाइश है।'

वाजपेयी जी से पहले कामताप्रसाद गुरु ने जब हिंदी व्याकरण की रचना की, तो उन्होंने बड़ी स्पष्टता से उसकी कमियों को भी स्वीकार किया। साथ ही यह भी कहा कि-'इसका संपादन तभी संभव होगा, जब संस्कृत के अद्वितीय वैयाकरण हिंदी को एक स्वतंत्र और उन्नत भाषा समझकर उसके व्याकरण का अनुशीलन करेंगे।'

किशोरीदास वाजपेयी ने दरअसल यही किया जिसकी ओर कामताप्रसाद गुरु ने इशारा किया था। गुरु जी के हिंदी व्याकरण का आधार अंग्रेजी व्याकरण है, पर वाजपेयी जी को यह स्वीकार नहीं है। हिंदी का व्याकरण तो हिंदी की स्वतंत्र प्रकृति के आधार पर होना चाहिए। उनकी पहली ही स्थापना यह है कि 'हिंदी एक स्वतंत्र भाषा है, वह संस्कृत से अनुप्राणित अवश्य है, जैसे अनेक भारतीय भाषाएँ, परंतु वह अपने क्षेत्र में सार्वभौम सत्ता रखती है।'

वाजपेयी जी ने 'हिंदी शब्दानुशासन' ऐसे ही किसी झोंक में नहीं लिख दिया। उसके पीछे उनकी बड़ी तैयारी थी और उसकी भूमिका बहुत पहले से बन रही थी। 'हिंदी शब्दानुशासन' की रचना उन्होंने छठे दशक के उत्तरार्द्ध में की। उससे काफी पहले सन् 1943 में उन्होंने 'ब्रजभाषा का व्याकरण' लिखकर भाषाविज्ञान में अपनी उपस्थिति की धमक पैदा कर दी थी। इसके छः वर्ष बाद सन् 1949 में उन्होंने 'राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण' लिखा। फिर इसके आठ बरस बाद सन् 1957 में छपकर आया 'हिंदी शब्दानुशासन'। उसके बाद भी इस दिशा में उनके चिंतन-मनन का सिलसिला चलता रहा। 'हिंदी शब्द मीमांसा' (1958), 'भारतीय भाषा विज्ञान' (1959), 'अच्छी हिंदी' (1968), 'हिंदी की वर्तनी और शब्द विश्लेषण' (1968) पुस्तकें इसका प्रमाण हैं। सन् 1949 में उन्होंने 'हिंदी निरुक्त' ग्रंथ लिखा था। इसकी भूमिका में वे लिखते हैं—'इस देश के अनेक आधुनिक आचार्यों ने यह लिख दिया कि भाषाविज्ञान का उदय सर्वप्रथम यूरोप में हुआ। यही बात आलोचनात्मक साहित्य के लिए भी कही और लिखी गई थी, पर जब मैंने...'माधुरी' में 'आलोचना का जन्म और विकास' शीर्षक लेख छपाकर उस भ्रांत धारणा का निराकरण किया, तब लोगों ने वैसा लिखना बंद किया।'

आचार्य वाजपेयी बहुत बड़े व्याकरणाचार्य थे। पर व्याकरण की

सीमाओं को भी जानते थे। उन्होंने लिखा, 'भाषा प्रधान है और व्याकरण उसका अनुगामी या विवेचक है। हम अपनी भाषा जिस रूप में और जिस तरह बोलते हैं, वही शुद्ध है। उसके उसी रूप के तात्विक विवेचन का नाम व्याकरण है। व्याकरण से परभाषा-भाषी हमारी भाषा सीखने में सहायता पाते हैं और हम अपनी भाषा की विवेचना से आनंद का अनुभव करते हैं।'

इसी तरह वे यह मानते हैं कि व्याकरण भाषा का अनुगामी है। वाजपेयी जी के शब्दों में, 'सारांश यह है कि व्याकरण भाषा के विवेचन का नाम है। भाषा पहले बनती है, व्याकरण उसके बाद। जैसी भाषा होती है, वैसा व्याकरण बनाया जाता है, व्याकरण के अनुसार भाषा नहीं।'

वाजपेयी जी ने बड़ी मेहनत और सूझ-बूझ से 'ब्रज भाषा का व्याकरण' लिखा, जो कि ब्रजभाषा का पहला व्याकरण माना जाता है। वे ब्रजभाषा की प्रकृति और साहित्य से बहुत अच्छी तरह परिचित थे। लिहाजा ब्रज भाषा की विशेषताओं का बखान करते हुए बड़े अधिकारपूर्वक वे लिखते हैं, 'ब्रज भाषा में काफी ऊँचे दर्जे का साहित्य है और बहुत दिनों तक यह हिंदी भाषियों की साहित्यिक भाषा रही है।' वाजपेयी जी ब्रज भाषा का सबसे बड़ा गुण मानते हैं उसका माधुर्य। उनका मानना है कि 'अत्यधिक मार्दव और माधुर्य प्रकट करने के लिए ब्रज भाषा ही उत्तम माध्यम है। इसीलिए देश भर ने इसे साहित्यिक भाषा के रूप में ग्रहण किया था।'

सन् 1968 में वाजपेयी जी का ग्रंथ 'हिंदी की वर्तनी और शब्द-विश्लेषण' सामने आया। 'हिंदी शब्दानुशासन' ने जो पीठिका रची, उसी को वे आगे बढ़ा रहे थे। उन्होंने शब्दों के रूप स्थिर करने का बड़ा काम किया। हिंदी की मानक वर्तनी के लिहाज से वाजपेयी जी 'जाए', 'जाएगा' तथा 'आए', 'आई' को ग्रहण करते हैं, 'जाये', 'जायेगा', 'गये', 'गयी' को नहीं। संस्कृत में 'राष्ट्रिय' भले ही चलता हो, पर हिंदी में वे 'राष्ट्रीय' लिखे जाने के ही हामी हैं। इसी तरह 'अंतर्राष्ट्रीय' उन्हें स्वीकार्य है, 'अंतरराष्ट्रीय' नहीं।

गँवई सादगी और स्वाभिमान :- डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह ने वाजपेयी से जुड़ा एक दिलचस्प प्रसंग लिखा है। एक बार वे रेल से यात्रा कर रहे थे, तभी संयोगवश आचार्य वाजपेयी उन्हें मिल गए। उन दिनों चंद्रप्रकाश सिंह राजस्थान के जोधपुर विश्वविद्यालय में हिंदी विभागाध्यक्ष थे, तो उन्होंने वाजपेयी जी को अपने विश्वविद्यालय में आमंत्रित किया। इसके लिए भाषाविज्ञान पर एक विशेष सेमिनार आयोजित किया गया। उसमें आचार्य किशोरीदास वाजपेयी आए।

भाषाविज्ञान पर जो सेमिनार किया गया, उसका जोधपुर उच्च न्यायालय के न्यायमूति श्री बेरी ने उद्घाटन किया। आचार्य वाजपेयी को बोलना था और हिंदी के व्याकरण तथा भाषाविज्ञान से संबंधित अपनी स्थापनाएँ छात्रों और प्राध्यापकों के सामने रखनी थीं। गरमियाँ थीं। कुछ देर तक तो वाजपेयी जी भीषण गरमी में बोलते रहे, फिर अकुला गए। आखिर उन्होंने अपना पसीने से तर कुरता निकाला और उसे आसन पर रख दिया। फिर न्यायमूर्ति बेरी की ओर देखते हुए बोले, 'इस गरमी में कुरता पहने रहने की औपचारिकता के साथ-साथ विचारपूर्ण भाषण देते रहना संभव नहीं है।'

इसके बाद अपनी उसी गँवई पोशाक में बनियान पहने हुए वे देर तक बोलते और अपने पांडित्य और ज्ञान की गंगा में लोगों को अवगाहन कराते रहे। अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान से उन्होंने सभी को अभिभूत कर दिया।

इतना ही नहीं, जितने समय आचार्य वाजपेयी जी कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह के घर रहे, उसी अधिकार के साथ, जैसे यह उन्हीं का अपना घर है। यहाँ तक कि भोजन में इतना घी रहेगा और इसमें इतनी हींग डाली जाएगी, बीच-बीच में यह भी वे गृहिणी को समझा देते थे।

इसी तरह हरिदत्त भट्ट 'शैलेष' ने वाजपेयी जी के बारे में एक दिलचस्प संस्मरण लिखा है। राहुल जी से उनकी भाषाविज्ञान संबंधी बातें चल रही थीं। अचानक उन्होंने कहा, 'भट्ट जी, कभी कनखल जाओ तो पं. किशोरीदास वाजपेयी से जरूर मिलना। मैं उन्हें भारतीय भाषाविज्ञान का प्रथम मुनि मानता हूँ।'

सुनकर भट्ट जी कुछ चकित हुए। उन्होंने मन ही मन सोचा, हमारे यहाँ तो पहले से पाणिनि, पतंजलि और कात्यायन व्याकरण मुनि-त्रय कहलाते हैं। फिर भी राहुल जी जैसे महापंडित ने किशोरीदास वाजपेयी को भारतीय भाषाविज्ञान का 'प्रथम मुनि' कहा? आखिर क्यों? बस, तभी से वाजपेयी जी के दर्शन के लिए उनका मन लालायित था। उनसे मिलना हुआ तो अभिभूत

हो गए। समझ गए, राहुल जी क्यों उनकी इतनी प्रशंसा कर रहे थे।

हरिदत्त भट्ट 'शैलेष' जब आचार्य वाजपेयी के पास पहुँचे, तो बातों-बातों में आर्य-द्रविड़ की बात चली। इस पर उन्हें वाजपेयी जी के बड़े विद्वत्तापूर्ण विचार सुनने को मिले। उन्होंने अपने विस्तृत अध्ययन के आधार पर बताया कि आर्य और द्रविड़ के झगड़े की बात झूठी है। इन दोनों में कभी झगड़ा हुआ ही नहीं। फिर वे बताते हैं कि रामायण में जिन निषादों का जिक्र है, वे ही असल में द्रविड़ थे। मूल रूप से वे आस्ट्रेलिया की जनजातियों के लोग थे। वहाँ से किसी विशेष परिस्थिति में वे भारत आए थे और आगे चलकर दक्षिण में छा गए। वह क्षेत्र खाली था, वे वहाँ बस गए और जल्दी ही खासे संपन्न हो गए। वे जिस क्षेत्र में बसे थे, वह समुद्र के किनारे है। समुद्र से लक्ष्मी के निकलने की कथा हमारे यहाँ बहुत प्रचलित है। संभवत: इसी अर्थ में वे पहले 'द्रविण' कहलाए और फिर बाद में उन्हें 'द्रविड़' कहा जाने लगा। उन्हें भारतीयों से कभी विलग नहीं समझा गया। यहाँ तक कि चार वर्णों की तरह पाँचवाँ वर्ण निषाद माना गया। इस अर्थ में द्रविड़ हमेशा हमारे यहाँ सम्मान का सूचक रहा। उनके तिरस्कार या उनके प्रति आर्यों के शत्रु भाव की बात झूठी है।

वाजपेयी जी आर्य और द्रविड़ों के विरोध की बात को मिथ्या बताते हुए कहते हैं कि यह तो इसी से साबित हो जाता है कि आर्य और द्रविड़ मिलकर असुरों से लड़े। यहाँ तक कि द्रविड़ों का व्याकरण यहाँ से गए अगस्त्य मुनि ने लिखा था। लिहाजा आर्य-द्रविड़ के लड़ाई-झगड़ों या संघर्ष की बात झूठी है। आर्य और द्रविड़ों में ही नहीं, संसार की सभी सभ्यताओं में आदान-प्रदान बहुत प्राचीन काल से ही प्रारंभ हो गया था। आर्य और द्रविड़ संस्कृति, सभ्यता और भाषाओं में भी बहुत कुछ है जो मिलता-जुलता है। इससे पता चलता है कि प्राचीन काल से ही उनका आपस में बड़ा आत्मीय संबंध और मेल-जोल रहा है।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी बड़े निर्भीक चिंतक थे और जो बात उन्हें सही लगे, उसे डंके की चोट पर सही कहने का माद्दा उनमें था। तब वे इस बात की रत्ती भर परवाह नहीं करते थे कि उनकी राय बड़े-बड़े नामी और धुरंधर चिंतकों से एकदम अलग या फिर उनके विरोध में है। सामने भले ही कोई बड़े भारी पद-प्रतिष्ठा वाला शख्स खड़ा हो, मगर बात के पीछे प्रबल तर्क हो, तो उसे लेकर वे भरी सभा में बड़े से बड़े अफलातून को भी ललकार सकते थे। डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल वाजपेयी जी के इसी चिंतन-साहस के मुरीद हैं। उन्हें आदर से याद करते हुए वे कहते हैं, 'आचार्य किशोरीदास वाजपेयी हमारे साहित्य-जगत के गौरव थे। वे उस पीढ़ी की शृंखला की एक सशक्त कड़ी थे, जहाँ सभ्यता और संस्कृति का उल्लासमय पर्व निरापद आकार पाता था।'

वाजपेयी जी उन पढ़े-लिखे मगर अभिमानी लोगों की भूलों की ओर भी बार-बार इशारा करते थे, जो गाँव के अपढ़ लोगों की भाषा को सुधारने के नाम पर हिंदी भाषा की प्रकृति और मिजाज से मनमाना खिलवाड़ करते हैं। भारत की अधिकांश जनता बोलती है—'इकतारा, दुपहर, सतखंडा, तिमंजिला, अठपहलू, सतकुइयाँ' आदि। पर पढ़े-लिखे लोग समझते हैं कि देश की अनपढ़ जनता गलत बोलती है और इन शब्दों को सुधार देना चाहिए। और वे शब्दों को इस तरह सुधारकर लिखते हैं—'एकतारा', 'दोपहर' आदि-आदि। किशोरीदास वाजपेयी ऐसे पढ़ाकुओं के कथित ज्ञान पर हँसते हैं। वे साफ-साफ कहते हैं कि यह भाषा को सुधारना नहीं, बल्कि बिगाड़ना है। भारत की अनपढ़ जनता जो 'इकतारा' और 'दुपहर' बोलती और लिखती है, वह हिंदी की प्रकृति के ज्यादा नजदीक है और उसे तथाकथित पढ़े-लिखों से ज्यादा समझती है।

अपने एक लेख में आचार्य वाजपेयी अपनी बात को तर्कसहित साबित करते हुए लिखते हैं—

'अब 'इकतारा' को 'एकतारा', 'दुपहर' को 'दोपहर' और 'दुपहरी' को 'दोपहरी' लिखा जाने लगा है। इस प्रकार लिखने वाले विद्वान अपनी समझ से तो खूब सोच-समझकर शुद्ध हिंदी लिखते हैं, पर हो गलत जाता है। वे 'इक' और 'एक', 'दु' और 'दो' करके इसीलिए लिखते हैं कि शब्द शुद्ध हो जाएँ, परंतु उन्हें मालूम नहीं कि संख्यावाचक शब्दों का आद्य स्वर द्विगु तथा बहुब्रीहि द्विगु समासों में ऐसे स्थलों में प्राय: गुरु से लघु या दीर्घ से ह्रस्व हो जाया करता है। ए का ह्रस्व इ तथा ओ का ह्रस्व उ ही होता है। इसी तरह दो पहरों का पूरा हो जाना 'दुपहर' या 'दुपहरी' होता है, 'दोपहरी' नहीं। इसी प्रकार सात नाजों या अनाजों का समाहार होता है 'सतनजा', 'सातनजा' नहीं। 'अठपहलू', 'दुमंजिला', 'तिमंजिला', 'पँचमढ़ी', 'सतकुइयाँ' आदि प्रयोग इसी नियम के आधार पर हैं। कोई कहे कि यह नियम किस आधार पर बना, तो जवाब दिया

जाएगा कि हिंदी भाषा की प्रकृति के आधार पर। हिंदी भाषी जनता 'दुपहर' बोलती है, 'दोपहर' नहीं। लोक में 'इकतारा' सुना जाता है, 'एकतारा' नई बात है।'

अंत में वाजपेयी जी एक बड़ी काम की बात कहते हैं, जो हर भाषाविज्ञानी को अपने सामने फ्रेम में मढ़वाकर रख लेनी चाहिए। वे कहते हैं, 'भाषा के प्रयोग देखकर ही व्याकरण बनता है। व्याकरण कोई अलौकिक चीज नहीं है और किसी भी भाषा को विकृत करना महापाप है, भले ही आज उसके लिए किसी को कुछ दंड न मिले।'

भाषा की अराजकता और मनमानेपन पर वे कठोर ढंग से, पर तर्क सहित आक्षेप करते हैं। हिंदी में 'पाश्चात्य' की तर्ज पर 'पौर्वात्य' भी चल निकला है। पर वाजपेयी जी उसे ठीक नहीं मानते। वे लिखते हैं, 'कुछ लोग 'पाश्चात्य' शब्द के अनुकरण पर 'पौर्वात्य' लिख देते हैं और 'सरस्वती' जैसी स्टैंडर्ड पत्रिका में ऐसा छपता है। यह गलत है। 'पौर्वात्य' नहीं, 'पूर्वीय' होगा या फिर 'प्राच्य' लिखिए।'

इसी तरह वाजपेयी जी उन लोगों को भी निशाने पर लेते हैं, जो लोगों को भाषा और व्याकरण पढ़ाने निकले हैं और खुद ऐसी भाषा लिखते हैं, जिसे पढ़कर रोना आता है। वे बड़ी खरी भाषा में ऐसे कथित विद्वानों की खबर लेते हुए लिखते हैं— 'हिंदी के एक बड़े नामी काव्यालंकाराचार्य ने अपनी पुस्तक की भूमिका में सैकड़ों बार 'लालित्यता' और 'वैचित्र्यता' आदि भ्रष्ट प्रयोग किए हैं। 'ललित' तथा 'विचित्र' विशेषणों से तद्धित प्रत्ययों द्वारा 'लालित्य' और 'वैचित्र्य' भाववाचक संज्ञाएँ बना लीं, तब फिर दुबारा उसमें भाववाचक ता प्रत्यय कैसे आ जाएगा? सिर पर एक टोपी लगाकर उसी पर दूसरी टोपी कौन लगाता है? एक पाजामे पर दूसरा पाजामा पागल ही पहनेगा।'

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी की इसी प्रचंड विद्वत्ता और अक्खड़ता की तारीफ करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कभी-कभी थोड़े विनोद भाव से अपने शिष्यों के आगे वाजपेयी जी के तीन गुणों का बखान करते थे—मोटा, सोटा और लोटा। ये तीन खासियतें ही वाजपेयी जी को कबीर की तरह एक खरा और ठेठ गँवई व्यक्तित्व देती हैं और यही उनकी सबसे अलग पहचान भी हैं। आचार्य द्विवेदी का कहना है कि वाजपेयी जी फक्कड़ विद्वान हैं। कबीरदास जी की तरह वे अपने विचारों पर दृढ़ रहते हैं और उन्हीं की तरह वे दूसरों की बात को बिना कड़ी परीक्षा के ग्रहण नहीं करते। पर साथ ही वे वाजपेयी जी की एक और विशेषता का जिक्र करना भी नहीं भूलते कि 'उनमें एक अजीब सरलता भी है।'

और इसी कारण डॉ. नगेंद्र ने भी वाजपेयी जी को 'हिंदी जगत का अभिनंदनीय पुरुष' बताया है। उनका कहना है, 'आधुनिक हिंदी भाषा को मानक रूप प्रदान करने में जिन विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है, उनमें वाजपेयी जी का स्थान अग्रगण्य है।'

हिंदी का पाणिनि उन्हें भविष्य कहेगा :- डॉ. अंबाप्रसाद सुमन ने हिंदी के अग्रदूत आचार्य किशोरीदास वाजपेयी की महान हिंदी सेवा तथा हमेशा कष्टों और मुसीबतों में छाती तानकर रहने वाले स्वाभिमानी व्यक्तित्व को सलाम करते हुए लिखा है—

'लेखकों की लेखनी दो प्रकार की होती है अर्थात् एक कलम सोने की होती है जो प्रशस्ति के ही गीत संवादी स्वर में गाती है। दूसरी एक कलम सरकंडे की होती है जो आलोचना के मंत्र विसंवादी स्वर में पढ़ती है। आचार्य पंडित किशोरीदास वाजपेयी के पास केवल सरकंडे की कलम थी। वे 70 वर्ष तक निरंतर सरकंडे की कलम से ही लिखते रहे थे।'

शायद यही कारण है कि आज हिंदी-जगत् में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी को वह आदर और सम्मान हासिल है, कि वे सबसे अलग, सबसे ऊपर खड़े नजर आते हैं। बड़े से बड़े नामी-गिरामी भाषाविज्ञानी भी उनके आदमकद व्यक्तित्व के आगे हल्के लगते हैं। वाजपेयी जी की तेजस्वी शख्सियत के आगे उनका व्यक्तित्व फीका और थोथा लगने लगता है। वाजपेयी जी हिंदी की आत्मा हैं और इस नाते वे सैकड़ों बरसों तक याद किए जाते रहेंगे।

कविवर हरिवंश राय बच्चन ने वाजपेयी जी के लिए जो पंक्तियाँ लिखी हैं, उनमें मानो सभी हिंदी वालों का दिल बोलता है, 'हिंदी का पाणिनि उन्हें भविष्य कहेगा, हर हिंदीभाषी उनका ऋणी रहेगा!'

545, सेक्टर-29,
फरीदाबाद-121008 (हरियाणा)
मो. 09810602327

भाषायी अस्मिता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

– सदानंद प्रसाद गुप्त

जन्म – 21 जुलाई 1950।

शिक्षा – एम.ए., एवं पीएच.डी.।

रचनाएँ – दस पुस्तकें प्रकाशित।

भारतीय नवजागरण के वैतालिक, खड़ीबोली गद्य के वास्तविक पुरस्कर्ता, भारतवर्ष में हिन्दी भाषा के उन्नयन के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले भारतेन्दु के नाम से ख्यात बाबू हरिश्चन्द्र जातीय चेतना और भाषायी अस्मिता जागृत करने वाले अप्रतिम व्यक्तित्व और व्यापक दृष्टि सम्पन्न पत्रकार, निबंधकार, नाटककार तथा कवि थे। भारत में स्वदेशी आन्दोलन के जन्मदाता के रूप में स्वभाषा के प्रति निष्ठा जागृत करने वाले व्यक्तित्व के रूप में उनका अनन्य महत्त्व है। डॉ. हेमंत शर्मा ने बहुत सही रेखांकित किया है कि शायद ही हिन्दी का कोई ऐसा रचनाकार हो जिसने अपने युग की चेतना को इतनी सशक्त वाणी दी हो। भारतेन्दु का व्यक्तित्व लगभग उस सूरज जैसा है जो शीत से ठिठुरते कुहरे भरे भोर में तह पर तह के बादलों को चीरता हुआ निकलता है जिससे धरती अपना अँधेरा पोंछती है। **(भूमिका/ भारतेन्दु समग्र हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी, संस्करण 1989)।**

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को यदि आधुनिक हिन्दी साहित्य का पितामहं कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी। रामविलास शर्मा ने बिल्कुल सही लिखा है कि अगर हम कहें कि भारतेन्दु का व्यक्तित्व महान् था तो 'महान' शब्द 'हमारे हरिश्चंद्र' के व्यक्तित्व के आगे घटिया मालूम होगा... तब से अब तक जितने महान् साहित्यकार हिन्दी में हुए हैं। उनमें कोई भी दूसरे लेखकों के हृदय में और पाठकों में भी वह स्थान नहीं बना सका, जो हमारे हरिश्चंद ने पैंतीस साल की मामूली अवस्था में बना लिया था। **(भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा / पृ.127)**

यद्यपि भारतेन्दु की मृत्यु पैंतीस वर्ष की आयु के पहले ही हो गयी फिर भी उन्होंने जिस प्रकार आधुनिक हिन्दी की मजबूत नींव डालकर उन पर भाषा-साहित्य का सुन्दर भवन निर्मित किया वह अप्रतिम है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में किया गया कार्य भारत के स्वाभिमान और स्वत्व के जागरण का कार्य है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1868 ई. में मात्र अठारह वर्ष की अवस्था में 'कविवचन सुधा' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया जिसका ध्येय वाक्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है–

खल गनन सों सज्जन दुखी पति होहिं हरि पद रति रहै।
उपधर्म छूटै स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै।।
बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम होहिं सब जग सुख लहै।
तजि ग्राम कविता सुकविजन की अमृत बानी सब कहै।

उपर्युक्त छंद में दो पद 'स्वत्व निज भारत गहै' और 'नारि नर सम होहि अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। भारतेन्दु की कामना है कि भारत अपना स्वत्व प्राप्त करे अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करे; वह जाने कि उसका इतिहास क्या है? वह कहाँ से आरंभ होता है? वह अपनी अस्मिता के प्रति सजग हो। इसी का विस्तार भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है नामक निबंध में मिलता है जहाँ वे कहते हैं–'परदेशी भाषा और परदेशी वस्तु का भरोसा मत करो, अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।' डॉ. रामविलास शर्मा उचित ही लिखते हैं कि 'हरिश्चन्द्र के मन में साहित्य की उन्नति देश और समाज की उन्नति से जुड़ी है। सामाजिक उन्नति का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र था–'नारि नर सम होहिं।' यह बात रूढ़िवादियों को वैसे ही पसन्द न थी जैसे भारत के स्वत्व प्राप्त करने की बात अंग्रेजों को।' **(भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, पृ. 332)**

भारतेन्दु बाबू के प्रथम जीवनीकार और उनके आश्रम में पले-बढ़े राधाकृष्ण दास लिखते हैं–'जैसा ही अंग्रेज हाकिमों को' स्वत्व निज भारत गहै, कर (टैक्स) दुख बहै कहना करुकिटु था, उससे अधिक 'नारि नर सम होहिं' कहना हिन्दुस्तानी भद्र समाज को चिढ़ाना था। परन्तु वीर हरिश्चन्द्र ने जो जी में ठाना उसे कह ही डाला और जो कहा उसे आजन्म निबाहा भी **(उद्धृत वही, पृ. 333)**। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के स्वत्व बोध की व्याख्या करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा की टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है–'अंग्रेजों की न्याय व्यवस्था, टैक्स सम्बन्धी नीति, शिक्षा, भाषा और

साहित्य में उनका हस्तक्षेप, औद्योगीकरण, व्यापार आदि के सम्बन्ध में ब्रिटिश नीति प्रत्येक घटना का विवरण देते हुए अपनी आलोचना को ठोस रूप देना यह 'कविवचन सुधा' में भारतेन्दु और उनके सहयोगियों का काम था। उस आलोचना को देखने से ही 'स्वत्व निज भारत गहे–इस बात का अर्थ समझ में आता है **(वही, पृ. 338)**।' स्वत्व निज भारत 'ग' का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष था अपनी भाषा में अपनी उन्नति करने का मंत्र। भाषा के विषय में भारतेन्दु की अवधारणा एकदम स्पष्ट थी। वे निज भाषा की उन्नति एवं विकास के पक्षपाती थे। यह तथ्य एकदम स्पष्ट है कि हिन्दी भाषी क्षेत्र में स्वभाषा की महत्ता एवं चेतना जागृत करने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। जून 1877 ई. में उन्होंने प्रयाग को 'हिन्दीवर्द्धिनी सभा' में एक भाषण दिया था, वह पूरा भाषण दोहों में था। इसमें उन्होंने पहली बार भाषा के विषय में अपना स्पष्ट और व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। यह भारतेन्दु की दूरदृष्टि और अपनी भाषा के प्रति लोगों के उपेक्षापूर्ण रवैये के प्रति बेचैनी को भी प्रकट करता है। इसी व्याख्यान में भारतेन्दु का प्रसिद्ध कथन है जो आज भी मंत्र की तरह उच्चरित होता है–

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल॥

भारतेन्दु यह जानते थे कि अपनी भाषा का निरादर कर कोई भी समाज वास्तविक उन्नति नहीं कर सकता–

अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन।।

भारतेन्दु ने यह अनुभव किया और सबको अनुभव कराना चाहा कि कोई समाज अपनी भाषा में ही सम्पूर्णत: शिक्षित हो सकता है क्योंकि वह भाषा उसे माँ से घुट्टी के रूप में मिल जाती है–

निज भाषा उन्नति बिना कबहुँ न हुवै है कोय।
लाख अनेक उपाय यों भले करो किन कोय।।
और एक अति लाभ यह यामै प्रगट लखात।
निज भाषा में कीजिए जो विद्या की बात।।
तेहि सुनि पावै लाभ सब बात सुनु जो कोय।
यह गुन भाषा और महँ कबहुँ नाहीं कोय।।

भारतेन्दु शिक्षित समाज से आग्रह करते हैं कि वह विविध स्रोतों से ज्ञानार्जन कर उसको अपनी भाषा में प्रकट करे जिससे समाज की शिक्षा का स्तर ऊपर उठे, वह ज्ञान सम्पन्न हो सके। भारतेन्दु का यह दृढ़ विश्वास था कि परायी भाषा से समाज समर्थ नहीं हो सकता, वह अपने देश और अपनी संस्कृति से कट जायेगा। आत्महीनता की भावना से ग्रस्त हो जायेगा, इसलिए भारतेन्दु अन्य सब कार्यों को छोड़कर अपनी भाषा की उन्नति के लिए लोगों का आह्वान करते हैं –

तासों सब मिलि छाँड़ि के दूजे और उपाय।
उन्नति भाषा की करहु अहो भ्रात गन आय।।

अपनी भाषा के विकास के लिए भारतेन्दु एकत्र और एकनिष्ठ भाव से कार्य करने की अपील करते हैं। वे अपनी भाषा के विकास हेतु पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन की भी इच्छा व्यक्त करते हैं –

भाषा सोधहु आपनी होइ सबै एकत्र।
पढ़हु पढ़ावहु लिखहु मिलि छपवावहु कछु पत्र।।

भाषा का समाज की संस्कृति से भी गहरा सम्बन्ध है इसलिए भाषा की उन्नति संस्कृति की भी उन्नति है–

निज भाषा निज धरम निज मान करम व्यौहार।
सबै बढ़ावहु बेगि मिलि कहत पुकार-पुकार॥

भारतेन्दु की यह दृढ़ मान्यता है कि देश की उन्नति भाषा उन्नति पर ही आश्रित है इसलिए वे सभी लोगों से अपनी भाषा की उन्नति के लिए सर्वात्ममना प्रयत्न करने के लिए कहते हैं–

करहु विलम्ब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल।
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सब को मूल।

यह है भारतेन्दु का भाषा को लेकर व्यापक दृष्टिकोण। भारतेन्दु जब 'निज भाषा' की बात करते हैं तो उसका अर्थ केवल हिन्दी भाषा के विकास की बात करना नहीं है। इसका अर्थ सम्पूर्ण भारतीय भाषा है। भारतेन्दु हिन्दी भाषी क्षेत्र के थे तो वहाँ वे हिन्दी की बात कर रहे थे। हिन्दी भाषी क्षेत्र में वे खड़ी बोली गद्य पर बल दे रहे थे पर साथ ही स्थानीय बोलियों को भी समृद्ध करना चाहते थे। रामविलास शर्मा इस ओर संकेत करते हैं कि 'भारतेन्दु ने हिन्दी लेखकों के सामने इस बात का प्रस्ताव रखा कि वे उत्तर भारत की उन भाषाओं में भी राजनीतिक और सामाजिक चेतना फैलाने वाला साहित्य रचें। अर्थात् भारतेन्दु खड़ीबोली के साथ स्थानीय भाषा में राजनीतिक और सामाजिक चेतना फैलानेवाला साहित्य रचने की बात करते हैं।' **(भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, पृ. 124)**

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भाषा के विषय में केवल सिद्धांत के रूप में बातें नहीं कीं अपितु उन्होंने सक्रिय रूप से हिन्दी भाषा को

आंदोलन का रूप दिया। उन्होंने हिन्दी की उन्नति के लिए अनेक प्रयत्न किये। ऐसे प्रयत्नों में उनका निबंध 'हिन्दी भाषा' का अपना महत्त्व है। भारतेन्दु ने अपने इस निबंध में अपने समय में भाषाओं के प्रचलित रूपों का वर्णन किया है और एक मानक भाषा का स्वरूप भी सामने रखा है। पहली बार भारतेन्दु ने खड़ीबोली हिन्दी के व्यवस्थित रूप को प्रत्यक्ष किया है। भारतेन्दु बाबू ने हिन्दी भाषा के तीन रूप बताये–बोलने की भाषा, कविता की भाषा और लिखने की भाषा अर्थात् गद्य की भाषा। भारतेन्दु ने बोलचाल की भाषा के कई रूप सामने रखे। जहाँ तक कविता की भाषा की बात है, भारतेन्दु यह अनुभव कर रहे थे कि कविता के लिए ब्रजभाषा ही उपयुक्त है 'जो हो मैंने आप कई बार परिश्रम किया कि खड़ीबोली में कुछ कविता बनाऊँ, पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी इससे यह निश्चय होता है कि ब्रजभाषा ही में कविता करना उत्तम होता है और इसी से कविता ब्रजभाषा में ही उत्तम होती है **(भारतेन्दु समग्र, पृ. 1099)**।

भारतेन्दु बाबू ने हिन्दी भाषा के बारह रूप बताये– जिसमें संस्कृत के शब्द बहुत हैं, जिसमें संस्कृत के शब्द थोड़े हैं, जो शुद्ध हिन्दी है, जिसमें किसी भाषा के शब्द मिलाने का नियम नहीं है, जिसमें अंग्रेजी शब्द हिन्दी के हो मिल गये हैं, जिसमें पुरबियों की बोली या काशी की देशभाषा है जो काशी के अर्धशिक्षित बोलते हैं, दक्षिण के लोगों की हिन्दी, बंगालियों की हिन्दी, अंग्रेजों की हिन्दी, रेलवे की भाषा। अंत में उन्होंने भाषा विवाद पर अपना महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष दिया है–'हम इस स्थान पर बात नहीं करना चाहते कि कौन भाषा उत्तम है और वही लिखनी चाहिए, पर हाँ, मुझसे कोई अनुमति पूछे तो मैं यह कहूँगा कि नम्बर दो और तीन लिखने योग्य है **(भारतेन्दु समग्र, पृ. 1051)**।'

इसका तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उस हिन्दी भाषा के प्रचलन के समर्थक थे जिसमें संस्कृत के शब्दों का आश्रय कम लिया गया है अर्थात् तद्भव प्रधान हिन्दी। भारतेन्दु यह जानते थे कि हिन्दी भाषी समाज में तद्भव प्रधान हिन्दी का प्रचलन है इसलिए यदि इसका आश्रय लिया जाये तो यह सर्वस्वीकार्य भाषा होगी। वस्तुत: भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह युगांतकारी महत्त्व है कि वे जो भाषा लिखते थे और जिसके प्रसार के पक्षपाती थे, वह जनपदीय बोलियों तथा शहरी बोलचाल के बहुत पास थी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय गद्य की भाषा खड़ी बोला हो चुकी थी। कविता की भाषा मुख्यतया ब्रजभाषा थी, पर भारतेन्दु के मन में यह द्वन्द्व था कि गद्य–पद्य की भाषा में द्वैत हो या नहीं। यद्यपि आरंभ में भारतेन्दु कविता में ब्रजभाषा के प्रयोग को महत्त्व दे रहे थे। उन्होंने सितम्बर 1881 के 'भारतमित्र' में खड़ीबोली में अपनी रचना प्रकाशनार्थ भेजी–'प्रचलित साधु भाषा में कुछ कविता भेजी है। देखियेगा कि इसमें क्या कसर है और किसके अवलम्बन करने से इसमें काव्य सौन्दर्य बन सकता है। इस सम्बन्ध में सर्व–साधारण की सम्मति ज्ञात होने से आगे वैसा परिश्रम किया जायेगा।' **(भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, पृ. 116)**

भारतेन्दु ने जो कविता भेजी थी। उसकी कुछ पंक्तियाँ निम्नांकित हैं–

बरसा सिर पर आ गई, हरी हुई सब भूमि।
बागों में झूले पड़े रहे भ्रमर गण झूमि।।
करके याद कुटुम्ब की फिरे विदेसी लोग।
बिछड़े प्रीतमवालियों के सिर छाया सोग। (वही)

डॉ. रामविलास शर्मा ने रेखांकित किया है कि भारतेन्दु ने खड़ी बोली में नये प्रयोग करके इस बात का प्रमाण दिया था कि वे कविता की भाषा में परिवर्तन चाहते हैं। इन प्रयोगों से नयी पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त हुआ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने तेईस वर्ष की अवस्था में 1873 ई. में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' नामक पत्रिका निकाली जो बाद में 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' हो गयी। हिन्दी भाषा के विकास के लिए किया गया यह युगांतरकारी प्रयत्न था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्पष्ट रूप से भारतेन्दु को हिन्दी गद्य का परिष्कृत रूप सामने रखने का श्रेय दिया है–'हिन्दी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले पहल इसी चन्द्रिका में प्रकट हुआ। हिन्दी गद्य को परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही है।'

रामविलास जी ने भी भारतेन्दु द्वारा हरिश्चन्द्र मैगजीन निकालने और उसके माध्यम से हिन्दी भाषा के परिष्कृत स्वरूप को सामने रखने को महत्त्व दिया है–'हिन्दी भाषा और साहित्य को कठिनाइयों को दूर करने के लिए भारतेन्दु ने यह पत्रिका निकाली। भारतेन्दु ने कालचक्र नामक अपनी पुस्तक में नोट किया– 'हिन्दी नयी चाल में ढली सन् 1873 ई.।' यह वह वर्ष है जब भारतेन्दु ने हरिश्चन्द्र मैगजीन निकाली **(भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, पृ. 127)**

हिन्दी के पुराने स्वरूप को नये परिष्कृत रूप में भारतेन्दु ने कैसे ढाला तथा पुराने रूप और नये रूप में क्या अन्तर था, इसका संक्षिप्त विवरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस प्रकार दिया है–'मुंशी सदासुख लाल की भाषा साधु होते हुए भी पंडिताऊपन लिए हुए थी, लल्लूलाल में ब्रजभाषापन और सदल मिश्र में पूर्वीपन था। राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक ही परिमित नहीं था, वाक्य विन्यास तक में घुसा था। राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा विशुद्ध और मधुर तो

अवश्य थी पर आगरे की बोलचाल का पुट उसमें कम न था। भाषा का निखरा हुआ शिष्य सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ। **(हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 397)**

यह सही है कि भारतेन्दु के पूर्व हिन्दी भाषा का रूप विद्यमान था और उसका व्यापक प्रचलन भी था पर उसे नये स्वरूप में ढालने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही जाता है। 'हिन्दी नयी चाल में ढली' कथन का यही तात्पर्य है। डॉ. रामविलास शर्मा की महत्त्वपूर्ण टिप्पणी इस सम्बन्ध में ध्यातव्य है–'हिन्दी भाषा थी, उसका व्यापक चलन भी था। कमी यह थी कि देश और समाज की नयी परिस्थितियों के अनुकूल उसमें नये साहित्य की रचना न हुई थी। यह काम न लल्लूलाल के किये हो सकता था, न राजा शिवप्रसाद के। इसे किया भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने **(भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, पृ. 199)।**

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा हिन्दी भाषा की प्रतिष्ठा उसके विकास और संवर्धन तथा उसे सरकार द्वारा मान्यता दिलाये जाने हेतु प्रयत्न किये जाने का एक बहुत बड़ा उदाहरण है, अस्वस्थता की स्थिति में भी अंग्रेज सरकार द्वारा गठित शिक्षा आयोग के समक्ष पत्र के माध्यम से की गयी उनकी गवाही। अपने पत्र में उन्होंने भारतीय भाषाओं के महत्त्व एवं उपयोगिता को सामने रखा था। भारतेन्दु बाबू ने आयोग के समक्ष यह तथ्य रखा कि पश्चिमोत्तर प्रदेश (आज का उत्तर प्रदेश) में अनेक बोलियाँ प्रचलित हैं– पूर्वी, कन्नौजी, ब्रजभाषा और खड़ीबोली **(भारतेन्दु समग्र. पृ. 1054)।** भारतेन्दु बाबू ने इस बात की और ध्यान दिलाया कि पश्चिमोत्तर प्रांत की काव्यभाषा ब्रजभाषा है और आम बोलचाल की भाषा खड़ीबोली। उन्होंने आयोग का इस ओर भी ध्यान आकृष्ट किया कि इसे ही हिन्दी और उर्दू कहा जाता है। हिन्दी के लिए नागरी लिपि और उर्दू के लिए फारसी लिपि का प्रयोग किया जाता है। भारतेन्दु बाबू ने इसे जोर देकर कहा कि हिन्दी और उर्दू में लिपि के अतिरिक्त और कोई अंतर नहीं है– 'Thus we come to the conclusion that there is no real difference between Urdu and Hindi' **(वही, पृ. 1056)**

हिन्दी भाषा के साथ किये जाने वाले षड्यंत्र से भारतेन्दु बाबू पूरी तरह अवगत थे। इसलिए उन्होंने आयोग के समक्ष अपनी बात को स्पष्ट रूप से रखते हुए कहा कि अंग्रेजों के आने के पहले मुसलमानी शासन के दौरान उर्दू को अधिक महत्त्व मिला। उर्दू के प्रयोग को उस समय अच्छा माना जाता था। इसी कारण हिन्दू जमींदार व्यापार में, सार्वजनिक सभाओं में उर्दू का प्रयोग अभिजात्य प्रकट करने के उद्देश्य से फैशन के अन्तर्गत करते थे जिसमें फारसी के भारी-भरकम शब्दों का प्रयोग किया जाता था **(वही)** भारतेन्दु के अनुसार उर्दू का वर्चस्व बनाये रखने के लिए मुस्लिम समुदाय द्वारा हिन्दी का विरोध किया जाता था। **(वही)**। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अरबी-फारसी से लदी उर्दू भाषा को हिन्दू जनता के प्रति अन्याय बताया। उन्होंने आयोग का ध्यान इस ओर भी दिलाया कि अरबी-फारसी से लदी उर्दू केवल दरबारों की भाषा है, सामान्य जनता की भाषा नहीं है। भारतेन्दु बाबू ने इस बात पर भी जोर दिया कि किसी भी सभ्य देश में शासन और जनता की भाषा में अन्तर नहीं होता है। केवल भारत ही ऐसा देश है जिसमें कचहरियों की भाषा वह है जो न तो जनता की भाषा है और न शासक की। मुसलमानों का एक वर्ग, जिसे अशराफ वर्ग कहा जाता रहा है, अरबी-फारसी मिश्रित उर्दू की हिन्दी पर श्रेष्ठता सिद्ध कर रहा था। इस वर्ग के अगुआ थे सैय्यद अहमद खाँ। सैय्यद अहमद ने भाषा आयोग के समक्ष उर्दू को सभ्य लोगों की भाषा कहा था और हिन्दी को असभ्य लोगों की। भारतेन्दु बाबू ने इसका तीखा प्रतिकार किया–'I am sorry to learn that the Honourable Sayjid Ahmad Khan Bahadur. C. S. I. in his evidence before the education commission, says that Urdu is the language of gentry and Hindi that of the vulgar. The state- ment is not only incorrect but unjust to the Hindus with the exception of a few kayasthas, thoremaining Hina dus, eg. Kshatriyas, mahajans, zamindare - say the severed Brahmine, who speak Hindi are supposed to be vulgar. Inspite of this though the Lala Sahib(Kayastha) will with the Sayjid Bahadur in Urdu yet when writing to his wife be must use the Hindi character' **(वही, पृ. 1056)** भारतेन्दु बाबू ने दृढ़तापूर्वक अपनी बात रखी कि कुछ कायस्थों को छोड़ दिया जाये तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सभी हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का प्रयोग करते हैं। भारतेन्दु बाबू ने उर्दू में लिखित साहित्य पर यह आरोप भी लगाया कि वह चरित्र निर्माण के उद्देश्य से दूर है **(वही, पृ. 1058)** उन्होंने उर्दू पर गंभीर आरोप लगाते हुए उसे '**dancing girl**' और '**Prostitutes**' की भाषा कहा। भारतेन्दु उस हिन्दी की स्वतंत्र सत्ता स्थापित करना चाहते हैं जिसमें तद्भवता की प्रधानता हो तथा जनपदीय शब्दावली का योग हो। उन्होंने स्पष्ट किया कि संस्कृत तथा अरबी-फारसी शब्दों से लदी भाषा इन ज्ञेय की भाषा नहीं है। भारतेन्दु ने तद्भव प्रधान हिन्दी को कार्य भाषा या साधु भाषा की संज्ञा दी **(वही, 1058)।'**

भारतेन्दु के स्वभाषा अभिमान का एक बड़ा उदाहरण यह है कि उन्होंने हिन्दी को लेकर घर कर गयी हीनता की ग्रंथि को निकाल फेंका। उन्होंने इसकी तीव्र भर्त्सना की 'प्राय: लोग कहते हैं कि

हिन्दी कोई भाषा ही नहीं है। हमको इस बात को सुनकर बड़ा शोक होता है। यदि कोई अंग्रेज कहता तो हम जानते कि वह अज्ञानी है, इस देश का समाचार भलीभाँति नहीं जानता। पर अपने स्वदेशियों को क्या कहें? हम नहीं जानते कि उनकी ऐसी हत बुद्धि क्यों हो गयी है कि वे अपने प्राचीन भाषा का तिरस्कार करते हैं। **(वही, पृ. 1088)**

साहित्य और भाषा की दुनिया में भारतेन्दु बाबू के जन्म के पहले से ही उर्दू और हिन्दी का द्वन्द्व चल रहा था। खड़ीबोली हिन्दी के अरबी–फारसीकरण का प्रयास हो रहा था और इसमें जॉन गिलक्राइस्ट ने जिस हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग किया वह वस्तुत: अरबी–फारसी से लदी खड़ीबोली ही थी। भारतेन्दु के आगमन के बाद इसमें परिवर्तन आया। इस परिवर्तन में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समय के रचनाकारों का अप्रतिम योगदान है। उर्दू भाषा के प्रति भारतेन्दु की अरुचि उसके भीतर निहित साम्प्रदायिकता के कारण भी थी। वे उर्दू वालों की साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति से बहुत खिन्न थे। लिपि के सम्बन्ध में भी भारतेन्दु एकदम स्पष्ट थे। उन्होंने हिन्दी भाषा के लिए नागरी लिपि का पक्ष लिया। उन्होंने निर्भीकता के साथ कहा कि फारसी लिपि को बहुत कम लोग समझ पाते हैं और देवनागरी लिपि को अधिकांश लोग समझते हैं। यहाँ तक कि पटवारी गाँव के दस्तावेज (सतियाज) हिन्दी में रखते हैं और ग्रामीण विद्यालयों में अध्यापन का माध्यम हिन्दी है।

भारतेन्दु बाबू को हिन्दी भाषा साहित्य के उत्थान के प्रयत्न का एक उदाहरण यह भी है कि वे चाहते थे कि हिन्दी साहित्य विशेषत: गद्य साहित्य हर प्रकार से समुन्नत हो। बांग्ला भाषा के नाटक और कथा–साहित्य की उन्नति को उन्होंने देखा था। हिन्दी में भी उपन्यास साहित्य के विकास के लिए वे चिंतित थे। इस संदर्भ में उन्होंने किन्हीं संतोष सिंह को पत्र लिखा था–'जैसे भाषा में अब कुछ नाटक बन गये हैं अब तक उपन्यास नहीं बने हैं। आप या हमारे पत्र के योग्य सहकारी सम्पादक जैसे बाबू काशीनाथ खत्री, गोस्वामी राधाचरण जी कोई उपन्यास लिखें तो उत्तम है। यदि ऐसी इच्छा हो तो 'दीप निर्वाह' नामक उपन्यास का अनुवाद हो। यह उपन्यास केवल उपन्यास ही नहीं, भारतवर्ष का इससे बड़ा सम्बन्ध है।'

भारतेन्दु बाबू हिन्दी को समग्रता की भाषा बनाना चाहते थे। उन्होंने साहित्य के अतिरिक्त साहित्येतर विषयों–विज्ञान, पुरातत्व, राजनीति की पुस्तकें हिन्दी भाषा में लाने का प्रयास किया। वे चाहते थे कि हिन्दी में कानून की भी पत्रिका प्रकाशित हो। उन्होंने स्वयं 'नीति प्रकाश' नाम के कानून की पत्रिका हिन्दी में निकालने का निर्णय लिया। हालाँकि भारतेन्दु बाबू उसे क्रियान्वित नहीं कर पाये।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बहुत ही गंभीरता के साथ हिन्दी भाषा में ज्ञान के विविध अनुशासन की पुस्तकें तैयार कराने के लिए प्रयत्न किये। उन्होंने बनारस कॉलेज के गणित के अध्यापक से हिन्दी में त्रिकोणमिति की पुस्तक तैयार करवाई और उसकी समीक्षा जून 1874 ई. को 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में की 'हिन्दी भाषा में विज्ञान, दर्शन, अंकादि के ग्रंथ थोड़े हैं और जो दस पाँच छोटे–मोटे हैं भी, वे पुरानी चाल के हैं और उनके पारिभाषिक शब्द ठीक नहीं हैं। इस ग्रंथ के अंत में एक निघंटु भी है जिसमें पारिभाषिक शब्दों के पर्यायवाचक अंग्रेजी शब्द भी दिये हैं। यह इस विधा के नये–नये ग्रंथ बनाने वालों के लिए बहुत उपयोगी होंगे, पर हम यह कहना चाहते हैं कि लोग त्रिकोणमिति के नये ग्रंथ रचें। वे उन्हीं शब्दों का प्रयोग करें क्योंकि बहुत से पारिभाषिक शब्द होने से भ्रम होता है। इसके सिवाय जब सब लोग यही शब्द लिखने लगेंगे तो हिन्दी में इसका प्रचार हो सकेगा।' यह हिन्दी भाषा के प्रति उनकी निष्ठा और लगन का अनुपम उदाहरण है।

यह सर्वज्ञात तथ्य है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके युग के अन्य साहित्यकार पत्रकार भी थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य की विधाओं को समृद्ध करने के लिए पत्रिका में पुस्तक समीक्षा का भी आरंभ किया। वस्तुत: वे हिन्दी–शब्द भण्डार तथा हिन्दी वाङ्मय की समृद्धि के लिए सतत् प्रयत्नशील रहे। भारतेन्दु ने इस बात पर क्षोभ व्यक्त किया था कि लोगों के मन में हिन्दी भाषा में विज्ञान सम्बन्धी ग्रंथ लिखे जाने को लेकर संदेह है। उन्होंने 23 अगस्त 1873 ई. की 'कविवचन सुधा' में लिखा–'बहुत से लोग बिना समझे बूझे दाढ़ी हिला–हिलाकर कहा करते थे कि हिन्दी में वैज्ञानिक ग्रंथ नहीं लिखे जा सकते और भाषा में इतने शब्द नहीं कि वैज्ञानिक भावना प्रकाश की जाये; पर हम लोग यह जपने वाले लोगों को सचेत करते हैं कि वे उस निद्रा से जागें और दो टूक आँख खोलकर देखें कि अब हिन्दी भाषा की उन्नति चाहने वाले लोग जो कहते थे सो कर दिखाते हैं।' **(उद्धृत भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, पृ. 199)**

यहाँ भारतेन्दु का आत्मविश्वास देखने लायक है। यह उनकी निष्ठा और हिन्दी के प्रति समर्पण का भी अप्रतिम उदाहरण है। वस्तुत: भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का स्वभाषा प्रेम उनके राष्ट्रप्रेम से जुड़ा है और उनका आधार स्वत्वबोध और स्वाभिमान है। उन्होंने हिन्दी की जो अखण्ड ज्योति प्रज्ज्वलित की वह आगे महावीर प्रसाद द्विवेदी युग में तथा छायावादी युग में तीव्र हुई। इसका परिणाम था हिन्दी की व्यापक स्वीकृति और राजभाषा के रूप में संविधान सभा द्वारा मान्यता। इससे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के योगदान का महत्त्व समझ में आता है।

कार्यकारी अध्यक्ष उ.प्र. हिन्दी संस्थान
राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन हिन्दी भवन,
6, महात्मा गाँधी मार्ग, हजरतगंज
लखनऊ-226001 (उ.प्र.)
मो.-09450878347

राष्ट्रभाषा हिंदी ही सर्वोपरि

– ओम उपाध्याय

जन्म – 11 जुलाई 1949।
शिक्षा – बी.एससी.।
रचनाएँ – सात पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – राष्ट्रीय साहित्य सृजन शिखर सम्मान सहित अनेक सम्मान।

'यदि किसी राष्ट्र को उसकी राष्ट्र भाषा का चयन करना हो तो सर्वप्रथम उसकी व्यापकता अर्थात् उसके लिखने, पढ़ने, बोलने और समझने वालों की संख्या को प्राथमिकता देना चाहिए क्योंकि बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय हेतु यह आवश्यक है, बहुत महत्त्वपूर्ण है।'

वर्तमान में सम्पूर्ण संसार में हिंदी भाषा, पढ़ने, लिखने, बोलने तथा समझने वालों की संख्या विश्व की सर्वाधिक पढ़ी, बोली और समझी जानेवाली भाषाओं के अनुक्रम में तीसरे क्रम पर है अर्थात् दुनिया की दो भाषाएँ ऐसी हैं जो हिंदी भाषा से अधिक पढ़ी, लिखी, बोली तथा समझी जाती हैं। विडम्बना यह है कि प्रथम और द्वितीय क्रम कि वे दो भाषाएँ तो संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषाओं में शामिल हैं किन्तु तीसरे क्रम की भाषा हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनने हेतु संघर्षरत है जद्दोजहद में जुटी है। भाषाओं के विश्व पटल की बात छोड़ें और हिंदी भाषा के विषय में अपने देश की ही बात करें तो वह भी अखिल विश्व हिंदी की स्थिति से भिन्न नहीं है, अलग नहीं है। भारत वर्ष में हिंदी पढ़ने, लिखने, बोलने, सुनने, समझने वालों की संख्या हिन्दुस्तान की अन्य संवैधानिक भाषाओं में पढ़ने, लिखने, बोलने, सुनने, समझने वालों से कहीं अधिक है, तथा प्रथम क्रम पर है फिर भी वह केवल राजभाषा है, राष्ट्र भाषा नहीं।

आज हमें स्वतंत्र हुए सात दशक से अधिक वर्ष हो गए हैं और सातवे दशक के उत्तरार्द्ध में हैं तथा बहुत शीघ्र आठवें दशक में पहुँच जाएँगे। इतने वर्षों के बीत जाने के बाद भी हम हिंदी भाषा को उसका उचित, स्थान नहीं दिलवा पाए। इसे हम हमारा दुर्भाग्य कहें, बदकिस्मती कहें अथवा हमारे संकल्प में ही कोई कमी रही, वह दृढ़ नहीं रहा। इस ओर हमने आर-पार वाली कोशिश ही नहीं की वरना अभी तक वह राष्ट्र भाषा का दर्जा पाकर राष्ट्र भाषा के पद पर अवश्य सुशोभित हो गई होती, यदि अभी भी वैसी ही स्थिति रही तो और भी वर्ष व्यतीत हो जाएँगे गुजर जाएँगे और हिंदी भाषा जिस पद की अधिकारी है, वह उसे नहीं मिल पाएगा, वास्तव में जो हुआ वह नहीं होना था, देश की अन्य संवैधानिक भाषाओं को हिंदी भाषा के लिए अपनी दरियादिली दिखानी थी, उसके पक्ष में खड़ा होना था। यदि ऐसा हुआ होता और अन्य संवैधानिक भाषाएँ अपनी ज़िद, अपनी हठ, अपना स्वार्थ छोड़ हिंदी के पक्ष में खड़ी होती तो हिंदी निश्चित ही राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन हो गई होती, राष्ट्र भाषा बन गई होती। हालाँकि जो हुआ वह तो वापस नहीं लौटाया जा सकता किन्तु अभी जो हिंदी भाषा के साथ हो रहा है, उसे रोका जा सकता है और अन्य संवैधानिक भाषाएँ हिंदी भाषा को द्विभाषीय सूत्र से निजात दिलवा सकती है, आखिर हिंदी भाषा, अपने देश की भाषा है, अपनी भाषा है, अंग्रेजी जैसी विदेश की या परदेश की भाषा नहीं।

आज हम आजादी की हवा में साँस ले रहे हैं और उन्नति के कई सोपान तय कर चुके हैं किन्तु देश को अपनी राष्ट्र भाषा नहीं दे पाए जबकि हमारे यहाँ भाषाओं और बोलियों की बहुलता है। पूरी दुनिया मैं प्रत्येक देश की अपनी राष्ट्र भाषा है और वे उस पर गर्व का अनुभव करते हैं, अपनी भाषा पर नाज करते हैं तथा हमेशा अपनी भाषा का ही प्रयोग करते हैं भले ही फिर उन्हें अनुवादक, दुभाषिए का प्रयोग-उपयोग क्यों न करना पड़े। वैसे भाषा के संबंध में, मामले में हम समस्त संसार से सर्वाधिक भाग्यशाली हैं, किस्मत वाले हैं क्योंकि हमारे पास हिंदी भाषा है और इसकी जो विशेषताएँ हैं वे दुनिया की किसी और भाषा में

नहीं हैं जैसे कि -

1. हिंदी भाषा जैसी वैसी ही बोली जाती है, लिखी जाती है।

2. हिंदी भाषा में 52 से 54 अक्षर हैं जो किसी भी भाषा के अक्षरों कि संख्या (कुछेक अपवादों को छोड़कर) से अधिक है।

3. हिंदी भाषा में स्वरों तथा व्यंजनों की भी अधिक संख्या है।
4. हिंदी भाषा का साहित्य अत्यंत समृद्ध है।
5. हिंदी भाषा का व्याकरण अति पुष्ट तथा ऐकिक है।
16. हिंदी में अलंकारों, लोकोक्तियों, कहावतों, मुहावरों वगैरह की बहुलता है।
7. हिंदी भाषा में सर्वाधिक ग्राह्य शक्ति है।
8. हिंदी भाषा में रस छंदों की भरमार है जो इसे अन्य भाषाओं से अलग, रुचिकर तथा दृश्य-श्रव्य बनाते हैं। हिंदी भाषा में गेयता का विशिष्ट स्थान है और संप्रेषण में अति प्रभावशाली।
9. हिंदी भाषा कि लिपि देवनागरी लिपि है जो दुनिया की सकल भाषा लिपियों से भिन्न किन्तु मोहक, आकर्षक और लिखने में ऐसी लगती है ज्यों कागज पर मोती बिखरे हों, जिसका मूल कारण है इसकी देववाणी संस्कृत की लिपि का अनुसरण, अनुकरण।
10. हिंदी भाषा की एक और विशेषता है, इसके अक्षर ओष्ठ्य, तालव्य, मूर्द्धन्य, नासिक, दंतव्य आदि से प्रस्फुटित होते हैं, व्यक्त होते हैं, निकलते हैं। ऐसा गुण दुनिया की किसी भी भाषा में नहीं है।

वास्तव में हिंदी भाषा सिर्फ राष्ट्रभाषा बनने के ही गुण नहीं रखती, यह विश्व भाषा बनने के गुण, माद्दा और प्रभाव रखती है। भाषाएँ दुनिया को दुनिया से जोड़ने में सेतु (पुल) का काम करती हैं। वे सबकी होती हैं और सब उसके होते हैं। हम 'वसुधैव कुटुंबकम्' में विश्वास करते हैं, यकीन रखते हैं और मानते भी हैं यदि ऐसे हिंदी भाषा विश्व भाषा बनती है तो वह पूरी वसुधा (धरा, पृथ्वी संसार वर्ल्ड) की भाषा कहलाएगी। जिसपर सारी दुनिया नाज़ कर सकती है अभिमान कर सकती है, गर्व कर सकती है।

चाहिए हिंदी भाषा को, पूरी दुनिया का साथ
ऐसा यदि हुआ तो फिर, हिंदी के दिन रात
हिंदी के अक्षर-अक्षर में, अपनापन है खास
लिपि इसकी अति मोहिनी, उच्चारण में मिठास
व्याकरण इसका प्रबल, जो इसका आधार
अलंकारों से लेती, यह भाषा आकार
भाव-प्रवण में इससे उत्तम ना कोई और
गेयता में भी हिंदी का सबसे ऊँचा ठौर
साथ मिला सबका तो छुएगी आसमान
विश्व भाषा बनेगी यह, सच होंगे अरमान
हिंदी में वह सब कुछ है, जिसकी सबको चाह
समरथ भी यह हर तरह, दर्शाने को राह
जिन्होंने हिंदी ना पढ़ी, उनसे है अनुरोध
एक बार सीख लो, होगा महानता का बोध
सबकी है भाषा हिंदी, नहीं किसी की छाप
जो बोले उसकी हिंदी, जैसे सुर आलाप।

अंत में, यदि किसी राष्ट्र को अपनी राष्ट्र भाषा का चयन करना हो तो सर्व प्रथम उसकी व्यापकता अर्थात् उसके लिखने, पढ़ने, बोलने और समझने वालों की संख्या को प्राथमिकता देना चाहिए क्योंकि 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।' जब हम राष्ट्र की बात करते हैं तो क्षेत्रीयता गौण हो जाना चाहिए। क्षेत्री भाषाएँ उन नदियों की भाँति हैं जो सागर में विलीन हो जाती हैं तात्पर्य कि क्षेत्रीय भाषाओं को सर्वाधिक लिखी, पढ़ी, बोली और समझी जाने वाली भाषा के हितों के लिए अपने निहित हितों का त्याग (कुर्बान) कर देना चाहिए। वर्तमान में हिंदी भाषा की यही स्थिति है। वह सागर है, उसकी व्यापकता उसका प्रचार-प्रसार सर्वाधिक है वास्ते क्षेत्रीय भाषाओं को उसके पक्ष में खड़े होकर उसे राष्ट्र भाषा के पद पर सुशोभित कर निजी व निहित स्वार्थों से ऊपर उठकर क्षेत्रीय सोच को दरकिनार कर क्षेत्रीयता के सोच से विलग हो समूचे राष्ट्र हित में समर्पित हो अपने राष्ट्रीय कर्म-धर्म और राष्ट्रीयता का परिचय देना चाहिए, यही राष्ट्र-सेवा है, राष्ट्र भक्ति है, राष्ट्र प्रेम है और सच्ची राष्ट्रीयता है।

बी- 07, प्रथम तल,
स्टार्लिंग स्काय लाइन,
इंदौर -16 (म.प्र.)
मो.- 9407515174

राष्ट्र-नीति

– **प्रमोद भार्गव**

जन्म – 15 अगस्त 1956।
जन्म स्थान – शिवपुरी (म.प्र.)
शिक्षा – स्नातकोत्तर।
रचनाएँ – विभिन्न विधाओं में सात पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – डॉ. धर्मवीर भारती सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

इतिहास किसी भी राष्ट्र के जीवन की कहानी और नीति उस राष्ट्र को संघटित रखने का राजकीय उपाय, संस्कृति राष्ट्र के नागरिक के आचरण को एकरूपता देती है। सभ्यता मानव व समाज के सुव्यवस्थित व गुणवत्तापूर्ण होने के लक्षण हैं। राष्ट्र के इन सब उदात्त तत्वों को समन्वित रूप देने की दृष्टि से यजुर्वेद के मंत्र (22/22) में बड़ी ही सार्थक प्रार्थना की गई है, 'हे ब्रह्म! हमें ऐसा राष्ट्र दीजिए, जिसमें वर्चस्वशाली ब्राह्मण, शूरवीर एवं बाण विद्या में कुशल क्षत्रिय, दूध देने वाली गौ, भार वहन करने वाले वृषभ, द्रुतगामी अश्व, गृहस्थ धर्म को धारण करने वाली स्त्रियाँ, रथ-यानों को संचालित करने वाले वीर युवाओं के साथ ही ऐसी औषधियाँ प्रचुर मात्रा में हों, जिससे काया निरोगी बनी रहे।' इसे ही भक्तिकालीन कवि कबीरदास ने यूँ कहा है,

'साईं इतना दीजिए जामे कुटुम समाए, आपहूँ भूखा न रहे, साधु न भूखा जाए।'

इसी प्रेरक संदेश के अनुपालन में भारत सरकार 81 करोड़ 35 लाख लोगों को पूरी तरह निशुल्क 'खाद्य सुरक्षा योजना' के माध्यम से अंतिम व्यक्ति तक अनाज पहुँचाने के लिए कृत संकल्पित है।

प्रकारांतर से देखें तो शासक और शासित दोनों इन उद्देश्यों की पूर्ति के पुरुषार्थ में लगे रहते हैं। अतएव हम कह सकते हैं कि वैदिक आर्य और जनता शासकों से ऐसे नीतिगत उपाय करने की उम्मीद रखते थे, जिससे समतामूलक राज-व्यवस्था के साथ शासक न्याय और असंचयी भाव के प्रति प्रतिबद्ध बने रहें। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में इसी भाव को उल्लेखित करते हुए कहा है, 'भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न लोकतांत्रिक गणराज्य के लिए उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय दिलाने के लिए प्रतिबद्ध रहेंगे। विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की 'स्वतंत्रता' बनाए रखेंगे। प्रत्येक नागरिक को प्रतिष्ठा और अवसर उपलब्ध कराने के लिए 'समतामूलक' उपाय करेंगे। व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की संप्रभुता व एकता सुनिश्चित करने की दृष्टि से 'बंधुत्व' भाव की उदारता के प्रति संकल्पित रहेंगे।'

दरअसल किसी भी राष्ट्र की स्वतंत्रता के उद्देश्य की पूर्ति विचार, अभिव्यक्ति, धर्म और उपासना से ही संभव होती है। विचार कल्याणकारी सोच को मस्तिष्क में उभारते हैं। अभिव्यक्ति शब्दों तथा भाव-भंगिमाओं से प्रकट होती है। विश्वास बुद्धि के तर्कों से स्थापित होता है। धर्म श्रद्धा से धारण किया जाता है और उपासना भक्तिभाव से पालन की जाने वाली क्रिया है। अर्थात् सोच, भाषा, तर्क, श्रद्धा, एवं भक्ति के द्वारा राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के व्यक्तित्व को निखारने की स्वतंत्रता संविधान हमें देता है। साथ ही संविधान ने यह भी माना है कि व्यक्ति की गरिमा इसी में है कि राष्ट्र की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने वाली बंधुता को बढ़ाने के लिए वह दृढ़ संकल्पित रहे। वहीं राज-व्यवस्था ऐसे नीतिगत उपाय करे, जो राष्ट्र को खंडित करने वाली मानसिकता को दंडित करने वाले हों। भारतीय संवैधानिक लोकतंत्रीय व्यवस्था का यही सार ऋग्वेद में इस तरह से व्याख्यायित है-

संगच्छध्वं संवदध्वं, संवो मनांसि जानताम।
देवा भागं, यथा पूर्वे, संजानाना उपासते।। (ऋग्वेद-10-191-3)

अर्थात् हम सब साथ चलें, प्रेमपूर्वक बातचीत करें। हमारे मन शांत भाव से विचारों में लीन रहें। जिस प्रकार हमारे विद्वान पूर्वज अपने-अपने भाग में आने वाली धन-संपदा को परस्पर सहमति और समता के आधार पर प्रसाद के रूप में ग्रहण किया करते थे, उसी प्रकार हम भी एकमत होकर अपना-अपना अंश सहर्श स्वीकार करें। अतएव हम कह सकते हैं कि भारतीय राष्ट्र विदेशी आक्रांताओं के दंश भोगता हुआ भी ऋषि-परंपरा से प्रेरित रहते हुए भारतीय नागरिक की धमनियों में हमेशा अँगड़ाई लेता रहा। कालांतर में यही राष्ट्रीय भाव स्वतंत्रता आंदोलन से जन्मा और एक

संवैधानिक व्यवस्था से पुष्ट हुआ। परिणामत: भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के कुशल नेतृत्व में जी-20 देशों का तो आधिकारिक नेतृत्व कर ही रहा है, शेष विश्व को भी सर्वजन हितकारी दिशा दे रहा है, जो विश्व कल्याण की थाती बन रही है।

अन्याय, असमानता, अपरिग्रह और अंहिसा का संदेश भगवान महावीर देते हैं। इस कड़ी में गौतम बुद्ध समतामूलक नागरिक संहिता को मूर्त्त रूप देते हैं। बुद्ध ने करुणा का जो विचार दिया, महावीर ने उसी करुणा को अहिंसा का मंत्र देते हुए विचार दिया, 'जीवम् रक्षति जीवं' कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में उस कालखंड में स्थापित हो चुकी जन्मगत और जातिगत श्रेष्ठता की जगह व्यक्ति की योग्यता को सर्वोपरि माना। गुरुनानक देव ने जातिवाद की ऊँच-नीच को अस्वीकार कर सत्तागत राजनीतिक धर्मांधता को मानव विरोधी निरूपित किया। महात्मा गाँधी ने बीती सदी में सत्य, आहिंसा, विषमता और अपरिग्रह के औजारों से उस पश्चिमी सभ्यता को ललकारा, जिसका सूरज कभी अस्त नहीं होता था। गाँधी ने यह लड़ाई अपनी प्राचीन परंपरा की भावभूमि पर खड़े होकर लड़ी और जीती। अतएव हम कह सकते हैं कि तमाम झंझावतों से जूझती हुई, जो परंपरा भारतीयों के मनो-मस्तिष्क में प्रवाहमान रहते हुए जीवंत थी, उसने हर कठिन समय में अपना आत्मसंघर्ष जारी रखा। यह संघर्ष हजारों वर्ष की लंबी यात्रा में न तो कभी टूटा और न ही थका। भारतीय संस्कृति और सभ्यता का यही वह आत्मबोध है, जो जिसके आलोक में हमें अपना अतीत, अपनी स्मृतियों, संस्कारों और मिथकों में हमारे वर्तमान की समकालीनता का बोध कराता है। भारतीय ज्ञान परंपरा का यह विलक्षण स्वभाव रहा है कि उसमें अतीत और वर्तमान भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक कालखंडों में विभाजित न दिखाई देकर एक ही काल-प्रवाह के अतरंग एवं समावेशी रूप दिखाई देते हैं। अतएव भारतीय परंपरा से विचारधाराएँ तो अनेक फूटती दिखाई देती हैं, लेकिन अंतत: उनका संदेश सकल जीव-जगत का कल्याण और राष्ट्र की अखंडता ही होता है।

उपर्युक्त वैचारिक भिन्नता के सिलसिले में बाबू वृंदावनदास ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत में हिंदू राज्य' में वेदों में उल्लेखित स्वतंत्र चेतना के बारे में कहा है, 'वैदिक आर्यों में स्वच्छंदता एक बड़ा भारी गुण था। प्रत्येक ऋषि ने अपने निष्कर्ष किसी अन्य ऋषि की सहायता किए बिना ही निकाले हैं। उन्होंने इस बात की परवाह नहीं कि उनके परिणाम अन्य ऋषि के निकाले हुए निष्कर्ष से भिन्न हैं। ऋषिगण अपने शिष्यों को केवल विद्यादान ही नहीं देते थे, अपितु आवश्यकता पड़ने पर सैन्य संचालन करते हुए वीरगति पाने को भी तत्पर रहते थे। उस समय जातिभेद नहीं होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार ऋषि अथवा सैनिक कुछ भी हो सकता था।' इसी क्रम में भारतीय ऋषि चार्वाक ने ऐसे भौतिकवादी दर्शन को अभिव्यक्त किया, जो नास्तिकता की प्रखर पैरवी करता है। लोक कल्याण की इसी लोकव्यापी भावना से उस सनातन हिंदू राष्ट्र का उद्गम हुआ, जिसे आज हम भारत के नाम से पुकारते हैं। अथर्ववेद में इस पल्लवित व पुष्पित राष्ट्र के निर्माण की कल्पना यूँ की गई है –

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्पतो दीक्षामुपमनिषदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु।।

(अथर्ववेद-19-41-01)

तय है, भारत राष्ट्र ऋषि-मुनियों की सर्वहितैशी लोक कल्याण की भावना से पुष्ट एवं विस्तृत हुआ। राष्ट्र में बल और तेज देशवासियों की धमनियों में स्फूर्त हुआ और रहा। इसीलिए हमने अपने राष्ट्र को भूमि का टुकड़ा भर नहीं माना, बल्कि तप और दीक्षा का ऐसा पर्याय माना, जो समस्त चराचर जगत की मंगल कामना करता है। इन ऋषियों ने अपने तप एवं से ह्रदय में प्रस्फुटित हुए अंतर्ज्ञान से जाना कि यह जड़ व चेतन सृष्टि में जो भी है, उसका अस्तित्व ब्रह्मांड में सर्वत्र व्याप्त पाँच-तत्व पृथ्वी, आकाश, हवा, पानी और अग्नि से है। इसलिए उन्होंने ग्राम-ग्राम यात्रा कर संदेश दिया कि प्रकृति में जीवन-यापन के जो भी संसाधन हैं, उनकी उपलब्धता की एक सीमा है, अतएव उनका सीमित उपयोग करें। क्योंकि विज्ञान चाहे जितनी भी प्रगति करले, लेकिन उसमें किसी भी एक तत्व के स्वतंत्र रूप से निर्माण की क्षमता नहीं है, वह केवल उसके अंश का कायांतरण कर रूप बदल सकता है। इसलिए ऋषियों ने स्वयं को भी भोग से निर्लिप्त रखते हुए संदेश दिया-

ईशावास्यामिंद सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुन्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद धनम्।।

अर्थात्, प्रकृति से उतना ही लो, जितनी आवश्यकता है। दूसरे के अधिकार को मत छीनो। अन्यथा दंड मिलेगा। दंडित करना ही पड़ेगा। इन व्यावहारिक संदेशों से प्रकृति के उपभोग के प्रति एक स्वमेव मर्यादित संहिता समाज में बनी और इसी आधार पर परिवार एवं समाज की जीवनशैली विकसित हुई, जो कालांतर में विकसित होते आर्यावर्त का स्थायी भाव बन गई। फलत: किसी राज्यसभा या संसद में कोई विधेयक पारित किए बिना ही सर्व-कल्याण की संहिता इस भाव से रच दी गई।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।

उपरोक्त ज्ञान विषयक परंपरा से आहार की उपलब्धता सुलभ

हुई तो सृजन और चिंतन के तपस्वी ऋषि-मुनि सृष्टि के रहस्यों के अनुसंधान में जुट गए। आर्थिक संसाधनों को समृद्ध बनाने के लिए मनीषियों ने नए-नए प्रयोग किए। हल का आविष्कार किया और कृषि फसलों के विविध उत्पादनों से जुड़ी। फलतः अनाज, दलहन, चावल, तैलीय फसलें और मसालों की हजारों किस्में प्राकृतिक रूप से फली-फूलीं। 167 फसलों और 350 फल प्रजातियों की पहचान की गई। अकेले चावल की करीब 80 हजार किस्में हमारे यहाँ मौजूद हैं। 89 हजार जीव-जंतुओं और 47 हजार प्रकार की वनस्पतियों की खोज हुई। ऋषियों ने प्रकृति और जैव-विविधता के उत्पादन तंत्र की पारिस्थितिकी संरचना और उसकी प्राणी जगत के लिए उपयोगिता की वैज्ञानिक समझ हासिल की। इनकी महत्ता और उपस्थिति दीर्घकालिक बनी रहे, इसलिए धर्म और अध्यात्म के बहाने अलौकिक तादात्मय स्थापित कर इनके भोग के उपयोग पर व्यावहारिक अंकुश लगाया। ऋषियों ने पृथ्वी और पंच तत्वों की महत्ता को समझने के बाद ही वैदिक ऋषि विज्ञानी अथर्वा ने अथर्ववेद में 'पृथ्वी-सूक्त' लिखा। इसमें 63 मंत्र हैं। इसे भूमि-सूक्त तथा मातृ-सूक्त भी कहा गया। इसी सूक्त में शायद पहली बार किसी राष्ट्र को 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना के माध्यम राष्ट्रीय अवधारणा की मानसिकता स्थापित करने के उपाय किए गए। इन मंत्रों के माध्यम से अथर्वा ने पृथ्वी के आदिभौतिक और आदिवैदिक दोनों रूपों का स्तवन यानी वंदना की है। इस सूक्त के एक मंत्र में वसुंधरा की महिमा का यूँ गान किया गया है-

याम विश्वानावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेनमित्रां शची पतिः।
सा नो भूमिर्वि सृजंतां आता पुत्रायं मे पयः।।

(अथर्ववेदः पृथ्वी सूक्त-1.10)

इन्हीं अथर्वा ने पृथ्वी के गर्भ से तैलीय ईंधन की खोज की थी। अरणि की लकड़ी के अग्नि का आविष्कार भी अथर्वा ने किया था। संभवतः इसी कालखंड में ऋषियों-मनीषियों ने जो भी विविध विषयक उपलब्धियाँ थीं, उन्हें ऋचाओं, सूक्तों और श्लोकों में ढाला। इस नाते वेद विश्व ज्ञान के कोष हैं। उननिषद् ब्रह्मांड की जिज्ञासाएँ हैं। रामायण और महाभारत ऐतिहासिक कालखंडों की सामाजिक, भौगोलिक, राजनीति, नीतिगत, आर्थिक व युद्ध कौशल के वस्तुपरक चित्रण हैं। अठारह पुराण ऐतिहासिक कालक्रम में तात्कालिक शासकों की समकालीन गाथाएँ हैं। आयुर्वेद व पतंजलि योग, औषधीय व शारीरिक चिकित्सा शास्त्र हैं। सूर्य और खगोल को ज्ञात कर 'सूर्य सिद्धांत' जैसी विज्ञान की पुस्तक लिखी। जिसे पढ़कर दुनिया के वैज्ञानिक चमत्कृत होते हैं। इस ग्रंथ का विश्व की अनेक प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। चौथी-पाँचवी शताब्दी में आर्यभट्ट ने पृथ्वी, सूर्य और चंद्रमा को खँगालकर सिद्धांत दिया कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। महर्षि कणाद ने ईसा से छः सौ वर्ष पहले परमाणु का सिद्धांत दिया। वहीं भास्कराचार्य ने करीब एक हजार वर्ष पहले धरती की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का सिद्धांत 'करण-कौतूहल और 'सिद्धांत-शिरोमणि' पुस्तकों में दिया है, जबकि हम इसका श्रेय न्यूटन को देते चले आ रहे हैं। इस तरह ऋग्वेद काल के स्थापित होने और ऋग्वेद को वैश्विक मान्यता मिलने तक भारत, एक सभ्य और सुसंस्कृत आर्यावर्त कहलें या वृहत्तर भारत के रूप में चतुर्दिक दिशाओं में विस्तृत होता चला गया।

पृथ्वी के जिस भाग को आज हम एशिया कहते हैं, वह नाम ज्यादा पुराना नहीं है। भारतीयों के अतीत के इतिहास की प्रामाणिकता सिद्ध करने वाले वाल्मीकि रामायण और महाभारत में उल्लेखित है कि स्वयंभू मनु के पुत्र प्रियव्रत ने समग्र पृथ्वी को सात भागों में विभाजित कर दिया था, जिसे जम्बूद्वीप नाम दिया। इन सात भू-खंडों को जम्बूद्वीप, प्लावश, पुष्कर, क्रोंच, शक, शाल्मली तथा कुश नाम दिए। जम्बूद्वीप अन्य द्वीप के केंद्र में था और बड़ा भी था, इसलिए इस समूचे भू-भाग को जम्बूद्वीप कहा जाने लगा। वर्तमान में यही एशिया है। एशिया नाम इस भू-खंड को यूनानी नाविकों ने दिया। ग्रीक धातु 'असु' का अर्थ होता है 'सूर्योदय।' इन यूनानियों ने जम्बूद्वीप अर्थात् बृहत्तर भारत वर्श को पूर्व अर्थात् सूर्योदय होने वाली दिशा में पाया और एशिया कहकर पुकारने लगे।

संपूर्ण एशिया अनेक दृष्टियों से अपने में एक इकाई है। इसके प्रायः सभी देशों के आचार-विचार, रहन-सहन, पूजा-पद्धतियाँ और धर्म में बहुत कुछ समानता है। धर्म इस युग में आचरण का पर्याय था। इसका आदि स्रोत भारत और यहाँ से गए वे लोग हैं, जो जम्बूद्वीप में जाकर बस गए थे। यही मूल भारतीय आर्य थे, जो न केवल एशिया बल्कि यूरोप भी पहुँचे थे। उस कालखंड में यूरोप को 'हरिदेश' कहा जाता था। इन्हीं लोगों ने यहाँ भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मूल्य स्थापित किए। ऐसा इसलिए भी हुआ, क्योंकि एक समय भारत की जनसंख्या बहुत अधिक बढ़ गई थी, इसलिए जो मूल भारतीय आर्य पालायन कर यहाँ पहुँचे थे, उन्होंने उपनिवेश स्थापित कर अपनी सत्ता भी स्थापित की। यहाँ बसने वाली सभी संतानें मनु-शतरूपा और ऋषि कश्यप और उनकी दो पत्नियों दिति एवं अदिति की थीं। इनमें अदिति की कोख उत्पन्न संतानें देव कहलाईं, जबकि दिति से पैदा संतानें असुर कहलाईं।

किंतु समय परिवर्तन और जलवायु की भिन्नता के चलते इन दूरांचलों में बसने वाले लोगों के वर्णों तथा शरीरजन्य कद–काठी में बदलाव आते गए। यातायात की कमियों के चलते इन लोगों का भारत आना कम हो गया। अंततः भारत के ये मूल निवासी उसी परिवेश की जलवायु में ढलते चले गए। रहन–सहन और वाणी में परिवर्तन आ जाने से ये प्रवासी भारतीय विदेशी माने जाने लगे। मनु के अनुसार क्रिया लोप हो जाने से ही पौण्ड्र, औण्ड्र, द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, वल्लभ, किरात, दरद, खस आदि जातियाँ बन गईं। इन्हीं में से जो ज्यादा पथ–भ्रष्ट हो गए, उन्हें म्लेच्छ कहा जाने लगा। किंतु इतिहास साक्षी है कि तत्पश्चात् भी इन देशों से हमारा कौटुम्बिक और सांस्कृतिक संबंध बहुत लंबे समय तक बने रहे। इसीलिए वर्तमान में हम देख रहे हैं, जहाँ भी पुरातात्विक उत्खनन होते हैं, वहाँ हिंदू, संस्कृति और सभ्यता के चिह्नों के साथ हिंदू देवी–देवताओं के मंदिरों के अवशेष भी मिल जाते हैं। अतएव हम कह सकते हैं कि जिन देशों के आज जो वर्तमान नाम हैं, उन्हीं के प्राचीन नाम संस्कृतनिष्ठ हैं। जैसे बर्मा–ब्रह्मदेश, थाईलैंड–श्यामदेश, इंडोचाइना–चंपा, कम्बोडिया–कंबुज (यह वही देश है, जहाँ दुनिया का सबसे बड़ा हिंदू मंदिर अंगोरवाट है।) मलाया–मलय, इंडोनेशिया–द्वीपों का भारत, जावा–यवद्वीप, सुमात्रा–सुवर्णद्वीप, बोर्नियो–वरुणद्वीप, बाली–बाली, अफगानिस्तान–गांधार, ईरान–आर्याना, ईराक–सुमेरू, टर्की–कपादेश, अरब–औैर्ब और सीलोन–श्रीलंका हैं।

दुनिया में जहाँ भी सनातन संस्कृति सभ्यता और आर्यों के इतिहास के प्रमाण व जनश्रुतियाँ विद्यमान थीं, उन्हें वेदव्यास ने एकत्रित करके एक विस्तृत कथा का रूप देकर 'माहाभारत' जैसा बड़ा और महान ग्रंथ रच दिया। वेद व्यास ने ही ऋग्वेद की ऋचाओं और मंत्रों को संकलित ग्रंथ में पिरोने का काम किया था। इन दोनों ग्रंथों का ही प्रदेय है कि भारतीय संस्कृति और इतिहास उपजीव्यों के रूप में बारम्बार दुनिया की विभिन्न भाषाओं में लिखे जाते रहे, परिणामतः मूल भारतीय आर्यों की गौरव गाथा अक्षुण्ण बनी रही। इस सिलसिले में रविन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने लेख 'भारतवर्ष में इतिहास की धारा' में लिखा है कि 'वेद व्यास ने आर्य–समाज में बिखरी हुई जनश्रुतियों को एक किया। केवल जनश्रुति ही नहीं आर्य–समाज में प्रचलित समस्त विश्वास, तर्क–वितर्क और नैतिक मूल्यों को एकत्रित करके जातीय समग्रता की एक विराट मूर्ति को स्थापित किया। इसी को उन्होंने नाम दिया 'महाभारत।' इस नाम में ही तत्कालीन आर्य जाति की ऐक्य–उपलब्धि का प्रयास विशेष रूप से प्रकाशित है। आधुनिक पाश्चात्य संज्ञा के अनुसार 'महाभारत' को हम इतिहास न कहें। यह किसी व्यक्ति विशेष द्वारा रचित इतिहास नहीं है, बल्कि यह एक जाति का स्वरचित, स्वाभाविक इति–वृत्तांत है। यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति इन सब जनश्रुतियों को आग में गलाकर, उन्हें विश्लिष्ट करके उनमें एक तथ्यमूलक इतिहास की रचना करता तो आर्य–समाज के इतिहास का सत्य स्वरूप हम देख ही नहीं पाते। उस समय आर्य–जाति का इतिहास आर्यों के स्मृति–पट पर जिन रेखाओं से अंकित था, उनमें से कुछ स्पष्ट थीं, कुछ लुप्त, कुछ सुसंगत थीं, तो कुछ परस्पर विरोधी। महाभारत में इन सभी की प्रतिलिपियाँ एकत्रित और सुरक्षित हैं। लेकिन महाभारत में केवल जनश्रुतियों का ही बिना सोचे–समझे संकलन किया गया हो, ऐसी बात नहीं है। 'अतिशी काँच' के एक ओर व्याप्त सूर्यलोक होता है और दूसरी ओर केंद्रित किरणें। इसी तरह महाभारत की एक ओर व्यापक जनश्रुति राशि है और दूसरी ओर उन सबकी ध्रुवीकृत ज्योति। यह ज्योति है 'भगवद्गीता।' ज्ञान, कर्म और भक्ति का इसमें जो योग है, वही भारतीय इतिहास का चरम तत्व है।'

तय है, इसी हिंदू, संस्कृति और सभ्यता की परिणति में भारतीय राष्ट्र का रूप–वैचित्र्य और रस–गांभीर्य मिला, जो आज भी विद्यमान हैं। भगवान राम ने इसी सांस्कृतिक एकरूपता को बनाए रखने की दृष्टि से उत्तर से दक्षिण भारत की यात्रा कर उन सब विरोधी व विधर्मी शक्तियों का खात्मा किया, जो भारत राष्ट्र को नियंत्रण में लेना चाहती थीं। इसी दृष्टि से भगवान कृष्ण ने पश्चिम से पूरब की यात्रा कर सनातन संस्कृति व धर्म के वैभव को सुदूर पूर्वोत्तर क्षेत्र तक विस्तृत किया। इसलिए हमारे राष्ट्र की अवधारणा वह नहीं है, जो पश्चिमी विद्वान हम पर थोपते रहे हैं। अतएव हम 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ अंग्रेजी भाषा के शब्द 'नेशन' से नहीं समझ सकते ? जैसे कि हम 'धर्म' शब्द को अंग्रेजी के शब्द रिलीजन से नहीं समझ पा रहे हैं। दरअसल 'राष्ट्र' शब्द संस्कृत के अलावा किसी अन्य भाषा में उस अर्थ में नहीं है, जो हमारे व्याकरण से निकले शब्द–रूप में प्रस्तुत है। 'राष्ट्र' का संधि–विग्रह 'राज' और 'त्र' का अर्थ है। 'राज' का अर्थ है प्रकाशित होना और 'त्र' का अर्थ है 'रक्षण करना।' अर्थात् जो प्रकाशित हो रहा है और उसकी रक्षा भी हो रही है, वह 'राष्ट्र' है। ऋषि–मनीषियों ने इस स्वभाव वाले राष्ट्र का नाम रखा 'भारत' जो एक तरह से राष्ट्र के ही अर्थ का पर्यायवाची है। अर्थात् 'भा' का अर्थ है 'प्रकाश' यानी जहाँ प्रकाश में यानी ज्ञान की साधना में निरंतर लगे रहने वाले लोग दुनिया में मिलते हैं, वही भारत है। 'रत' यानी 'सतत्' या 'साधना' में लगे रहने वाले लोगों की जो सनातन परंपरा है, वह भारत की विलक्षणता है और यही भारत राष्ट्र है। यह भारत इसी परिभाषा के अनुरूप भारत बना रहे, इस हेतु ऐसी नीतियाँ आवश्यक हैं, जो इसके संस्कार में एकरूपता का संचार करती रहें।

शब्दार्थ 49, श्रीराम कॉलोनी
शिवपुरी-473551 (म.प्र.)
मो. 09981061100

जीवन दिगंत काव्य संग्रह में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना

– खेमसिंह डहेरिया

जन्म – 9 अक्टूबर 1970।
जन्म स्थान – जबलपुर (म.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी., बी.एड.।
रचनाएँ – आठ पुस्तकें प्रकाशित।
विशेष – आप कुलपति अटल बिहारी वाजपेयी, हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल हैं।

डॉ. कमल सुनृत वाजपेयी जी द्वारा लिखित 'जीवन दिगंत' कविता संग्रह में अधिकांश कविताएँ देश भक्ति, राष्ट्र–प्रेम, राष्ट्रीयता की भावना पर आधारित हैं। कुछ कविताओं में भारतीय संस्कृति भी दृष्टिगोचर होती है। कुछ कविताएँ, कवयित्री ने अपने जीवन के इर्द–गिर्द घटित घटनाओं व अनुभवों पर आधारित भी लिखी हैं।

स्वतंत्रता दिवस, तिरंगा, देश के अमर भाइयों, श्रद्धांजलि, सुभद्राकुमारी चौहान, रानी दुर्गावती, माँ नर्मदे, मातु नर्मदे तुम्हें नमन आदि कविताओं के माध्यम से देश का सांस्कृतिक इतिहास, राष्ट्र–प्रेम, देश भक्ति, राष्ट्रीयता की भावना, राष्ट्रीय चेतना उजागर हुई है। इस संदर्भित भाव कवयित्री द्वारा लिखित तिरंगा, स्वतंत्रता दिवस, देश के अमर भाइयों आदि कविताओं में अभिव्यक्त हुए हैं जो इस प्रकार हैं –

'भारत के शहीदों की कुर्बानी।
याद रखें हम जबानी।
इसकी शान न जाये,
चाहे जान भले ही जाये
हम सब राष्ट्रीय गान गाते हैं।
श्रद्धा और प्रेम से वंदे मातरम् को शीश नवाते हैं।'
(स्वतंत्रता दिवस, पृ.136)

'भारत देश हमारा प्यारा है।
सब देश से बड़ा न्यारा है।' (तिरंगा पृ. 140)

डॉ. कमल सुनृत वाजपेयी जी ने स्वयं के विवाह की 50वीं वर्षगाँठ पर देश के लिए शहीद हुए जवानों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अभिव्यक्त की है, अपनी लेखनी के माध्यम से कवयित्री ने अपने मनोभाव को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है –

'मैंने जब भी प्रणम्य दीपक जलाया।
हाथ लगा तुम्हीं ने बुझने से सदा बचाया।
जीवन का मूल्य तो मैंने जाना है।
तुम्हारे निश्चल प्रेम को पहचाना है।' (देश के अमर भाइयों, पृ.138)

'देश स्वतंत्र अब जन्म लेगी एकता
देश की अखंड आजादी।
ओ मेरे प्यारे वीरो भाइयो।
राखी पर राह देखे बहन तुम्हारी।' (श्रद्धांजलि, पृ. 139)

'तुम्हें श्रद्धा सुमन हम सब करते।
अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि देते।' (श्रद्धांजलि, पृ. 139)

सुभद्राकुमारी चौहान, रानी दुर्गावती आदि कविताओं के माध्यम से भारतीय साहित्य–इतिहास पर प्रकाश डालकर कवयित्री ने वीरांगनाओं की वीरता को बखूबी व्यक्त किया है। यह सर्वविदित है कि प्रसिद्ध वीरांगना रानी दुर्गावती ने विवाह के चार वर्ष बाद ही अपने पति गौढ़ राजा दलपत शाह की असमय मृत्यु के बाद अपने पुत्र वीर नारायण को सिंहासन पर बैठाकर उसके संरक्षक के रूप में स्वयं शासन करना प्रारंभ किया। उनके राज्य का नाम गोंडवाना था, जिसका केंद्र जबलपुर था।

कवयित्री स्वयं भी जबलपुर से है, जिसके माध्यम से देश प्रेम, माटी का प्रेम, साहस, शौर्य को अभिव्यक्त किया, जो सराहनीय है, इस प्रकार व्यक्त हुआ है–

'गढ़ा मंडला की रानी दुर्गावती मरदानी थीं
मंडला के राजा दलपत शाह की रानी थीं।
पति दलपति शाह की मृत्यु के बाद घबराई थीं।
रानी दुर्गावती ने शासन की बागडोर सँभाली थीं।'
(रानी दुर्गावती, पृ. 36)

उसी प्रकार हिंदी की वह कवयित्री जो असहयोग आंदोलन में भाग लेने वाली पहली महिला सुभद्राकुमारी चौहान, जिनकी कविताओं में देश की वीरांगना के लिए ओज, करुणा, स्मृति एवं श्रद्धा थी; ऐसे जज़्बे को कागज़ पर उतारने वाली कलमकारा पर डॉ. कमल सुनृत वाजपेयी जी ने अपने भाव-विचार इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं-

'बचपन की आस में जीवन डाला है।
काव्य का रस मय कर डाला है।
सच्ची देश भक्ति बनकर।
आंदोलन को रूप देकर।
क्रांति कर निज कर्तव्य निभाया।
भारत को स्वतंत्र करवाया।
खादी की साड़ी पहनकर।
हाथ तिरंगा ले अंग्रेजों को ललकारा।' **(सुभद्राकुमारी चौहान, पृ. 34)**

देश की एकता और अखंडता को एकसूत्र में बाँधने का कार्य हिंदी ने किया है। भारतीय संविधान में 'हिंदी' को 14 सितंबर 1949 को भारत की 'राजभाषा' घोषित किया गया। संविधान में अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा के संबंध में व्यवस्था की गई। इसकी स्मृति को ताजा रखने के लिए प्रतिवर्ष 14 सितंबर को 'हिंदी दिवस' के रूप में मनाया जाता है। इस संदर्भ में डॉ. कमल सुनृत वाजपेयी जी ने 'हिंदी भाषा' के प्रति लगाव, प्रेम आत्मीयता आदि कविता के माध्यम से अभिव्यक्त किया है तथा हिंदी साहित्य को सुनहरा बनाने वाले हिंदी साहित्य के लेखक, कवि प्रेमचंद, सूर, तुलसी, रसखान, कबीर, महादेवी, भारतेन्दु आदि का भी हिंदी साहित्य में योगदान को बखूबी अभिव्यक्त किया, जो सराहनीय व प्रशंसनीय है जो इस प्रकार अभिव्यक्त किया है -

'सूर तुलसी सूर कबीर की।
है इसमें गहरी पहिचान।।
इसके जगमग रूप हैं, पंत निराला खूब।
महादेवी दिनकर रचें, अपनी रचनाओं की धूप।।'
(हिंदी भाषा, पृ.143)

साथ ही भारतीय ज्ञान-परंपरा में निहित ज्ञान-विज्ञान के महत्व को भी प्रतिपादित किया तथा भारत में प्रशासक न्यायाधीश, चिकित्सक, अभियांत्रिकी, तकनीकी में अंग्रेजी को त्याग कर 'हिंदी भाषा' को अपनाने पर जोर भी दिया तथा वैज्ञानिकी व तकनीकी विषयों और उच्च शिक्षा में अध्ययन-अध्यापन हिंदी के माध्यम से किया जाना चाहिए, ऐसा सुझाव भी दिया है, जो प्रासंगिक है -

हिन्दी दिवस पर है पुकार
यही कि हिंदी के लेखक उठें जागें।
तकनीकी विषयों में रचें ग्रंथ
तब हिंदी भाषा का जागे भाग्य।
अंग्रेजी की प्रभुताई से जब,
भारत मुक्ति मनायेगा।
जब भारत में प्रशासक, न्यायाधीश,
चिकित्सक हिंदी अपनायेगा। (हिंदी भाषा, पृ. 143)

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि साहित्य प्रेमी व हिंदी सेवी डॉ. कमल सुनृत वाजपेयी जी ऐसे परिवार से ताल्लुक रखती हैं, जहाँ दिग्गज कलमकार श्रद्धेय आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जी (ससुर जी, हिंदी साहित्य आलोचक), आचार्य अंबिकाप्रसाद जी (पिता श्री, साहित्यकार) एवं प्रतिष्ठित सम्माननीय सुनृत वाजपेयी जी की सहधर्मिणी रही हैं; जिन्हें साहित्य-हिंदी-प्रेम विरासत में मिला हो और रग-रग में सांस्कृतिक-राष्ट्रीय भावना भरी हो, जो राष्ट्र की पहचान है और भारतीय सांस्कृतिक-सामाजिक मूल्यों की संवाहक भी हैं, जो देश भक्ति और राष्ट्र-प्रेम की प्रेरणा देती हैं।

यह कृति स्तरीय व पठनीय होने के साथ-साथ संग्रहणीय भी है जिसे पढ़ने के बाद आत्म संतुष्टि तो होती ही है अर्थात् पाठकों को स्वान्तः सुखाय के साथ लिखने के लिए प्रेरित भी करती है।

डी/25, 74 बंगला, तुलसी नगर,
आनंद विहार स्कूल के पीछे,
भोपाल-462003 (म.प्र.)

हिंदी का सरलीकरण और मानक भाषा रूप

- **सनत**

जन्म - 8 अक्टूबर 1964।
जन्मस्थान - रायगढ़ (छ.ग.)।
शिक्षा - एम.ए.।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

भाषा अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम माध्यम है। यह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा हम अपने मन के भावों-विचारों का ठीक-ठीक आदान-प्रदान करते हैं। इसी से हमारा बोलना, सुनना और लिखना सम्प्रेषित हो पाता है। एक भाषा ही सबसे उपयुक्त तरीका है जिससे कथन के आशयों को उचित शैली में समझना-समझाना सम्भव होता है और यह प्राचीनकाल से प्रकटीकरण के लिए अति आवश्यक भी माना जाता रहा है।

यह तो सर्वविदित है कि भारत में आर्य और आर्येत्तर संस्कृति का समागम हुआ है। हिन्दी भाषा का इतिहास एक हजार वर्ष से भी अधिक पुराना है। इसका उद्भव अपभ्रंश अर्थात् शौरसेनी, पैशाची, सिन्धी, मराठी, मागधी और अर्धमागधी बोलियों के समूह से हुआ और तत्सम, तद्भव व देशज के साथ विदेशी शब्दों से मिलकर विकसित हुई है। नि:सन्देह इसमें क्षेत्रीय बोलियों का उल्लेखनीय योगदान है। इसकी व्यापकता, माधुर्य और सहजता के गुणों को देखते हुए 14 सितम्बर सन् 1947 को संविधान निर्मात्री सभा ने इसे 'राजभाषा' के रूप में स्वीकार किया है।

भारत में हिन्दी बहुत वर्षों से लिंगुआ फ्रैंका (Lingua Franca) सम्पर्क भाषा बनी हुई है। पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक सांस्कृतिक सम्बन्धों की मजबूत कड़ी के रूप में इसकी अपार शक्ति देखी जाती है। इसे भारत व्यापी भाषा माना गया है। यह पूरे देश के सामने विचार विनिमय का उत्तरदायित्व सँभालती हुई एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करती है।

भाषायी आँकड़ों की टोह लें तो विश्व स्तर पर चीनी मैंडरिन भाषा बोलने वाले 90 करोड़, अंग्रेजी बोलने वाले 80 करोड़ और हिन्दी बोलने वाले 70 करोड़ लोग बताये जाते हैं। इस दृष्टि से हिन्दी का स्थान तीसरा है।

विदेशों में जो भारतीय मूल के लोग रहते हैं, हिन्दी बोलते हैं और साहित्य का अध्ययन करते हैं उनकी बात तो ठीक है। लेकिन जो अन्य लोग हिन्दी का अध्ययन करते हैं वे मूलत: हिन्दीभाषी नहीं हैं। वे हिन्दी के द्वारा भारत के बारे में जानना चाहते हैं। यहाँ के प्राचीनतम गौरवशाली इतिहास, धर्म, संस्कृति और कलावैभव उन्हें आकर्षित करते हैं, यह आध्यात्मिक शान्ति की भूमि उन्हें रुचती है या वर्तमान के सर्वव्याप्त होते भूमण्डलीकरण और बाजारवाद के चलते हिन्दी बोलने और अध्ययन करने को आवश्यक समझते हैं। इसलिए अपनी मंशा के मुताबिक उन हजारों बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के अभिकर्ताओं को भारत में आकर यहाँ के उपभोक्ताओं से सम्पर्क करना होता है और अनेक प्रकार के अपने कीमती उत्पादों को बेचना होता है। हम उनके हिन्दी सीखने को उनकी एक मजबूरी भी कह सकते हैं। क्योंकि आज की तारीख में भारत उनकी दृष्टि में करोड़ों-अरबों का बाजार के सिवाय कुछ नहीं है।

हिन्दी एक सर्वोपरि भाषा :- यहाँ हिन्दी कई राज्यों की प्रमुख भाषा है। जैसे-उत्तराखण्ड, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, बिहार और राजस्थान। इन राज्यों के सारे प्रशासनिक कार्य हिन्दी में सम्पन्न होते हैं। यह दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, बंगाल से निकलकर बर्मा, श्रीलंका, मारीशस, दक्षिण एवं पूर्वी अफ्रीका और अमेरिका तक भी फैल गयी है। हम साहित्य की पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ और अन्य संचार माध्यमों की बात करें तो ये हिन्दी में ही सर्वाधिक संख्या में प्रकाशित और प्रसारित होती हैं। फिल्में भी हिन्दी में अधिक देखी और समझी जाती हैं। रंगमंच पर नाटक भी हिन्दी में अधिक लोकप्रिय होते हैं। टीवी पर कई चैनल वाले भी अपना कार्यक्रम हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करके गर्व अनुभव करते हैं। गैर हिन्दीभाषी विद्यालयों और महाविद्यालयों में भी हिन्दी भाषा की पढ़ाई को प्रमुख स्थान दिया गया है। इस प्रकार हिन्दी भाषा की

महत्ता स्वयं रेखांकित होती है।

भाषा अभिव्यक्ति के दो सशक्त साधन :- एक मूक व्यक्ति अपने भावों को ठीक ढंग से व्यक्त नहीं कर सकता। जबकि दूसरा सवाक व्यक्ति बहुत सहजता से अपने भावों को व्यक्त कर सकता है। भले ही वह अशिष्ट भाषा में बोले या शिष्ट भाषा में। देखें तो विचारों की अभिव्यक्ति के लिए हमने 'भाषा' का ही चयन किया है। उसकी दो प्रकृतियाँ प्रचलित हैं-(1) वाचिक रूप और (2) लिखित रूप।

(1) वाचिक रूप : इसे शिक्षित और अशिक्षित सभी लोग प्रयोग करते हैं। दोनों में अन्तर मात्र इतना है कि पढ़े-लिखे लोग अनपढ़ लोगों की अपेक्षा शुद्ध भाषा बोलते हैं। लेकिन अनपढ़ों को सामाजिक वातावरण मिलने से वे भी इसे मूल रूप में परिमार्जन कर लेते हैं। यद्यपि भाषा का यह वाचिक रूप बिल्कुल अस्थायी और क्षणिक होता है। तथापि समाज में वाचिक रूप से काम चलता रहता है।

(2) लिखित रूप : मानव सभ्यता के विकास के क्रम में जब सुदूर क्षेत्रों में निवासरत लोगों तक अपने भावों-विचारों को पहुँचाने की आवश्यकता पड़ी, तब मनुष्य ने लिपि एवं संकेत का आविष्कार किया और उनके सहयोग से अपनी बातों को सफलतापूर्वक कह सका।

भाषा के वाचिक रूप में 'ध्वनि' आधारभूत इकाई है और लिखित रूप में 'वर्ण' आधारभूत इकाई है। लिखित भाषा, हमारी भाषा का स्थायी रूप है। इसमें अभिव्यक्त भावों-विचारों को हम कई पीढ़ियों तक मुद्रित आकारों में सुरक्षित रख सकते हैं और मनचाहे समय पर दोबारा पढ़ सकते हैं।

अंग्रेजी के पीछे बाजारवाद और व्यवसाय :- हिन्दीभाषी भारत देश में अंग्रेजी जानने वालों की संख्या कुल आबादी का मात्र तीन प्रतिशत है। भारतीय भाषाओं और बोलियों के जमघट में अंग्रेजी का विकास सम्भव ही नहीं हुआ। स्वतंत्रता भी हिन्दी भाषा के माध्यम से ही प्राप्त की गयी। फिर भी अंग्रेजों के जाने के पश्चात् अंग्रेजी का भूत चढ़ गया। उसका मोह ही नहीं छूटा। आलम यह है कि हिन्दी के चूल्हे पर अंग्रेजी आराम से पक रही है। वैसे विदेशी भाषाओं को सीखने और समझने में कोई आपत्ति नहीं है। चिकित्सा, अभियांत्रिकी, मोबाइल और कम्प्यूटर टेक्नोलॉजी की पढ़ाई के साथ-साथ प्रशासनिक सेवाओं में अंग्रेजी को अनिवार्य किया गया है। किन्तु अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में अंग्रेजी को ही वरीयता प्रदान करना आपत्तिजनक है। दरअसल बाजारवाद और व्यवसाय के घोर समर्थक अंग्रेजी के प्रचार-प्रसार में अधिक रुचि लेते दिखाई पड़ते हैं। क्या हमारी हिन्दी भाषा इतनी कमजोर है कि न्यायालयों के फैसले अंग्रेजी में लिखे जाते हैं? क्या उन न्यायालयों में मुकदमा लड़ने वाला एक अँगूठाछाप गँवार व्यक्ति अंग्रेजी में दिये उस फैसले को समझ पाता है? और जो उसे समझाता है वह उससे तगड़ा शुल्क वसूलता है।

अंग्रेजी के पक्ष में बहुत सारे तर्क दिये जा सकते हैं। उसकी अनेक विशेषताएँ गिनायी जा सकती हैं। परन्तु आम आदमी तो यही समझता है कि अंग्रेजी प्रशासक पैदा करने वाली और रौब-दाब झाड़ने वाली एक कूटभाषा है।

हिन्दी के विकास हेतु सरलीकरण का तर्क :-हिन्दी को लेकर इन दिनों एक विकल्प ढूँढ़ निकाला गया है। वह विकल्प है कथित रूप से हिन्दी को सरल बनाने का। संस्कृत के मूल तत्सम शब्दों को तद्भव यानी बिगड़े शब्दों में हिन्दी में लिखने का। यद्यपि ये तत्सम और तद्भव दोनों ही शब्द साहित्य लेखन में व्यवहृत होते हैं। तथापि हिन्दी + संस्कृत, हिन्दी + अंग्रेजी, हिन्दी + अरबी और अरबी + फारसी इत्यादि दो भाषाओं से बने नये-नये वर्ण संकर शब्द भी धड़ल्ले से प्रचलन में लाये जाते हैं। तेरे को, मेरे को, हम बोला, फिर मेरा लड़की बोला, मेरा माँ सो रही है, हम जाता है, तू आयेगा, हम नहीं जायेगा, तेरा घर किधर को है, तू बहुत बेसी बोलता है, हम तो तेरा गिराहक हैं, हमरो को एक गिलास पानी दो श, अब जादा बकर-बकर मत कर, आप कहाँ से आ रहे हो, आप आज रात को मेरे रूम में खाना-पीना करना; जैसे बहुत से बोलचाल के जड़ शब्द लिखे जाते हैं। जिनका कुछ लोग समर्थन भी करते हैं उनका तथाकथित तर्क होता है कि हम हिन्दी भाषा को सरल बनाने के लिये ऐसा कर रहे हैं। इससे हिन्दी भाषा का और विकास हो सकेगा। असल में इस व्यवहार से विकास तो होता नहीं है, बल्कि उसकी दुर्गति होती है। यह भाषा पढ़े लिखों की दृष्टि में मजाक बन जाती है और शिष्ट भाषा कहलाती नहीं है।

मानक भाषा रूप :- (क) श्रेष्ठ व्याकरण शास्त्र : हिन्दी भाषा का व्याकरण शास्त्र बहुत श्रेष्ठ है। यह इसे विशुद्ध रूप से लिखने और बोलने सम्बन्धी अनिवार्य नियमों का बोध कराता है। इसके विरुद्ध व्यवहार से ध्वनियों के उच्चारण अशुद्ध और शब्द के अर्थ निरर्थक हो जाते हैं। इसका पालन नहीं करने पर

लिखने और बोलने वालों को विद्वानों के समक्ष अल्पज्ञ सिद्ध हो जाना पड़ता है। मुद्रण क्षेत्र में कम्प्यूटर का आगमन होने से धीरे-धीरे हिन्दी भाषा के मानक रूप पर भारी अन्तर देखा जा रहा है। इससे भाषा पर आघात पहुँच रहे हैं।

(ख) संगति में विसंगति : पहले तो हिन्दी से तत्सम शब्द गायब हुए। उसमें से मात्र 'एवं' शब्द बचा रह गया है। उसके पश्चात् आधा 'म', आधा 'न', आधा 'ण', आधा 'श्र', अनुनासिक (चन्द्रबिन्दु), विसर्ग चिह्न और हलन्त चिह्न गायब हुए। प्लुत स्वर चिह्न का भी लोप हो रहा है। हिन्दी के अंक भी अदृश्य होने को हैं। और अब ऋ , ङ ञ, श, ष, स तथा उ और ऊ की मात्राओं का बेमेल उपयोग हो रहा है। वैसे प्लुत स्वर चिह्न का प्रयोग संस्कृत भाषा वाले अभी सुरक्षित रखे हुए हैं या फिर फिल्मों आदि में गीत लिखने वाले। और तो और ऑ ध्वनि वाले अंग्रेजी भाषा के हिन्दी में लिखे जाने वाले मध्यवर्ती शब्द भी सही नहीं लिखे जाते हैं। हिंदी लिखते हैं, हिन्दी बोलते हैं। चिंतन लिखते हैं चिन्तन बोलते हैं। सुंदर लिखते हैं सुन्दर बोलते हैं। सेंटर लिखते हैं सेन्टर बोलते हैं। पेंटर लिखते हैं पेन्टर बोलते हैं। एजेंसी लिखते हैं एजेन्सी बोलते हैं। किंतु लिखते हैं किन्तु बोलते हैं। केंद्र लिखते हैं केन्द्र बोलते हैं। सुरेंद्र लिखते हैं सुरेन्द्र बोलते हैं। संबंध लिखते हैं सम्बन्ध बोलते हैं। जिंदा लिखते हैं जिन्दा बोलते हैं। भैया लिखते हैं भैय्या बोलते हैं। इसी प्रकार निःसन्देह को निस्संदेह लिखा जा रहा है। तत्त्व को तत्व लिखा जा रहा है। महत्त्व को महत्व लिखा जा रहा है। खण्ड को खंड लिखा जा रहा है और वसंत को बसंत लिखा जा रहा है। नगर पालक निगम को नगर पालिक निगम लिखना, अभयारण्य को अभ्यारण्य लिखना, श्रद्धावनत को श्रद्धानवत लिखना, रवीन्द्र को रविन्द्र लिखना तथा हँस को हंस लिखना, हंस को भी हँसने के भाव में हंस ही लिखना हिन्दी मानक भाषा को ही हास्यास्पद बना देता है।

(ग) सटीक शब्द संरचनाएँ :- हिन्दी भाषा की प्रथम विशेषता यह है कि इसे बहुत ही सरलता से सीखी जा सकती है। इसकी लिपि देवनागरी लिपि है। वर्णमाला बिल्कुल सरल है। शब्दों की संरचना करना बहुत सुविधापूर्ण है। इसमें कुछ शब्दों के ऊपर मात्र अनुस्वार (बिन्दु) या अनुनासिक (चन्द्रबिन्दु) लग जाने पर उनके अर्थ बदल जाते हैं । जैसे : रग-रंग, भग-भंग, जग-जंग, गज-गंज, रच-रंच, घट-घंट, सत-संत, कद-कंद, मद-मंद, वश-वंश, मजा-मंजा, गदा-गंदा, कटक-कंटक, बदर-बंदर, बजर-बंजर, बाग-बांग, मास-मांस, तात-ताँत, ढाक-ढाँक, सास-साँस, बाट-बाँट, बास-बाँस, कास-काँस, पाव-पाँव, कहा-कहाँ।

इसी प्रकार कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिसमें मात्र हलन्त का चिह्न लग जाने पर उसके अलग अर्थ हो जाते हैं। जैसे : जगत् = **संसार, जगत = कुएँ का चबूतरा।**

सन् = वर्ष, सन = जूट।
बम् = शिव आराधना का शब्द,
बम = विस्फोटक गोला।
अन्तं = अन्दर,
अन्तर = फर्क। कीर्तिमान् = यशस्वी,
कीर्तिमान = रिकॉर्ड। अहम् = अहंकार,
अहम = खास। चित् = मन,
चित = पीठ के बल लेटा हुआ।
वरन् = बल्कि, वरन = चयन।
वाक् = वाणी, वाक = उक्ति।

संस्कृत, हिन्दी, अरबी, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी शब्दों के अनेक उपसर्ग जुड़कर भी नये शब्द बन जाते हैं। जैसे : अधि उपसर्ग से अधिकार, अधिकारी, अधिनायक, अधिराज, अधिकरण, अध्यक्ष, अध्यापक, अध्यादेश। निर्-उपसर्ग से निरपराध, निर्दोष, निर्मम, निर्मल, निर्यात, निराकार, निर्दय, निर्धन, निर्वाह। प्रति उपसर्ग से प्रतिकूल, प्रतिध्वनि, प्रतिदिन, प्रतिहार, प्रत्यक्ष, प्रसिद्धि, प्रत्युपकार, प्रत्येक, प्रतिनिधि, प्रतिलिपि आदि शब्दों के पश्चात् लगने वाले विभिन्न प्रत्यय भी कमाल के होते हैं। सीधे संज्ञा से विशेषण बन जाते हैं। जैसे : 'इक' प्रत्यय से अर्थ-आर्थिक, अलंकार-अलंकारिक, अंश-आंशिक, इतिहास -ऐतिहासिक, साहित्य-साहित्यिक। 'इत' प्रत्यय से अंक-अंकित, अवलम्ब-अवलम्बित, हर्ष-हर्षित, कुसुम-कुसुमित, पल्लव-पल्लवित। इसी प्रकार आ, इ, ई, ईय, ईन, इन, ईण, इया, इम, इर, इल, मान, वान, अनीय, आल, अक्कड़ आदि बहुत से प्रत्ययों से नये विशेषण शब्द बन जाते हैं।

हिन्दी कविताओं में प्रयुक्त किये जाने वाले तुकान्तों (अन्त्यानुप्रास) का निर्माण करना भी कइयों को मुखाग्र हो जाता है। कागज पर कलम से बिना लिखे भी उसकी मौखिक रचना की जा सकती है।

नवल जी द्वारा सम्पादित सुप्रसिद्ध हिन्दी शब्दकोश 'नालन्दा विशाल शब्दसागर' में शब्द संख्या एक लाख पचास हजार है। अन्य शब्दकोशों में भी बहुत से शब्द संकलित मिलते हैं। अनुमान लगायें तो उनमें से लेखन व्यवहार में बमुश्किल पाँच सौ शब्द उपयोग में लाये जाते होंगे। शेष निरुपयोगी पड़े रहते हैं। वे शब्द भी अत्यन्त सम्प्रेषणीय हैं। उन्हें भी समझना सुविधाजनक और सरल है। वास्तव में उन्हें चलन में लाये ही नहीं जाते।

हिन्दी भाषा के मानक रूप के उलट कई लोगों से जो लेखन में अक्सर गलतियाँ हो रही हैं, ये उनकी अज्ञानता व शीघ्रता के कारण हो रही हैं या मोबाइल और कम्प्यूटर में सही टाईप चार्ट व की बोर्ड नहीं मिलने के कारण विवशता में हो रही है। नहीं तो कोई भी ज्ञानवान् सज्जन जान-बूझकर गलतियाँ करना भला क्यों चाहेगा।

हिन्दी भाषा के सरलीकरण के पक्षधरों का तर्क है कि टाइपिंग से हमारा बहुत सारा समय बचता है। दो घण्टे के काम को हम तीस मिनट में ही खत्म कर देते हैं। उनके तर्क का आशय यही निकलता है कि वे जान बूझकर गलतियों को दोहराते हैं। इसका भाषा विज्ञान के विद्यार्थियों के उच्चारण, उच्च अध्ययन और ज्ञानार्जन पर क्या प्रभाव पड़ेगा इस ओर उनका ध्यान नहीं है।

हिन्दी भाषा पर विद्वानों के विचार :- हिन्दी कथासाहित्य के शिरोमणि मुंशी प्रेमचन्द कहते हैं-'राष्ट्र की बुनियाद राष्ट्र की भाषा है। नदी, पहाड़ और समुद्र राष्ट्र नहीं बनाते। भाषा ही वह बन्धन है जो चिरकाल तक राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधे रहती है और इसे बिखरने, विखण्डित एवं विभाजित होने से रोकती है।'

राष्ट्र निर्माण के पुरोधा अरविन्द घोष के शब्द हैं-'किसी राष्ट्र अथवा मानवीय समुदाय की आत्मा के लिये यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि वह अपनी भाषा की रक्षा करे और उसे एक सशक्त और सजीव सांस्कृतिक बना ले।'

अंग्रेजों के जमाने में भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण करने वाले पहले भाषावैज्ञानिक जार्ज ग्रियर्सन ने कहा है-'समस्त आर्यावर्त या ठेठ हिन्दुस्तान की राष्ट्र तथा शिष्ट भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी है।'

हिन्दी प्रेमी विद्वान पं. कृ. रंगनाथ पिल्लयार के विचार हैं-'भाषा के उत्थान में एक भाषा का होना आवश्यक है। इसलिये हिन्दी सबकी साझा भाषा है।'

अमेरिकी चिकित्सक, प्राध्यापक और लेखक वाल्टर चेनिंग का कथन है-'विदेशी भाषा का किसी स्वतंत्र राष्ट्र के राजकाज और शिक्षा की भाषा होना सांस्कृतिक दासता है।'

समाजवादी नेता डॉ. राममनोहर लोहिया स्वतंत्रता आन्दोलन के समय में 'अंग्रेजी हटाओ-हिन्दी लाओ' तो बोले ही थे।

शायद डॉ. लोहिया जी को पहले से आभास हुआ होगा कि एक दिन अंग्रेजी आधुनिकता की आँधी हिन्दी मानक भाषा के लिये खतरा बन सकती है। हम हिन्दी भाषी मूल अंग्रेजी में पुस्तक लिखने के लिये आतुर हो जाते हैं, लेकिन कोई अंग्रेजी भाषी मूल हिन्दी में पुस्तक लिखने के लिये आतुर नहीं होता होगा।

हिन्दी मानक भाषा रूपों की बढ़ती उपेक्षा, परिनिष्ठित भाषा के साथ खिलवाड़ और किसी मान्य राष्ट्रभाषा को हल्के तौर पर लिया जाना भाषायी दृष्टि से एक गंभीर समस्या है। यह हर हिन्दी अनुरागी को खटकता है। वह सोच में पड़ जाता है कि यह सांस्कृतिक क्षरण का दौर कितना त्रासदीपूर्ण है। क्या होगा आगे?

वर्तमान स्थिति इतनी दुर्भाग्यजनक और असंवेदनशील है कि हिन्दी भाषा के ज्वलन्त मुद्दों को गैरप्रशासनिक तरीके से सोचना ही अपराध प्रतीत होता है। वर्षों से हिन्दी हमारी संस्कृति में रची-बसी है। मन आत्मा में समायी हुई है। बहुसंख्यकजनों से सम्भाषण के लिये हिन्दी आज अनिवार्य है। उसका असली संवाहक हर पढ़ा-लिखा आमजन है। परन्तु हिन्दी भाषायी नेतृत्व की आशा तो शिक्षकों और पाठ्यपुस्तक निर्माताओं के साथ - साथ कवियों, गीतकारों, लेखकों, साहित्यकारों, पत्रकारों और सम्पादकों से ही है।

हिन्दी राष्ट्रभाषा की विशिष्टता और उसकी समृद्धि शिक्षितजनों की सजगता, जागरूकता एवं संरक्षण पर निर्भर करती है। किसी भी देश की भाषा की विकृति और उसके परिमार्जन के लिये नागरिक ही उत्तरदायी होते हैं। हमें हिन्दी के सरलीकरण के दौर में मानक भाषा रूप की गरिमा को यथावत बनाये रखने की बहुत अधिक आवश्यकता समझनी चाहिये?

ऋतु साहित्य निकेतन,
जूट मिल थाना के पीछे बगल गली,
हनुमान मंदिर के पास,
रायगढ़-496001 (छत्तीसगढ़)
मो. - 7067643452

सांध्य-पथिक उपन्यास में चित्रित वृद्ध विमर्श

- महेश बापूराव चव्हाण

जन्म - 20 मई 1983।
जन्मस्थान - हवालदारवाडी, सतारा (महा.)।
शिक्षा - एम.ए., नेट, पीएच.डी.।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

भूमंडलीकरण के युग में सबकुछ बदल चुका है परिवार की संकल्पना बदल चुकी है। जिन बुजुर्गों ने हमें पाल-पोसकर बड़ा किया होता है उन्हीं बुजुर्गों को बच्चों द्वारा नकारा जा रहा है। बच्चे बुढ़ापे में लाठी बनने की अपेक्षा उन्हें बोझ समझ रहे हैं। दो पीढ़ियों के बीच मानसिक रूप से हो रही टकराहट के कारण वृद्ध अस्वस्थ हैं।' समाज रीति-रिवाजों, परम्पराओं और कुछ रिश्तों के बल पर खड़ा होता है। इनमें किसी तरह का विचलन आने पर परिवार विखंडित हो जाता है। परिवार के ढाँचे में परिवर्तन आने के कारण कल तक भारतीय समाज व्यवस्था में मुखिया रहे वृद्धजन के हाशिये पर चले जाने कि तीव्र शुरुआत हुई है। समाज में जिस तरह से वृद्ध हाशिये पर चले जा रहे हैं, उससे नहीं लगता कि समाज का यह महत्त्वपूर्ण तबका जिसने परिवार के लिए बड़े-बड़े त्याग किये, घर को बनाने में अथक मेहनत की और रिश्तों को बनाए रखने के लिए पूरा जीवन कुर्बान करते हैं, वे क्यों कर अंतिम समय में हाशिये पर जीने के लिए विवश है।' **(साहित्येतिहास में वृद्ध विमर्श संपादक शिवचन्द्र सिंह पृ. 77)** डॉ. नेगी जी के उपन्यासों का केंद्र वृद्धों की समस्या, हमारी संस्कृति, सभ्यता, मानवीयता, रिश्तों की अहमियत आदि है। भूमंडलीकरण के बदलते युग में रिश्तों में आए बदलाव का सबसे अधिक परिणाम वृद्धों के जीवन पर हुआ है। आज बच्चे पढ़ने हेतु घर से बाहर निकलते हैं फिर नौकरी के लिए विदेश चले जाते हैं और वही बसते हैं। माता-पिता उनकी राह देखते-देखते गुजर जाते हैं। डॉ.नेगी जी ने वृद्धों की यह छटपटाहट तथा पीड़ा को अत्यंत मार्मिक ढंग से अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया।

नालंदा विशाल शब्द सागर में वृद्ध शब्द का अर्थ 'साठ वर्ष से अधिक अवस्थावाला आदमी वह जो साधारण की अपेक्षा बड़ा और श्रेष्ठ हो, बुड्ढा आदि अर्थ दिये जाते हैं।' **(नालंदा विशाल शब्दसागर-संपा-श्री नवल जी पृ.1276)**

नालंदा विशाल शब्द सागर में वृदधा का अर्थ 'बुढ़ापा' यह दिया है। मनुष्य बाल्यावस्था, यौवनावस्था, प्रोढ़ावस्था और वृद्धावस्था इन अवस्थाओं से गुजरता है। **(नालंदा विशाल शब्दसागर-संपा-श्री नवल जी पृ.1276)**

नालंदा विशाल शब्द सागर में विमर्श इस शब्द का अर्थ दिया है 'किसी बात का विचार या विवेचन, आलोचना, समीक्षा, परखने का काम।' **(नालंदा विशाल शब्दसागर-संपा-श्री नवल जी पृ.1297)** उपर्युक्त विवेचन तथा शब्दों के अर्थों को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि वृद्ध विमर्श यानी वृद्धों के बारे में विचार या विवेचन करना उसे परखना। प्रस्तुत शोधालेख के द्वारा डॉ. सूरजसिंह नेगी के सांध्य-पथिक उपन्यास में चित्रित वृद्ध विमर्श का विवेचन किया जाएगा।

वैद्यकीय सुविधा एवं आर्थिक संपन्नता के कारण वृद्धों का जीवनमान बढ़ रहा है परंतु दूसरी ओर उनकी समस्याएँ भी बढ़ रही हैं। भूमंडलीकरण के कारण समाज में आ रहे बदलाव का काफी असर वृद्धों के जीवन पर हुआ है। आज का युवा समाज यह समझता है कि वह बूढ़ों का बोझ ढो रहा है और यह भूल जाता है कि इन्हीं वृद्धों ने अपनी युवा अवस्था में उन बच्चों का भरण-पोषण करके उन्हें युवा बनाया है। युवा यह भूल जाते हैं कि उनके शरीर में भी बुढ़ापा छिपा है। युवा यह भी भूल जाते हैं कि बूढ़ों में भी वही आशाएँ व आकांक्षाएँ होती हैं, वही जरूरतें होती हैं और वही संवेदनाएँ होती हैं जो उन युवाओं में हैं। **(वृद्धावस्था विमर्श संपादक-चंद्रमौलेश्वर प्रसाद पृ. 18)** अपने बच्चों को पढ़ाते हैं और अपने पैरों पर खड़ा होने के काबिल बनाते हैं परंतु वही बच्चे एक बार विदेश चले जाते हैं तो अपने वृद्ध माता-पिता की ओर ध्यान नहीं देते। घर में सब सुख-सुविधा होते हुए भी वृद्धों के पास बातचीत करने तथा सुख-दुख बाँटने

के लिए कोई नहीं है। बच्चे फोन के माध्यम से संपर्क में रहते हैं। साल में एकाध बार दो-तीन दिनों के लिए बच्चे आते हैं। बच्चों की राह देखते-देखते वे थक जाते हैं। दूसरी ओर वृद्धों के पास बच्चे तथा पोते-पोतियाँ हैं लेकिन आर्थिक विपन्नता के कारण उन्हें न तो अच्छी वैद्यकीय सुविधाएँ मिलती हैं न अच्छी परवरिश। वृद्धावस्था में एक तो शारीरिक पीढ़ा से वे गुजर रहे होते हैं उसी में उन्हें मानसिक पीड़ा से गुजरना पड़ता है। आज यह वर्ग समाज के द्वारा उपेक्षित हो रहा है साथ ही परिवार के निर्णय प्रक्रिया से इन्हें दूर रखा जाता है इस कारण वे अकेलापन एवं बेगानेपन का सामना करते हैं। डॉ.नेगी जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से वृद्धों की इसी छटपटाहट को अभिव्यक्त किया है।

डॉ. नेगी जी के वसीयत, रिश्तों की आँच, नियति चक्र और ये रिश्ता क्या कहलाता है, यह चारों उपन्यास वृद्ध विमर्श पर केंद्रित हैं। सभी उपन्यासों की विषयवस्तु और उद्देश्य अलग-अलग है 'परंतु सभी को जोड़नेवाले तत्व हैं-संस्कार, जीवनमूल्य और मानवीयता। प्रस्तुत उपन्यास मात्र वृद्धों की समस्याओं का चित्रण नहीं करते हैं अपितु समस्याओं के समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। सांध्य-पथिक उपन्यास पूर्णत: वृद्ध विमर्श पर केंद्रित उपन्यास है। जिसमें वृद्धजन की शारीरिक, मानसिक पीड़ा, उनके मनोगत भाव, उनके प्रति अपनों के व्यवहार और उससे उपजी परिस्थितियों का चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने वृद्धजनों के क्रियाशीलता, अपनों के प्यार-अपनापन की आवश्यकता को महत्त्व दिया है। युवा पीढ़ी अगर वृद्धों के अनुभव का सही उपयोग करती है तो वृद्धों से जुड़ी अनेक समस्याओं का समाधान मिल सकता है। जीवन के अंतिम पड़ाव में प्रेम, सम्मान, अपनेपन आदि की सर्वाधिक आवश्यकता होती है परंतु अगर परिवार के द्वारा उपेक्षा, घृणा, अपमान मिलता है तो वृद्ध अंदर से टूट जाता है। जब वृद्ध यह महसूस करने लगता है कि अब उसकी कोई जरूरत नहीं है तथा वह किसी योग्यता का नहीं है तो वह धीरे-धीरे मृत्यु के समीप जाता है। वृद्धावस्था की समस्या उम्र से ज्यादातर मानसिक स्थिति पर निर्भर रहती है।

प्रस्तुत उपन्यास में वृद्धावस्था की समस्याओं का चित्रण करते हुए लेखक ने इस समस्या के समाधान पर भी विचार किया है। उपन्यास का केंद्रीय पात्र सोमबाबू सेवानिवृत्ति की कगार पर हैं। सेवानिवृत्ति जैसे-जैसे नजदीक आती है तो सोमबाबू अपनी वृद्धावस्था पर सोचते रहते हैं और अपनी पत्नी श्रद्धा से सेवानिवृत्ति के बाद के जीवन पर विचार विमर्श करते हैं। सोमबाबू ने अत्यंत प्रतिकूल परिस्थिति में अपने जीवन को सँभाला है। सरकारी नौकरी करते समय जिस संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है वह सोमबाबू में है। वे जानते हैं कि उनके एक निर्णय से सामान्य लोगों के जीवन में काफी परिणाम हो सकता है। सेवानिवृत्त होनेवाला वृद्ध सोचता है कि अब परिवार को समय दूँगा लेकिन ऐसा नहीं हो पाता। जब तक उनके पैसे होते हैं तो बच्चे, बहू काफी ख्याल रखते हैं लेकिन जैसे ही वृद्ध के पास की पूँजी खत्म हो जाती है तथा सब संपत्ति अपने नाम होती है तो वृद्ध परिवार को बोझ लगने लगता है। बच्चे उसे वृद्धाश्रम भेज देते हैं लेकिन शारीरिक और मानसिक दृष्टि से टूटा वृद्ध उसका विरोध नहीं कर पाता और घुट-घुटकर मर जाता है। गोपाल और सोमबाबू के संवाद से हमें इस बात का पाता चलता है। 'क्या बताऊँ सोमबाबू। रिटायरमेंट के दिन कितने खुश थे त्रिवेदी जी। सोच रहे थे, जिंदगी का शेष समय बच्चों के साथ गुजारेंगे। बच्चों के मोह में इतना अंधा हो गए कि सेवानिवृत्ति पर मिलनेवाली एकमुश्त राशि बच्चों में बाँट दी। कुछ महीनों तक ठीक-ठाक चलता रहा लेकिन जल्द ही उनको अपनी गलती का एहसास हो गया था। बेचारे त्रिवेदी जी।' **(सांध्य-पथिक-डॉ.सूरजसिंह नेगी, पृ. 20)** इस संवाद से सेवानिवृत्त वृद्ध की संवेदना को समझा जा सकता है। रिटायरमेंट के बाद बच्चे और बहू का ध्यान सिर्फ उनकी पेंशन पर था। पत्नी गुजर जाने के बाद तो वे पूरे टूट जाते हैं। घर में उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं था। बीमार होने पर भी किसी ने ध्यान नहीं दिया तो वे घर छोड़ देते हैं और भोलाराम की सहायता से वृद्धाश्रम में पहुँचते हैं। उसी वृद्धाश्रम में उनकी मृत्यु हो जाती है लेकिन अंतिम विदाई पर भी घर का कोई नहीं आता। इस प्रसंग से समाज में बढ़ते असंवेदनशीलता का परिचय मिलता है।

सेवानिवृत्ति की कगार पर आए वृद्ध के बारे में युवा पीढ़ी के मन में गलत धारणा होती है। नई पीढ़ी को लगता है कि वृद्ध नई तकनीक सीख नहीं सकते। उनकी कोई उपयोगिता नहीं है लेकिन वे इस बात को भूल जाते हैं कि वृद्ध अनुभवों का जखीरा हैं, उसने अनेक संघर्षों का सामना किया है। अगर वृद्धों के अनुभव का सही उपयोग किया जाए तो समाज के लिए लाभदायी ही होगा। युवा पीढ़ी यह भूल जाती है कि अगर वे कोई गलत काम करते हैं तो उसे बुजुर्ग ही सुधार सकते हैं। सेवानिवृत्ति के बाद समाज और परिवार उस वृद्ध को 'सीनियर सिटीजन' घोषित कर देते हैं। नंदा बाबा और सोमबाबू के संवाद से इस बात का पता चलता है, 'जानते हो सोम! हम बूढ़ों

की सबसे बड़ी समस्या क्या है? यही की घर-परिवार, समाज में हर तरफ हमें एहसास करा दिया जाता है कि अब हम बूढ़े हो गए हैं। वहाँ हमारी अब कोई जरूरत नहीं है। है न बड़ी विचित्र किंतु कड़वी सच्चाई। हर कोई हमारे सिर पर सफेद होते बालों, चेहरे की झुर्रियों पर जाता है। वह यह भूल जाता है कि हमारे अंदर भी एक दिल है जो सम्मान चाहता है, जिसकी अपनी कोई चाहत है।' **(वही पृ. 62)** इस संवाद से महसूस होता है कि वृद्ध सम्मान चाहता है, उसे अपनेपन की जरूरत होती है। समाज वृद्ध को काम का न समझकर उसकी उपेक्षा करता है। प्रस्तुत उपन्यास में वृद्धों की मानसिकता का चित्रण किया गया है। वृद्धत्व का संबंध मानसिकता से अधिक होता है। वृद्ध शारीरिक रूप की अपेक्षा मानसिक रूप से अधिक थकते हैं। परिवार के सदस्य उनकी अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतरते।

उपन्यास का केंद्रीय पात्र सोमबाबू है। उपन्यासकर ने सोमबाबू के आस-पास के वृद्धों का जीवन प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित किया है। उसमें नौकरी करनेवाले और सेवानिवृत्ति के कगार पर आए वृद्धों का चित्रण मिलता है। साथ ही समाज के ऐसे वृद्ध जो घरवालों की उपेक्षा के कारण संघर्ष कर रहे हैं। कुछ वृद्धों को बच्चों ने वृद्धाश्रम में डाल दिया है। 'सोमबाबू सोचते हैं, उम्र के एक पड़ाव पर आकर माँ-बाप के मन में असुरक्षा का भाव घर करने लग जाता है, जब बढ़ती हुई औलाद को जीवनयापन के लिए बाहर जाना पड़ता है। उनके मन में बहुतरे ख्याल इस बात का लेकर आते हैं कि जब बच्चों के बगैर कैसे दिन कटेंगे, बच्चे कहीं परदेशी बनकर तो नहीं रह जाएँगे? जब उनको जरूरत होगी, बच्चे पास में होंगे भी या नहीं, ऐसे ही अनेक विचार मन-मस्तिष्क पर छा जाते हैं। कुछ खुशनसीब होते हैं जिनके बच्चे समय-समय पर घरों को वापस लौट वृद्ध हो रहे माँ-बाप के पास आकर अपना संतान धर्म निभाते है, लेकिन हरेक के नसीब में यह खुशी नहीं होती। माँ-बाप की थरथराती देह परदेश गए बच्चों कि बाट जोहती रहती है लेकिन बच्चे अपनी अलग दुनिया बसा लेते हैं और फिर वही होता है जिसका माँ-बाप को डर होता है। वह बेहद एकाकी हो शेष जीवन जीने को मजबूर हो जाते हैं, यह समस्या शहरों तक ही सीमित न होकर सर्वव्यापी हो चुकी है। गाँव-कस्बों-छोटे शहरों में भी यह समस्या अपना विकराल रूप धारण करती नजर आ रही है।' **(वही पृ.156)** यही प्रस्तुत उपन्यास सा केंद्रीय विषय है।

सोमबाबू एक वृद्धाश्रम से जुड़ जाते हैं। वह अपने मित्र गोपाल के साथ वहाँ जाते रहते हैं। वृद्धाश्रम में ऐसे अनेक वृद्ध हैं जो घरवालों की उपेक्षा सहन नहीं कर पाते। इस कारण वृद्धाश्रम में आए। कुछ वृद्धों को घरवाले छोड़कर गए हैं। जिसमें त्रिवेदी, सुशीला, यजुवेंद्र शास्त्री, कीरतसिंह आदि सबकी अपनी कहानी है। वृद्धाश्रम में जब भी बातचीत चलती तो बातों का केंद्र घर-परिवार, बच्चे, उनकी पुरानी स्मृति आदि होता। सुशीला के दोनों बच्चे अरुण और प्रिया उसे वृद्धाश्रम भेज देते हैं। वृद्धावस्था में माँ-बाप मात्र बच्चों का समय चाहते हैं बाकी कुछ उनको आवश्यक नहीं होता। सुशीला के पति की मृत्यु के समय दोनों बच्चे मौजूद नहीं थे। वृद्धाश्रम में रह रहे यजुवेंद्र शास्त्री की अपनी कहानी है वे अपने भरे-पूरे परिवार से निकालकर अपनी पत्नी को लेकर अलग रहने लगे। उनके अनुसार केवल बच्चों को दोष देकर नहीं चलेगा, हमारी पीढ़ी भी उसके लिए जिम्मेदार है। हमने उनको कभी पारिवारिक प्रेम क्या होता है यह नहीं सिखाया। संयुक्त परिवार प्रथा विघटन, सुख-सुविधाओं को प्राप्त कर लेने की प्रवृत्ति, अपनी इच्छा बच्चों पर थोप देने का चलन और संवेदनशून्यता के कारण यह सब हो गया है। अधिकांश वृद्ध आर्थिक रूप से संपन्न थे लेकिन उम्र के इस पड़ाव में संपन्न वही होता है जिसके पास अपने होते हैं। जो इन वृद्धों के पास नहीं था। बुढ़ापे में वृद्ध के व्यवहार में परिवर्तन आता है उस समय उसे परिवार की बहुत आवश्यकता होती है। श्रद्धा सोमबाबू को समझाते हुए कहती है, 'बुढ़ापा व्यक्ति को बचपन में ले जाता है, कई बार माँ की चपलता, जिद, वृद्धावस्था आते-आते इंसान में समाहित हो जाती है। इसलिए वृद्धों को बच्चों की तरह देखभाल और प्यार की जरूरत होती है। वृद्धावस्था में वृद्धजन बच्चे और बच्चे माँ-बाप की भूमिका में आ जाते हैं।' **(वही पृ.137)** अर्थात बुढ़ापा दूसरा बचपन ही होता है। उनकी सेवा टहल के लिए धैर्य और संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है।

माँ-बाप बच्चों की खुशी के लिए अपनी अनेक इच्छाओं को दबाते है लेकिन बच्चों की जिद पूरी करते हैं। जब उनको बच्चों के सहारे की आवश्यकता होती है तब बच्चे अपनी जिम्मेदारी को टालते और अपने अपने वृद्ध माता-पिता को वृद्धाश्रम में डाल देते हैं। सोमबाबू श्रद्धा से कहते हैं, 'श्रद्धा! देखो न एक तरफ माँ-बाप हैं जिनके लिए औलाद हमेशा प्रिय होती है, उसकी हरेक वस्तु, पसंद-नापसंद, जरूरत का ख्याल रखा जाता है, वही दूसरी तरफ बच्चे होते हैं जिनके लिए वृद्ध माँ-बाप की पसंद-नापसंद, भावनाओं का कोई अर्थ नहीं रह जाता। वृद्ध माँ-बाप भी बेकार सामान की तरह बोझ लगने लग

जाते है।' **(वही पृ.158)** माँ-बाप गुजर जाने के बाद उनकी पसंद की वस्तुओं की उपेक्षा की जाती है। वृद्ध माँ-बाप को अंतिम समय में बच्चों की शर्त पर जीना पड़ता है। अगर उनकी शर्त नहीं मानी जाती है तो उनको घर से बाहर निकाला जाता है।

शहरों की अपेक्षा गाँवों में वृद्धों की स्थिति अच्छी है। भले ही गाँवों में आर्थिक दुष्टि से वृद्ध सशक्त नहीं है लेकिन घरवालों का उनकी ओर ध्यान जाता है। जो वृद्ध कम कर सकते हैं वे खेती या जानवरों के काम में व्यस्त होते हैं। गाँव के मध्य बने चबूतरे पर सभी वृद्ध, जवान और बच्चे बातचीत करते हुए नजर आते हैं। इस कारण गाँव के किसी वृद्ध के चेहरे पर एकाकीपन का भाव नहीं है। व्यस्तता के कारण उनके पास सोचने के लिए समय नहीं है। वृद्धाश्रम में रह रहे वृद्धों की आँखों में सूनापन तथा चेहरे पर बेबसी दिखाई देती है। इन वृद्धों के पास सबकुछ है लेकिन अपनों का साथ और अपनापन नहीं है। शहर में रह रहे वृद्धों की हालत के लिए वे स्वयं भी जिम्मेदार हैं। शादी हुई नहीं और नया परिवार बसा लिया। अपनी जड़ों से दूर होते गए और उनके बच्चों ने भी वही किया। गाँवों में शादी-ब्याह के समय वृद्धों की सलाह ली जाती है। वे भी अपने तथा पुरखों से प्राप्त अनुभव बता देते हैं। घनश्याम चाचा जैसे वृद्ध अपनी प्राचीन परंपरा को नई पीढ़ी तक पहुँचने का काम करते हैं। शहरों में वृद्धाश्रम ही वृद्धों का सहारा होता है। वहाँ प्रताड़ित वृद्धों को पेट की आग शांत करने के लिए दो वक्त की रोटी, रहने को जगह और भावनाएँ व्यक्त करने के लिए हम उम्र लोगों का सामीप्य मिल जाता है। जीवन के अंतिम दिनों में वृद्धों को प्यार अपनेपन की आवश्यकता होती है लेकिन जब अपनों के द्वारा दुत्कार और घृणा मिलती है तो वृद्ध टूट जाता है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि डॉ. नेगी जी ने सांध्य-पथिक उपन्यास के माध्यम से वृद्धावस्था की समस्याओं का अत्यंत संवेदनशीलता से चित्रण किया है। जिन बच्चों का पालन पोषण तथा उनकी इच्छाओं को पूरा करते-करते अपना पूरा जीवन समर्पित करते हैं। वही बच्चे जब वृद्धों को उनके सहारे की आवश्यकता होती है तब उनको बेघर करते हैं, उनकी उपेक्षा करते हैं, अपमानित करके घर से बाहर निकलने को मजबूर करते हैं। सेवानिवृत्ति के कगार पर पहुँचे सोमबाबू की मानसिकता का चित्रण करते हुए आज के वृद्धों की स्थिति का यथार्थ वर्णन किया है। वृद्धाश्रम प्रताड़ित वृद्धों के लिए एक महत्त्वपूर्ण सहारा साबित होता है। उपन्यास में लेखक ने न केवल वृद्धों की समस्याओं का चित्रण किया है बल्कि उनकी समस्याओं के समाधान का भी प्रयत्न किया है। सोमबाबू का वृद्धजन के प्रति दृष्टिकोण बदल जाता है। अगर युवा पीढ़ी अपना दृष्टिकोण बदलती है तो बुजुर्ग सच्चे मार्गदर्शक तथा हितैषी साबित हो सकता है। वृद्धजन के लिए युवा शक्ति उनके अधूरे सपनों को पूरा करने का माध्यम हो सकते है। सोमबाबू वृद्धों के सम्मान की पहल करते हैं। लेखक का विश्वास हैं कि वृद्ध एवं युवापीढ़ी के आपसी सामंजस्य से प्रत्येक मुश्किल का सामना किया जा सकता है और एक प्रगतिशील सभ्य समाज की स्थापना की जा सकती है। भौतिकवादी दुनिया में जब युवा वर्ग दिग्भ्रमित हो रहा है, निराश हो रहा है ऐसे में वृद्धजन परेशानियों को दूर करने सहायक सिद्ध हो सकते हैं। प्रत्येक घर परिवार की ओर से वृद्धों के खोए हुए आत्मसम्मान को लौटाने का तथा उनपर विश्वास रखा जाए तो वृद्धों की अनेक समस्याएँ दूर हो सकती है।

डॉ. सूरजसिंह नेगी का जन्म उत्तराखंड स्थित अल्मोड़ा जिले में 17 दिसंबर, 1967 को हुआ। सन् 1989 में, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबंध विभाग से प्रथम श्रेणी में एम. कॉम., सन 1991 में प्रथम श्रेणी में एम. फिल. एवं सन् 1994 में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। विद्यालयी शिक्षा के दौरान ही उनको साहित्यिक रुचि उत्पन्न हुई। परिणामस्वरूप उन्होंने उपन्यास और कहानी संग्रह लिखे। सन् 2016 में 'पापा फिर कब आओगे' (कहानी संग्रह), सन् 2016 में 'रिश्तों की आँच', सन 2018 में 'वसीयत',सन 2019 में 'नियति चक्र ', सन् 2020 में 'ये कैसा रिश्ता', सांध्य-पथिक (उपन्यास) सन 2023 आदि उपन्यास लिखे। वे राजस्थान प्रशासनिक सेवा अधिकारी (उपखंड) अधिकारी) के पद पर पिपलू जिला टोंक में कार्यरत थे। अब वे राजस्थान प्रशासनिक सेवा में सवाईमाधोपुर जिले के अतिरिक्त जिला कलेक्टर एवं अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट पद पर कार्यरत है। उनके सभी उपन्यासों के केंद्र में वृद्ध विमर्श है। व्यक्ति से परिवार बनता है और परिवार से समाज बनता है और इसी परिवार को संरचनात्मक रूप प्रदान करनेवाला व्यक्ति घर के बड़े बुजुर्ग ही हुआ करते हैं जिससे परिवार का निर्माण हुआ है। परिवार के बिना समाज की निरंतरता संभव नहीं है।

यश्लोक अहिल्यादेवी होळकर
विश्वविद्यालय, सोलापुर
सहायक प्राध्यापक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष,
काकासाहेब चव्हाण कॉलेज तलमावले
तहसिल-पाटण जिला-सतारा-415001 (महा.)

अंधा युग की गांधारी : एक समाज मनोवैज्ञानिक पात्र

– गौरव कुमार गुप्ता

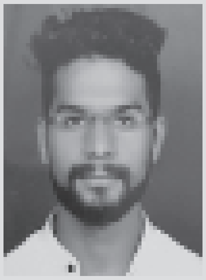

जन्म – 3 फरवरी 1994।
जन्मस्थान – भोपाल (म.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए.।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

मनुष्य जब आदिमानव नहीं रहा अर्थात् उसके अंतस में जब सामाजिकता का बीजारोपण हुआ तभी से उसके मस्तिष्क में आंतरिक परिवर्तन आए। इन्हीं परिवर्तनों के कारण मनुष्य वह न रहा जिसे किसी बात की चिन्ता न थी अपितु मनुष्य वह हो गया जिसे सामाजिक व्यवस्थाओं का दास कहा जा सकता है। जबसे इन सामाजिक व्यवस्थाओं का प्रचलन प्रारंभ हुआ तभी से मनुष्य में पारस्परिक या कहें कि एक अंधी दौड़ का परिचलन भी प्रारंभ हुआ। इस दौड़ से मनुष्य ने अपने जीवन में कई प्रकार की उन्नति की पर कई क्षेत्रों में बहुत पिछड़ गया। मनुष्य जब सामाजिक व्यवस्था का दास बनता है तब उसे अपने आंतरिक चेतना से विलगित होना पड़ता है या कभी-कभी चहुँ ओर की सामाजिक व्यवस्था उसे चेतनाशून्य कर देती है।

'अंधा युग' समस्या प्रधान नाटक तो है ही साथ ही उसके पात्रों में समाज मनोवैज्ञानिकता के विभिन्न लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। वस्तुतः समाज मनोविज्ञान विज्ञान की वह शाखा है जिसमें मानवीय व्यवहार व अनुभवों का अध्ययन किया जाता है। यह वही व्यवहार व अनुभव होते हैं जो मनुष्य में सामाजिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि वे व्यवहार जो सामाजिक परिस्थितियों से प्रदर्षित नहीं होते वे सामाजिक मनोविज्ञान के अंतर्गत नहीं आते।

जब किसी ढाँचे की रचना का आबंध बनता है तब उसके कुछ गुण तथा कुछ दोष होते हैं। समाज की विभिन्न संरचनाओं की कुछ विशेषताएँ होती हैं तो साथ ही समाज कुछ ढाँचागत समस्याओं का संवाहक भी होता है।

नारी जिसने एक तरफ सृष्टि के सृजन में महती भूमिका निभाई है, दूसरी तरफ उसी नारी ने मौन होकर सृष्टि के विध्वंस भी देखे हैं। मनुष्य ने स्वार्थवश जितने भी युद्ध रचे हैं, उस युद्ध को स्वयं नारी ने मौन रूप से पीड़ित होते हुए देखा है और उस समय अपने सारे दृष्टिकोण नारी ने प्रस्तुत किए हैं। महाभारत में सबसे अधिक पीड़ित नारी यदि कोई दिखाई देती है तो वह गांधारी है जिसने 18 दिवस के भीषण युद्ध में अपनी एक सौ सन्तानों को युद्ध क्षेत्र में प्राण त्यागते देखा है। धर्मवीर भारती द्वारा रचित गीतिनाट्य 'अंधा युग' युद्ध से पीड़ित नारी मन की मनोदशा का प्रत्यक्ष रूप से प्रमाण प्रस्तुत करता है। गांधारी जिसने अपने पुत्रों को युद्ध की बलि चढ़ते देखा उसका मन एक तरफ व्यथित होता है तो दूसरी तरफ प्रतिशोध के लिए लालायित भी। युद्ध में जिस वीरपुरुष महान कूटनीतिज्ञ कृष्ण की नीतियों के कारण गांधारी के पुत्र मरते हैं, उस कृष्ण को वो कहीं कोसती दिखाई देती हैं तो कहीं अपने ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन की विजय प्रार्थना करने वाले याचकों को अंतिम समय तक स्वर्ण मुद्राओं से विभूषित भी करती है। उसे अपने पुत्र युयुत्सु से पाण्डवों के पक्ष में लड़ने के कारण विलगाव भी करना पड़ता है। धर्मवीर भारती जी एक माँ के मन का मनोविज्ञान समझाने का प्रयास करते हुए गांधारी का संवाद लिखते हैं-

'इसमें संदेह है।
और किसी को मत हो
मुझको है।
'अर्पित कर दो मुझको मनोबुद्धि'
उसने कहा है यह
जिसने पितामाह के वाणों से
आहत हो अपनी सारी ही
मनो बुद्धि खो दी थी?
उसने कहा है यह,
जिसने मर्यादा को तोड़ा है बार-बार?' (धर्मवीर भारती, अंधा युग, पृ. 11)

यह सत्य है कि माँ का हृदय अपने पुत्र-पुत्रियों के लिए ममत्व से भरा होता है। यह ममत्व तब तो और अधिक होगा जब उसके पुत्रों का मरण युद्ध क्षेत्र में हो रहा हो। गांधारी के पुत्रों का वध कुरुक्षेत्र में हो रहा था। धर्मवीर भारती जी की गांधारी ने विलाप की अवस्था में भी प्रश्न और न्याय की भाषा का प्रयोग किया है। सत्य को किसी बड़े पक्ष पर बैठा आदमी थोथा नहीं कर सकता इसलिए गांधारी प्रश्न करती है कि जो पार्थ (अर्जुन) से अपनी मनोदशा को सौंप देने का आग्रह कर रहा हो वह भीष्म के प्रहारों से अपना आपा कैसे खो सकता है? एक अन्य संवाद में धृतराष्ट्र को संबोधित करते हुए गांधारी अपने युग की (जो कि वर्तमान की स्थिति में भी न्यायसंगत संवाद होगा) नीति मर्यादा की क्षति होते हुए देख, जानबूझ कर आँखों पर पट्टी बाँधने को न्याय संगत बताती दिखती है। धर्म-अधर्म की बात करते हुए गांधारी विदुर को संबोधित करते हुए कहती है-

'मैंने कहा था दुर्योधन से
धर्म जिधर होगा ओ मूर्ख!
उधर जय होगी!
धर्म किसी ओर नहीं था।
लेकिन!/ सब ही थे अंधी प्रवृत्तियों से परिचालित।' (वही पृ. 13)

युद्ध में किसी की विजय नहीं होती, हर तरफ विध्वंस होता है। यही एक पीड़ित माँ के रूप में गांधारी विदुर से कह रही है। वो एक ओर यह मृत्यु का वीभत्स नृत्य देख रही है तो दूसरी ओर उसे अभी भी आशा है कि रण में उसके पुत्र दुर्योधन की विजय हो। वह किसी आते-जाते याचक की झूठी जयकार से प्रफुल्लित होकर दुर्योधन के प्रति निश्चित हो याचक को परितोषक देने लगती है। वो आशा बाँध कर अपने पुत्रों की विजय चाहती है लेकिन उसका ही पुत्र युयुत्सु जो पांडवों की ओर से लड़ता है और विजय प्राप्त करता है उससे किसी अपरिचित सा व्यवहार करने लगती है जिससे उसका पुत्र युयुत्सु आहत हो जाता है और स्वयं को अपराधी मान लेता है।

पुत्रों की मृत्यु से गांधारी का मन बहुत ही खिन्न हो जाता है। एक दृष्टि में उसे विक्षिप्त अवस्था कह सकते हैं क्योंकि वीभत्स रूप से धृष्टद्युम्न का वध करने वाले अश्वत्थामा को भी वह दयालु आत्मा कहने लगती है और विदुर के कई बार मना करने पर भी संजय से पूरी वीभत्स कथा सुनाने का आग्रह करती है एवं संजय से यह भी आग्रह करती है कि वह उस वीर पुरुष अश्वत्थामा का अपनी दिव्य दृष्टि से दर्शन कराए। साथ में अश्वत्थामा की तुलना अपने पुत्रों से करते हुए कहती है-

'किन्तु वीर है
उसने वह किया है
जो मेरे सौ पुत्र नहीं कर पाये
द्रोण नहीं कर पाये!
भीष्म नहीं कर पाये!' (वही, पृ. 64)

नाटक के प्रारंभ में गांधारी जो नीति और धर्म की बात करती है वह अपने पुत्रों की मृत्यु के पश्चात् अधर्म को धर्म की श्रेणी में रखकर देखने लगती है। वह धृतराष्ट्र की मृत्यु का वृत्तांत बड़े चाव से सुनती है परंतु अपने पुत्र की मृत्यु नहीं चाहती है। वह अपने वरदान का उपयोग कर अश्वत्थामा को वज्र के जैसा कठोर बना देती है जिससे वह कृष्ण का सामना कर सके।

माता का हृदय चाहे किसी अवस्था में हो वह अपनी संतान के प्रति सदैव ममत्व भरा होता है, चाहे जितनी भी प्रतिकूल परिस्थिति हो वह अपने पुत्र-पुत्रियों पर प्राण भी न्योछावर कर सकती है। गांधारी अपने मृत ज्येष्ठ पुत्र से मिलने हेतु अर्जुन एवं अश्वत्थामा के मध्य हो रहे युद्ध को उपेक्षित करते हुए दुर्योधन के मृत शरीर के पास जाने को लालायित रहती है। उसे अपने प्राणों की तनिक भी चिंता नहीं रहती वह कहती है -

'चक्र यदि कृष्ण का खण्ड-खण्ड मुझको
कर भी दे तो,
मैं तो अभी जाऊँगी वहाँ
जहाँ गहन मृत्युनिद्रा में सोया है दुर्योधन, चलते चलो संजय!'
(वही पृ. 77)

अपने प्रिय पुत्र के शव कंकाल के समीप जाकर गांधारी का विलाप बहुत तीक्ष्ण हो जाता है। वह इतनी व्याकुल व क्रोधित हो जाती है कि उसे अपने सत्कर्मों को एक श्राप में परिवर्तित करने में तनिक भी संशय नहीं होता है। वह अपनी तपस्या के सारे निचोड़ को फलित कर कृष्ण को श्रापित करने में बिल्कुल भी नहीं सोचती। वो कृष्ण को उलाहना देते हुए कहती है –

'तुमने किया है प्रभुता का दुरुपयोग
यदि मेरी सेवा में बल है
संचित तप में धर्म है
तो सुनो कृष्ण!
प्रभु हो या परात्पर हो कुछ भी हो
सारा तुम्हारा वंश
इसी तरह पागल कुत्तों की तरह
एक दूसरे को परस्पर फाड़ खायेगा
तुम खुद उनका विनाश करके कई वर्षों बाद
किसी घने जंगल में
साधारण व्याध के हाथों मारे जाओगे
प्रभु हो
पर मारे जाओगे पशुओं की तरह।' (वही पृ. 81)

कृष्ण को श्रापित कर देने से उसकी मनोदशा में परिवर्तन नहीं होता अपितु कृष्ण के द्वारा गांधारी के श्राप को विनम्रता से स्वीकार कर लेने से उसका ममत्व पुन: जाग्रत हो जाता है। वह अपने आँसू नहीं रोक पाती एवं कृष्ण को संबोधित कर पश्चाताप प्रकट करती है। वह कहती है कि क्रोधाग्नि से जन्म लिए उस श्राप को कृष्ण अस्वीकार कर सकते थे और उनके अस्वीकार से कुछ नहीं बिगड़ता परंतु कृष्ण के स्वीकार से वह मूर्छित सी हो जाती है। अंतिम संवाद में वह विदुर से पश्चाताप रूपी वचन कहती है –

'मैंने क्या किया विदुर?
मैंने क्या किया?' (वही पृ. 83)

अंधा युग नाटक में युद्ध पीड़ित स्त्री की मनोदशा का सटीक वर्णन धर्मवीर भारती जी ने किया है। किसी माता से सामान्य घटना में कोई पुत्र विलग हो जाए तब भी वह व्यथित एवं व्याकुल हो जाती है और इस नाटक में गांधारी के एक सौ पुत्रों का वध हो जाता है तो वह अपनी मनोदशा इस प्रकार प्रस्तुत करती है कि कभी वह असहाय हो संजय से युद्ध का वर्णन सुनती है तो कभी दुर्योधन की झूठी जयकार सुन प्रफुल्लित होती है, कभी वह अपनी वधुओं के युवावस्था में ही विधवा होने का अर्धविलाप करती है तो साथ ही वह रानी होने का मान भी रखती है। वह अपने विरोधी पुत्र युयुत्सु को हेय दृष्टि से संबोधित कर उसका उत्साह तोड़ना भलीभाँति जानती है। वह अश्वत्थामा के छलरूपी युद्ध को भी सही ठहराती है तथा उसकी रक्षा हेतु उसे वज्र का बना देती है। गांधारी एक मृत पुत्र के समीप पहुँचने हेतु अपने प्राण भी दाँव पर लगाने से नहीं हिचकती। अंत में कृष्ण को भावावेश में आकर श्रापित कर खुद के इस कृत्य पर दुखी भी होती है। डॉ. सुरेश चंद्र गुप्त गांधारी के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए कहते हैं, 'पति का अनुकरण कर दृष्टि-सुख से वंचित रहने पर भी वे नारी मर्यादा संबंधी किन्ही रूढ़ धारणाओं से बँधकर नहीं रह गई हैं, अपितु उन्होंने अपने मन्तव्यों को धृतराष्ट्र की तुलना में कहीं अधिक आवेश के साथ व्यक्त किया है। यद्यपि उन्होंने वस्तुस्थिति का सर्वत्र विवेक और धैर्यपूर्व विश्लेषण नहीं किया, तथापि उनकी स्पष्टवादिता और उग्र प्रतिक्रियाओं में उनका तेज भली-भाँति व्यक्त हुआ है।'

(हिंदी के श्रेष्ठ काव्यों का मूल्यांकन, सं. यश गुलाटी, पृ. 660)

लेखक धर्मवीर भारती ने एक बड़े राज्य की रानी जिसकी संतानें युद्ध में मारी जाती है, की हर अगले दृश्य में बदलती मनोदशा का सटीक वर्णन किया है। वे इसमें सफल सिद्ध होते हुए दिखाई देते हैं।

हिन्दी विभाग
अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय
मुंगलिया कोट, सूखी सेवनिया, विदिशा रोड
भोपाल - 462038 (म.प्र.)
मो . 9074166883

श्री रामचरित मानस : तुलसी की दृष्टि और श्री राम का समन्वय

– जया सिंह

जन्म – सितंबर
शिक्षा – एम.ए., बी.ए., बी.एड., एम.फिल., पीएच.डी.।
रचनाएँ – दो पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – श्री रामकिंकर भारत भूषण सम्मान।

श्री रामचरितमानस में स्वाभिमान, स्वतंत्रता और स्वावलंबन तीनों हैं। जीवन में राम की अधीनता स्वीकारे बिना स्वाधीनता संभव नहीं है। अपने अभिमान को भगवान के चरणों में अर्पण किए बिना स्वाभिमान संभव नहीं है और स्वावलंबन भी भगवान का अवलंबन ही सिद्ध होता है।

इस संदर्भ में परम पूज्य पंडित श्री रामकिंकर उपाध्याय जी ने कहा था कि गोस्वामी जी केवल इतिहासकार ही नहीं हैं, उन्होंने श्रीराम को आयु आदि का विस्तार न कर अनादि और सार्वकालिक रूप में उनके गुण, स्वभाव और शिव के अमृत कलश को प्रेमाभक्ति के अनुपान में देकर वर्तमान को अमृतमय कर देने वाले कुशल वैद्य का कार्य किया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्री रामचरितमानस के माध्यम से सत्यं, शिवं और सुंदरम् की प्राण–प्रतिष्ठा की है। वस्तुत: इसे इसमें भगवान की कृपालुता, करुणा, दयालुता और माधुर्य को केंद्र बनाया, जो मनुष्य को हर पल चाहिए और जो 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा जयोतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतंगमय' का स्वरूप है और साधक का परम अभीष्ट है। तुलसी साहित्य केवल भावुक भक्तों का ही पोषण नहीं करता है, अपितु उसमें विचारोत्तेजक तत्व भी प्रचुर मात्रा में है। रामनाम का रसायन ऐसा अतुल्य सिद्ध रसायन है कि जो इसका सेवन करता है वह स्वयंसिद्ध हो जाता है। राम–रसायन ही वस्तुत: देश, व्यक्ति और समाज को स्वावलंबन दे सकता है, वही अमृत–तत्व है, जो कभी मरता नहीं। श्री राम का औदार्य, श्री राम की दृष्टि, श्री राम के कार्य, श्री राम का संकोच, श्री राम के जीवन का हर क्षण, हर सूत्र जीवन का महामंत्र है। भगवान राम ने समाज को हृदय–दृष्टि से देखा, किसी के दोषों को न देखकर उनके गुणों को देखना और उनका उपयोग करना ही रामत्व है। राम की दृष्टि विराट है, रामराज्य में व्यवस्था परिवर्तन नहीं अपितु हृदय–परिवर्तन है। प्रस्तुत शोध–पत्र में राम के विभिन्न स्वरूपों के साथ उनकी जीवन–शैली को केंद्र में रखकर अपनी बात कही गई है।

विश्लेषण :– श्री रामचरितमानस जहाँ राम के चरित की गाथा कही गई है इसमें कुछ भी अनौचित्य, त्याज्य अप्रिय नहीं है, वह सभी धर्मों और प्राणियों के हितकर समर्थक ग्रंथ है। उसमें न कोई विवाद है न कोई परहेज। तुलसीदास जी बिना धर्म, जाति का नाम लिए कहते हैं– धन्य है उस पुत्र का जन्म जिसके सुंदर चरित्र की चर्चा सुनकर पिता को आनंद आता हो–
'धन्य जनम जगतीतल तासू, पितहिं प्रमोदु चरित सुनु जासू।'

यही है श्रीराम का चरित्र और मानस की सार्वकालिक व्यापकता और प्रासंगिकता।
'महाराज अब कीजिए कोई, सब कर धरम सहित हित होई।'

प्रभु श्रीराम ने जब भरत को अपनी पादुकाएँ दी, भरत को लगा ये पादुकाएँ नहीं साक्षात् श्रीराम और सीता हैं। मानस जड़ में भी चैतन्य के दर्शन कराता है। यदि इसमें किसी को जड़ता दिखे तो यही कहेंगे–'मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना, राम रूप देखहिं किमि दीना।' अर्थात् जिसके मन का दर्पण मलिन है और राम को देखने वाले नेत्रों का अभाव है, तो राम उन्हें कैसे दिखाई देंगे। **(स. पत्र दै. जागरण सप्तरंग, 31 जनवरी 2023)**

मानस में राम तो अपने विरोधी रावण का भी हित चाहते हैं। अंगद को लंका भेजते समय प्रभु कहते हैं–'अंगद! रावण से संवाद करते समय ध्यान रखना कि हमारा कार्य हो जाए और रावण का अहित न हो–
'काज हमार तासु हित होई, रिपु सन करेहु बात कही सोई।'

जिन राम ने अहल्या को न देखकर उनका उद्धार किया, जिन्होंने भक्तिमति शबरी को माँ के बराबर सम्मान दिया और गिद्धराज जटायु को पिता तुल्य मानकर उसका संस्कार किया, जो ऋषि-मुनियों को आश्वस्त करते हैं कि राक्षसों से मुक्त कर दूँगा। पूरे वनवास-काल में जिन्होंने सबको सुख और आनंद देने का महत् कार्य किया। वेद स्वयं राम की स्तुति करते हैं, शंकर जी के जो आराध्य हैं, जिनकी करुणा, कृपा और भक्तवत्सलता की कहानियों से पुराण भरे पड़े हैं। हमें वाणी का उपयोग उनके गुणकान के लिए, नेत्रों का उपयोग उनके दर्शन के लिए, कानों का उपयोग उनकी यशगाथा सुनने के लिए, पैरों का उपयोग उनके तीर्थों में जाने के लिए, हाथों से पूजा और चरण स्पर्श के लिए करना चाहिए।

राम सबके प्रिय और हितकारी हैं, दुख, सुख, प्रशंसा और अपशब्द सुनकर भी एकरस रहते हैं। उन्होंने राम राज्याभिषेक में केवट को आमंत्रित कर सम्मान दिया, कहा तुम मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हो। श्रीराम ने विजय के पश्चात् सत्ता का उपभोग नहीं, केवल कृपा की। राम ने ही नहीं अपितु उनके किसी भक्त ने सत्ता का लोभ और भोग नहीं किया। श्री रामरक्षा स्रोत में कौशिक जी ने लिखा कि राम ही मेरे माता, पिता, सखा, स्वामी हैं। मैं उनके सिवा किसी को नहीं जानता। तात्पर्य मैं सबमें राम को ही देखता हूँ-

'सियाराम मय सब जग जानि, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी'।

जो राम गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी सबके द्वारा सेवित और पूजित हैं, उन्हें मानना और पूजना ही हमारा स्वार्थ है, वही हमारा परमार्थ है।

भगवान श्रीराम की नीति, प्रीति और परमार्थ प्राणीमात्र के कल्याण के लिए ही था इसलिए उनके कार्य भी उनकी भाँति पूर्ण है। सभी को जोड़ना ही उनका प्रबंधन है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीराम के गूढ़तम चरित्र-चित्र को उकेरते हुए चित्रित किया- **'श्रोता वक्ता ज्ञान निधि, कथा राम कै गूढ़। किमि समझौं मैं मरमति, कलिमल ग्रसित विमूढ़'**। श्रोता, वक्ता, ज्ञाननिधि होते हैं, पर मैं मूढ़मति तुलसीदास उसे कैसे समझ सकूँ, क्योंकि रामजी के गुण तो गूढ़ हैं, साधारण व्यक्ति समझ ही नहीं सकता। इसी कारण संसार-कूप में गिरकर अनंत दुख को प्राप्त होते हैं। इसी बात को शिव जी ने भगवती उमा को कथा सुनाते हुए कहा-

'उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह विमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति।।'

तुलसीदास जी ने स्वयं को मूढ़ कहा, महानायक श्री रामचंद्र का वह शीलगुण है, जिसके कारण रामराज्य बना। **(स. पत्र दै. जा. अंतस और अध्यात्म, 20 दिसंबर 2020)**

परशुराम जी के संदर्भ में प्रसंग आता है, जब जनक जी की राजसभा में श्रीराम और लक्ष्मण के समक्ष जब तक अपने गुणों का स्वयं वर्णन परशुराम जी करते रहे, तब तक वे श्रीराम के गुणों को पहचान नहीं सके। ज्यों ही परशुराम जी का ध्यान इस बात की ओर गया कि श्रीराम के प्रति मेरे द्वारा आक्रोशित होने पर भी ये राजकुमार केवल हमारे गुणों का बखान कर रहा है, तब जरूर वे कोई विशेष हैं, वे राम के रामत्व को समझते हैं और-

'जाना राम प्रभाव तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन प्रीति न हृदय समात।।'

भगवान राम का स्वभाव ही उनका प्रभाव है, जिसमें वे सदैव एकरस, व्यापक और अखण्ड रहते हैं। जब राम और परशुराम दोनों का केंद्र एक हो गया, तब सभा में जोश की जगह आनंद की वर्षा हुई। भगवान श्रीराम जी के स्वभाव और प्रभाव की गूढ़ता को समझकर पुनः तपस्या में लीन हो जाते हैं।

वस्तुतः समुद्र में रत्न छिपे होते हैं, आकाश में तारे दिखाई देते हैं, दोनों का आश्रय एकमात्र, अनंत होता है चाहे वह आकाश हो या समुद्र। वे अनंत राम हैं, जहाँ लक्ष्मण जी और भरत जी के प्रेम को आश्रय प्राप्त है। सबमें राम हैं, यह भरत का चिंतन है। राम में ही सब हैं, यह लक्ष्मण जी का दर्शन है। दोनों का सामंजस्य ही रामत्व है। श्रीराम के प्रति लक्ष्मण जी के प्रेम का वर्णन हो सकता है, पर श्री भरत और श्रीराम के प्रेम का वर्णन अनिर्वचनीय है। तभी गोस्वामी जी ने लिखा-

'अगम सनेह भरत रघुबर को,
जह न जाई मन बिधि हरि हर को।'

श्रीराम का चिंतन उनका दर्शन अत्यंत विराट है। संसार में गुण देखना राम की वृत्ति को जन्म देता है। कृतिकार यदि संसार को विमूढ़ बताता, तो उसकी लेखनी से रामचरितमानस लिखना संभव नहीं होता-

'गुण तुम्हार समुझइ निज दोसा।
जेंहि सब भाँति तुम्हार भरोसा।।'

दोष तब दोष होता है, जब वह दूसरों में देखा जाता है। यदि दूसरों में दोष की जगह अपने दोष दिखें और सारे गुण भगवान में दिखें तो संसार के गुण-दोष का तो चिंतन होगा ही नहीं। अर्थात् संसार में गुण देखना राग की विकृति को जन्म देता है और संसार में दोष देखना द्वैत की ज्वाला से जला देता है। इसलिए जितने भी संत हुए वे संसार का न गुण देखते हैं न दोष, वरन् भगवान के गुण देखते हैं और स्वयं का दोष अपने आप संसार से लोप हो जाएगा। यही राम के गुणों की गूढ़ता है।

गोस्वामी जी ने लिखा कि जब श्रीराम का जन्म हुआ, तो पंचांग के पाँचों अंग अर्थात् योग, लग्न, गृह, वार और तिथि सब अनुकूल रह गए। कोई प्रतिकूल प्रभाव देने वाला नहीं रहा। इसे तात्विक रूप से देखें कि सारी प्रतिकूलता तब आती है, जब कोई राम के प्रतिकूल होता है। राम जब स्वयं जन्म ले रहे हैं तो वे पाँचों अंग अपनी अनुकूलता के लिए अनुकूल हो गए। वस्तुत: राम ही सबके अभिन्न निमित्तीकरण मूल हैं। जब हम अपने मूल से जुड़े होते हैं तो संसार में जितनी भी प्रतिकूलताएँ हैं, वह सब अनुकूलता में परिवर्तित हो जाती है। उस मूल से हटते ही सारी प्रतिकूलताएँ टूट पड़ती हैं तभी रावण मोहमूल से जुड़ा था और हनुमान राममूल से जुड़े रहे। तुलसीदास जी ने लिखा-

'मोह मूल बहुमूल प्रद, त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान।।'

मोहमूल का अभिप्राय ज्ञान यानी जानना, अज्ञान यानी न जानना। मोह का अर्थ है जानते हुए भी न जानने जैसा व्यवहार करना। हनुमान जी के जीवन में जो ज्ञान है वह हृदयस्थ ज्ञान है, जबकि रावण का ज्ञान केवल पुस्तक कंठस्थ करने का ज्ञान था। प्रक्रिया पूजन से जब भाव में प्रवेश हो जाता है, तब धाता, ध्यान और ध्येय एकरूपता में आ जाते हैं। श्री रामचरितमानस में हर एक शब्द ऐसे उद्घाटित सत्य के रूप में परिलक्षित होते हैं। यदि हम जो गुण भूतकाल के लोगों में देखकर उनकी कई प्रकार से स्तुति करते हैं, वही गुण दर्शन वर्तमान में देखें तो भविष्य आनंदमय हो जाएगा। वस्तुत: रामनाम ही वह मूल है, जिसमें से सारा खगोल, भूगोल और प्रकृति का प्रादुर्भाव हुआ।
'बंदऊ राम नाम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।।'

मानस के दर्शन को देखें तो पाएँगे कि मूल से ही विस्तार होता है और अंत में वह पुन: मूल से ही जोड़ देता है। उसी सूक्ष्म पर विश्वास करना साधना का परम लक्ष्य है।

श्री रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने भाव-समाधि की स्थिति को, भगवान की लीलाओं को जिस रूप में जैसा देखा, वह उन्होंने संसार के स्वान्त:सुखाय और लोक-मंगल की भावना के लिए अपने मन को प्रबोधित करते हुए इस दिव्य ग्रंथ श्री रामचरितमानस की रचना की। चाहे भौतिक विज्ञान हो, अध्यात्म या जीवन का कोई भी क्षेत्र हो उसे जब तक पूरी तरह ध्यानपूर्वक मन, बुद्धि व चित्त लगाकर न पढ़ा जाए न सुना जाए तो या तो हम उस विषय को समझ सकेंगे और न ही उसका लाभ ले सकेंगे। श्री रामचरितमानस नाना पुराणों, शास्त्रों और वेदों का वह रस-तत्व है, जिसमें बीज से लेकर फल के रस तक की प्रक्रिया का स्पष्ट उल्लेख है।

श्री रामचरित मानस के कर्मयोग पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है भगवान राम के साथ भी सीता जी का विवाह संपन्न हो गया। दशरथ जी ने अपने चारों पुत्रों को सुंदर चार पुत्र-वधुओं के साथ देखा। तुलसीदास जी लिखते हैं कि आज महाराज दशरथ को ऐसा अनंत सुख मिल रहा है, जैसे उन्होंने पुरुषार्थ के चारों पुत्रों को उनकी क्रियाओं के साथ प्राप्त कर लिया हो-

'मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहार।
जनु पाये महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चार।।'

श्रीराम पुरुषार्थ के मोक्ष फल हैं और उनकी पत्नी सीता मोक्ष की क्रिया भक्ति है। श्री भरत पुरुषार्थ के धर्म की श्रद्धा क्रिया हैं। लक्ष्मण जी पुरुषार्थ के काम फल हैं और उनकी पत्नी उर्मिला काम की क्रिया-योग हैं। शत्रुघ्न जी पुरुषार्थ के अर्थ फल हैं और उनकी पत्नी श्रुतकीर्ति अर्थ की क्रिया दान है। वस्तुत: मोक्ष का सुख भक्ति के बिना संभव नहीं है और भक्ति के लिए शरीर की आवश्यकता होती है-

'जथा मोक्ष सुख सुनु खगराई,
रहि न सकइ हरि भगति बिहाई।।'

इसलिए कागभुसुण्डि जी ने कहा कि मेरा काक शरीर से ममता का कारण मात्र यह है कि मैंने इस शरीर में भक्ति की है। भरत जी की पत्नी श्रद्धा का तात्पर्य अर्थात् श्रद्धा के बिना धर्म अधूरा है। '**श्रद्धा बिना धर्म नहिं कोई**'। काम की क्रिया भोग नहीं है, अपितु काम की क्रिया योग है, ईश्वर से योग ही योग है। संसार काम की क्रिया भोग मानता है, जबकि काम की क्रिया अध्यात्म की दृष्टि से योग है। अर्थ कि क्रिया संसार लोभ मानता है, पर अर्थ की क्रिया लोभ न होकर दान है, दान के बगैर अर्थ अधूरा है-

'प्रगट चारि फल धर्म के कलि महँ एक प्रधान।
ऐन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्याण।।'

वस्तुत: हमारे जीवन में यदि पुरुषार्थ के फल अपनी उचित क्रिया के साथ न हो तो उनका योग संभव नहीं होता। जीवन संतुलित और युक्तियुक्त तभी हो सकता है, जब हम अपने जीवन में अपने हर कर्म को उसके उचित माध्यम से प्राप्त करें। **(स. पत्र दैनिक जागरण सप्तरंग, 15 नवंबर 2022)**

रामकाव्य की विशेषताएँ ही थीं, जिनमें राम के स्वरूप की चर्चा करते हुए हिंदी कवियों ने श्रीराम को विष्णु का अवतार और ब्रह्मा का स्वरूप माना है, जो शील और सौंदर्य में पुंज हैं, धर्म और संतों की रक्षा के लिए उन्होंने मनुष्य रूप में अवतार लिया और दुष्ट एवं राक्षसों का संहार किया-

'विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार।।'

मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में श्रीराम का चरित्र आदर्श प्रधान है। ज्ञान और कर्म से श्रेष्ठ भक्ति को माना गया कि भक्ति के द्वारा जीव का लोक एवं परलोक दोनों सुधर जाते हैं।

तुलसीदास जी ने लिखा-परमात्मा स्वरूप राम संसार के प्रत्येक मानव एवं जीव-जंतु के हृदय में स्थित होकर शोभायमान हैं- 'सीय राम मय सब जग जानि, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी'। इसलिए हम सभी को संसार के समस्त प्राणियों पर दया-दृष्टि रखनी चाहिए। 'अखिल बिस्व यह मोर उपाया, सब पर मोहि बराबर दाया'। दया-दृष्टि के साथ ही हम अपनी सामर्थ्य अनुसार पूरे जड़-चेतन, प्राणियों की सेवा सुरक्षा भी करें, यही परम धर्म है। 'परहित सरस धम नहिं भाई' परमात्मा स्वरूप राम द्वारा निर्मित मानव एवं जीव-जंतु की अपनी क्षमतानुसार सेवा-सुरक्षा करना ही धर्म है। **(स. पत्र नई दुनिया, 11 नवंबर 2022)**

श्री रामचरितमानस अध्यात्म साधना का सरल साधन है। मानस एक ऐसा वागडार है, जहाँ से समस्त भारतीय साधना और ज्ञान-परंपरा प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है। दूसरी ओर इसमें देशकाल से परेशान, दु:खी और टूटे हुए मनों को सहारा एवं संदेश देने की अद्भुत सामर्थ्य है। तुलसीदास की सार्वकालिक प्रासंगिकता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है? रामचरित मानस की सार्थकता भी इसी से व्यक्त है।

श्री रामचरितमानस जीवन का वह गूढ़तम सत्य है, जो हमारे जीवन के इर्द-गिर्द घूमता रहता है, किंतु सांसारिक दृष्टि और बुद्धि से हम न उसे देख पाते हैं, न समझ पाते हैं, परिणामस्वरूप जीवन को संघर्ष और क्लिष्टता से परिपूर्ण मानने लगते हैं। जो कुछ हुआ ईश्वर ने दिया, जो हो रहा है वे ईश्वर कर रहे हैं और जो होगा वह ईश्वर करेंगे। यह त्रिकाल सत्य मानने वालों की भाषा, भाव एवं व्यवहार इतना उच्च कोटि का होगा कि उस व्यक्ति से देश, जाति की प्रगति तथा चिंतन से संसार शिक्षा लेगा। हनुमान जी जैसे बलशाली, लक्ष्मण जी जैसा भक्त, भरत जैसा धर्मसार, सुग्रीव, केवट, जाम्बवान ये सब वे नाम हैं, जिनका अवलंबन मात्र भी राम हैं।

'राम उठत, राम चलत, राम शाम-भोर हैं।
राम बुद्धि, राम चित्त, राम मन-विभोर हैं।
राम शब्द, राम अर्थ, राम ही परमार्थ हैं।
राम कर्म, राम भाग्य, राम ही पुरुषार्थ हैं।
राम भोग, राम त्याग, राम तत्व ज्ञान हैं।
राम भक्ति, राम प्रेम, राम ही विज्ञान हैं।
राम स्नेह, राम राग, राम ही अनुराग हैं।
राम कली, राम कुसुम, राम ही पराग हैं।
राम स्वर्ग, राम मोक्ष, राम परम साध्य हैं।
राम जीव, राम ब्रह्म, राम ही आराध्य हैं।'

प्रस्तुत शोध-पत्र में श्री रामचरितमानस के प्रमुख विषयों, जिनमें सेवक सेव्य भाव, स्वान्त: सुखाय, समन्वय, मर्यादा, आदर्श गरित रस-योजना, जीवन की अनेकरूपता, दार्शनिकता, प्रकृति एवं विविध रूपों को दृष्टिगोचर किया गया। साथ ही श्रीरामचरितमानस के विविध संदर्भों को रेखांकित किया गया है।

'बन राम रसायन की रसिका, रसना रसिकों की हुई सफला।
अवगाहन मानस में करके, जनमानस का मल सारा धुला।
बन पावन भाव की भूमि भला, हुआ भावुक भावुकता का भला।
कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।।'

विभागाध्यक्ष
कला एवं मानविकी विभाग,
द आई. सी. एफ. ए. आई. विश्वविद्यालय,
रायपुर कुम्हारी छत्तीसगढ़
मो.7000356538

इतिहास के पन्नों से आज के चलचित्र उकेरते माथुर और मोहन राकेश

– सुरभि नामदेव, धीरेंद्र शुक्ल

जन्म – 4 मार्च 1985।
जन्मस्थान – इटारसी (म.प्र.)।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
विशेष – ध्वनि ब्लॉगर पोस्ट डॉट कॉम।

लेखकीय ईमानदारी, स्पष्टवादिता, मासूमियत, भावुकता और संवेदनशीलता दोनों ही रचनाकारों के रचनासंसार के आभूषण हैं, ऐतिहासिक तथ्यों को नाट्य साहित्य का हिस्सा बनाकर दोनों ही इतिहास के पन्नों से आज के चलचित्र उकेरते दिखाई देते हैं।

जगदीशचंद्र माथुर और मोहन राकेश की ऐतिहासिक कृतियों के विकास और प्रवृत्तियों के तुलनात्मक विवेचन के संदर्भ में सबसे पहले उस साहित्यिक परिवेश और धरातल का ज्ञान आवश्यक है जिसमें हिंदी के इन दो महान साहित्यकारों के रचनात्मक अस्तित्व का उद्भव हुआ। माथुर और राकेश के साहित्यिक व्यक्तित्व का उद्भव, एक अल्प अंतराल से दो भिन्न परिस्थितियों और वातावरण में हुआ है। जगदीशचंद्र माथुर की रचनाओं का प्रारम्भ राष्ट्रीय और रोमानी वातावरण में हुआ है। उस समय का राष्ट्रीय वातावरण, नयी उमर की ओजस्विता और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के सुनहरे सपनों के उल्लास से भरा था। साहित्यिक-क्षेत्र में भी स्वच्छंदतावादी-छायावादी साहित्य की रंगीनी उत्कर्ष पर थी। इसी कारण माथुर की कृतियों पर छायावादी प्रवृत्तियों की गहरी छाप मिलती है-'जगदीशचंद्र माथुर के एकांकियों और संपूर्ण नाटकों में भावुकता, रोमान और कवित्व का जो झीना आवरण मिलता है, उसका मूल स्रोत छायावाद में ही निहित है।' **(गोविंद चातक : जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 13)**

मोहन राकेश की रचनाओं का प्रारम्भ कठोर यथार्थ के धरातल पर हुआ है। स्वातंत्र्य आंदोलन के समय में आजादी के जिन सुनहले सपनों को लोगों ने अपने मन में बिठाया था, उसका यथार्थ नये जीवन का प्रभात तो लाया, लेकिन उसका तात्कालिक स्पर्श कटु, कठोर और हादसों से भरा था। राकेश हिंदी के स्वातंत्र्योत्तर नयी पीढ़ी के साहित्यकारों में सबसे प्रबुद्ध और मुखर रचनाकार हुए। वर्तमान यथार्थ से समय के रंग में कुछ नया कर दिखाने की व्याकुलता मोहन राकेश में थी। इस विषय में राकेश ने स्वयं स्पष्ट किया है-'हम लोगों में एक नवीन अकुलाहट थी, हम एक ऐसी तीव्र आकांक्षा लिए हुए थे, और चाहते थे कि हम अपने समय के रंग को पकड़ पाये।' **(मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, पृ. 162)**

यहाँ यह स्पष्ट है कि जगदीशचंद्र माथुर और मोहन राकेश की रचनाओं का जन्म दो भिन्न साहित्यिक युग और परिवेश में होता है। ऐसे में उनकी एतिहासिक कृतियों के तुलनात्मक विवेचन से प्रस्तुत आलेख में भिन्न परिस्थितियों में जन्मे रचनाकारों के रचना संसार का सामाजिक अवदान स्पष्ट किया गया है।

रचनाकारों के कृतित्व का उद्भव और विकास :- दोनों ही रचनाकारों की प्रारम्भिक पारिवारिक परिस्थितियों ने दोनों में ही भिन्न-भिन्न संस्कार उत्पन्न किए। जगदीशचंद्र माथुर के रचनात्मक व्यक्तित्व में गाँव की मिट्टी की गंध और उसका स्पर्श है, उसमें लोक जीवन स्पंदित है। सौंदर्य, माथुर की साधना है। प्रकृति उनकी कल्पना का स्रोत है। उनका पुरुषार्थ, उन्हें ऐसी उर्वरा भूमि प्रदान करता है, जहाँ से उन्हें सौंदर्य, सुख और आनंद के सुनहरे स्वप्न दिखाई देते हैं। जीवन के संत्रासपूर्ण कठोर सत्य को उन्हें विवशतापूर्वक कभी झेलना नहीं पड़ा।

इसके विपरीत शहरी जीवन की अभावग्रस्त त्रासद पारिवारिक विसंगतियों के बीच से मोहन राकेश का उद्भव हुआ। उन विसंगतियों और संघर्षों का उनके बालक मन पर भी प्रभाव पड़ा। इसके साथ ही देश-विभाजन के अभिशाप को भी, परिवार

के साथ उन्होंने देखा। गृहस्थी का बोझ हमेशा कठिन प्रश्न बनकर उनके अस्थिर जीवन पर सवार रहा। बेचारगी के आलम में राकेश को बहुत भटकना पड़ा। इन सबके बावजूद अपने दाम्पत्य जीवन और व्यक्तिगत जीवन की घोर विडम्बना का भी राकेश को जबर्दस्त मुकाबला करना पड़ा। जीवन की इन परिस्थितियों में जिन मानसिक संस्कारों को कोई आत्मसात कर सकता है, वही राकेश के साथ हुआ। उन्होंने कठोर यथार्थ को देखा, अनुभव किया और झेला भी जीवन की परिस्थितियों में ही इन्होंने प्रयोगशील प्रवृत्तियों को अपनाया। यही सब राकेश के सृजनशील साहित्य का सम्बल बना। उनका सृजन वैज्ञानिक युग का कठोर जीवन के, चाहे वह इतिहास के माध्यम से प्रस्तुत हो अथवा सीधे सामाजिक परिवेश से नि:सृत हो।

प्रारंभिक स्तर पर, माथुर और राकेश की रचनाएँ कविता-लेखन से ही शुरू होती है, बाद में माथुर को एकांकी नाटकों से विशेष प्रेरणा मिलती है और उनके रचनात्मक कर्म का पूर्णोत्कर्ष रंग-कौशल और नाट्य-कृतियों में होता है। मोहन राकेश कथा-साहित्य की ओर मुड़ते हैं और नयी पीढ़ी के कथाकारों के लिए सशक्त भूमिका अदा करते हैं। उनका सृजन धीरे-धीरे व्यापक होने लगता है। एकांकी, निबंध आदि विधाओं के सृजन में वे समान रूप से सक्रिय हो जाते हैं लेकिन राकेश के भी सृजनशील व्यक्तित्व का चरमोत्कर्ष हिंदी-रंगमंच और रंगकर्म में ही अंतत: होता है। राकेश, हिंदी साहित्य की सम्पूर्ण विधाओं के सृजन-क्षेत्र में, स्वातंत्र्योत्तर नयी पीढ़ी के रचनाकारों में अग्रणी रहे। माथुर में सृजन-क्षेत्र में, अपने जिस मौलिक रूप का उद्घोष किया, उसी का वह निर्वाह अंत तक करते रहे।

मोहन राकेश का साहित्य-सृजन विस्तृत और व्यापक है। जगदीशचंद्र माथुर का साहित्य सृजन उनकी तुलना में बहुत सीमित है। राकेश ने हिंदी गद्य की सम्पूर्ण विधाओं में व्यापक पैमाने पर खूब लिखा, यहाँ तक कि उन्होंने पर्याप्त मात्रा में अन्य भाषाओं की कृतियों का अनुवाद भी किया। साथ ही गद्य-क्षेत्र में कुछ विधाओं का सूत्रपात भी किया। उनका विशाल साहित्य भंडार दर्शनीय है। माथुर ने केवल एकांकी और नाट्य साहित्य के क्षेत्र में गहराई से प्रवेश किया, किंतु कृतियों की संख्या अल्प ही रही। इसके अतिरिक्ति माथुर के कुछ फुटकर ललित निबंध भी हैं। साहित्य सृजन की दृष्टि से मोहन राकेश के साहित्य कोश की तुलना में माथुर बहुत पीछे हैं।

जगदीशचंद्र माथुर और मोहन राकेश की स्थायी और सार्वजनीन उपलब्धियों का क्षेत्र नाटक और रंगमंच ही रहा। अपराजेय अमृत नाट्य-कृतियों के रूप में माथुर और राकेश के तीन-तीन नाटक हैं। 'कोणार्क', 'शारदीया' और 'पहला राजा' माथुर की अमर नाट्योपलब्धियाँ हैं। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' और 'आधे-अधूरे' मोहन राकेश की अमर कृतियाँ हैं। इस प्रकार यशोपलब्धि के क्षेत्र में दोनों ही रचनाकार महानता और सफलता की एक समान ऊँचाई पर प्रतिष्ठित हैं। हिंदी-रंगमंच और नाटक के क्षेत्र में, जगदीशचंद्र माथुर के नाटकों से हिंदी रंग-आंदोलन की शुरुआत होती है-'जगदीशचंद्र माथुर के नाटक, हिंदी नाटक की सर्जनात्मकता और रंगमंचीय सार्थकता की ओर दुहरी यात्रा को कुछ कदम बढ़ाने का काम करते हैं, और नाट्य भाषा को भी बोल-चाल के समीप आने के साथ-साथ काव्यात्मक गहराई देने की कोशिश करते हैं।' **(नेमिचंद्र जैन : आधुनिक हिंदी नाटक पृ. 123)**

मोहन राकेश का पहला नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' हिंदी रंग-द्वार का एक मानक बना, जहाँ से हिंदी रंग-कौशल प्रौढ़ता की ओर अग्रसर होता है। राकेश का अंतिम नाटक 'आधे-अधूरे' लगभग दस वर्ष के अंतराल से ही हिंदी-रंगमंचीय कौशल की प्रौढ़ता को चरितार्थ करने लगता है-'आधे अधूरे न केवल हिंदी भाषी दर्शक समुदाय में, बल्कि अनूदित होकर अन्य अनेक क्षेत्रों में भी लोकप्रिय हुआ। उससे आधुनिक भारतीय नाटक-साहित्य में हिंदी-नाटक को प्रतिष्ठित और महत्त्वपूर्ण स्थान मिला।' **(नेमिचंद जैन : आधुनिक हिंदी नाटक पृ. 125)**

रचनाकार के रूप में राकेश की दृष्टि मध्यमवर्गीय शहरी जीवन की विसंगतियों पर विशेष केन्द्रित रही है। माथुर की दृष्टि में व्यवस्था के सामंजस्य में लोक जीवन की ललक विशेष है। कृतियों के क्रमिक विकास के परिप्रेक्ष्य में माथुर और राकेश दो भिन्न परिवेश में खड़े दिखाई देते हैं जहाँ दोनों, दो भिन्न स्रोत से ऊर्जा ग्रहण करते हैं। संस्कारों और प्रवृत्तियों की भिन्नता भी किसी अहम राष्ट्रीय बुनियादी समस्या के तहत दोनों रचनाकारों को उत्कर्ष का एक धरातल प्रदान करती है।

जगदीशचंद्र माथुर की एतिहासिक कृतियाँ :- माथुर के एकांकियों में 'भोर का तारा', 'कलिंग विजय' और 'विजय की बेला' ऐतिहासिक हैं, शेष एकांकी सामाजिक कथ्य से सम्बंधित हैं। नाट्य शिल्प की दृष्टि से उनके प्रथम दो एकांकी संग्रह अलग-अलग स्वरूप-संस्कार प्रस्तुत करते हैं। पहला एकांकी-संग्रह, प्रसाद-परम्परा के नाट्य और भाषा-शिल्प को उजागर करता है। इनमें 'भोर का तारा' और 'कलिंग विजय' एकांकी में रूमानी भाव प्रवणता और संस्कृतनिष्ठ भाषा का आग्रह है। इसके अतिरिक्त पहले एकांकी-संग्रह के एकांकियों में उत्तेजनात्मक संवेदनशील शैली का आवेश दिखाई देता है... 'यह आवेश ही उनके एकांकियों को कवित्वमय रंगीनी और इंद्रधनुषी आभा में देता है। इससे पात्र और परिस्थिति, दोनों चमत्कृत हो उठती हैं और नाटक का शरीर और आत्मा एक विशिष्ट अनुभूति का अंग बनकर जन्म लेते हैं।' **(गोविंद चातक : नाटककार जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 21)**

'माथुर की एकांकियों में सामाजिक विद्रूपता के अनेक चित्र हैं। उनकी साहित्यिक एकांकियों में सामाजिक विवशता, मानवों की अतिरंजकता, नारी कुंठा आदि पर तीखे व्यंग्य किये गये हैं।' **(डॉ. भुवनेश्वर महतो : हिंदी एकांकी का रंगमंचीय अनुशीलन पृ. 255 सन 1980)**

माथुर का दृष्टिकोण अपने एकांकियों में काव्यात्मक है इसीलिए वे विस्तार में न जाकर गहराई में उतरे हैं। इनमें एक मार्मिक घटना को आधार रूप में लेकर उसके मार्मिक क्षण को पकड़ा गया है।

जगदीशचंद्र माथुर के ऐतिहासिक एकांकी :-माथुर के ऐतिहासिक एकांकी भी विचार प्रधान, प्रेरणा मूलक, राष्ट्रीय और मानवीय संदर्भों से संचालित हैं। 'भोर का तारा' एकांकी में राजकवि शेखर अपनी काव्योपासना का उत्सर्ग करके राष्ट्र की सुरक्षा और कर्तव्य के प्रश्न पर सचेष्ट हो उठता है। युग की चेतना को संचालित करने वाले महाकवि में शत्रु से सशरीर जूझने का भी नैतिक साहस है। 'कलिंग विजय' एकांकी भोगेश्वर्य-कामना और रचनात्मक मंगलकामना के बीच में झूलते हुए मुनष्य की मार्मिक कथा है। मनुष्य की मूल प्रेरणा रेखा, सम्राट अशोक के हाथों कलिंग युद्ध का महाविनाश देखकर तृप्त होती है। विश्व में रचनात्मक विकास करने वाली करुणामयी शक्ति, अशोक में अद्भुत परिवर्तन लाने में सफल होती है। निर्माणात्मक शक्ति का संसार करने वाली नायिका, दर्शकों की जिज्ञासा का केंद्र बनी रहती है। यह स्पष्ट है कि वह कलिंग राजकुमारी है जिसके भाई की हत्या अशोक ने की है। माथुर का महत्त्वपूर्ण साहित्यिक एकांकी 'विजय की बेला' है जो ऐतिहासिक स्पर्श के माध्यम से लोक जीवन की यथार्थ गंध बिखेरता है। माथुर का एकांकी साहित्य समसामायिक युग-बोध से जुड़ा है।

जगदीशचंद्र माथुर के ऐतिहासिक नाटक :- 'कोणार्क' माथुर का पहला ऐतिहासिक नाटक है। 'कोणार्क' को दृष्टि में रखते हुए डॉ. धर्मवीर भारती लिखते हैं-'वहाँ से आधुनिक नाट्य-लेखन में समकालीनता का नया-बोध अज्ञात रूप से प्रस्फुटित होने लगता है।' **(डॉ. धर्मवीर भारती, नटरंग अंक 1)**

इस नाटक पर प्रसाद के नाटकों की काव्यात्मकता और संस्कृतनिष्ठ पदावली की छाया है, लेकिन साथ ही रंगोपकरणों का समुचित समायोजन भी है। यद्यपि 'कोणार्क' नाटक की कलात्मक मंच-सज्जा सहज-साध्य नहीं है लेकिन वह कलात्मक मंच-सज्जा अपने आप में एक चित्ताकर्षक नाटकीय दृश्य है। 'कोणार्क' की कथावस्तु में इतिहास और कल्पना का सम्मोहक समन्वय है। इतिहास, मात्र बारहवीं शताब्दी के महाराज नरसिंहदेव के शासन काल में उड़ीसा के प्रसिद्ध कोणार्क मंदिर के निर्माण विध्वंस के पृष्ठ खोजता है। महाशिल्पी विशु की प्रणयगाथा, पलायन, उसके द्वारा भव्य कोणार्क मंदिर का निर्माण, कलश की स्थापना, किशोर शिल्पी धर्मपद का रहस्य, महामात्य का षड्यंत्र, शिल्पियों का रौद्र प्रतिशोध, कला का विनाश आदि अनेक रंगीन रौद्र और करुण प्रसंग कथा को सँवारते हैं। 'कोणार्क' की कथावस्तु में मोहन राकेश सत्ता के संघर्ष को चित्रित करते हैं। इस प्रकार कोणार्क की स्थूल कथावस्तु का संबंध कलासर्जन की मूलप्रेरणा और कलाकार के सर्जनशील व्यक्तित्व के अन्वेषण से है, बल्कि यह नाटक, रंगमंच को सर्जनात्मक सार्थकता के अन्वेषण का माध्यम बना देता है, जो तब तक हिंदी में प्राय: नहीं था।' **(नेमिचंद जैन : प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य, हिंदी साहित्य-तृतीय खंड पृ. 403)**

'कोणार्क' नाटक आधुनिक प्रतीक नाटकों के मध्य शिल्प को पहली बार प्रस्तुत करता है-'इसमें विशु और धर्मपद के माध्यम से नाटकार जगदीशचंद्र माथुर ने दो पीढ़ियों के अंतराल और दृष्टि-वैभिन्य को तो उजागर किया ही है आधुनिक संघर्षशील, बौद्धिकता सम्पन्न, कर्मरत, विद्रोही, कलाकार को भी उभारकर

रख दिया है।' **(डॉ. सुंदरलाल कथूरिया : समसामायिक हिंदी नाटक बहुआयामी व्यक्तित्व, पृ. 38)**

माथुर का दूसरा ऐतिहासिक नाटक 'शारदीया' है। नाटकीय वस्तु ऐतिहासिक मूल से प्रारम्भ होती है लेकिन उसका विस्तार कल्पना और अनुभूति के सहारे हुआ है। स्वच्छंदता का जो स्वरूप 'कोणार्क' में दिखाई देता है वही उनके 'शारदीया' नाटक में भी है। काव्यात्मक भाव-बिम्ब भी रंगकौशल से पुष्ट है। यह माथुर का एक कदम और आगे का प्रयोगशील नाटक है। हिंदी नाटक में व्यावसायिक थिएटर की धारणा को साकार करने इस नाटक में नृत्य-गीत, संस्कृत-नाट्य की काव्यात्मक शैली और लौकिक यथार्थ समन्वित रूप में दिखाई देते हैं...'उसमें गीत नृत्य के साथ-साथ संस्कृत नाटक की काव्यात्मक शैली तथा लोक मंच तत्वों का सुंदर उपयोग हुआ है।' **(गोविंद चातक : जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 52)**

नरसिंहराव कारागार में डाल दिया जाता है। सिंधिया की महारानी बन कर बायजाबाई उसे मुक्त कराने प्रस्तुत होती है। सम्पूर्ण नाटक में भग्न-प्रणय की सम्वेदना बिखरी पड़ी है। 'शारदीया' नाटक में घटनाओं चरित्रों और देशकाल वातावरण की व्यापकता है लेकिन वस्तु-संगठन और नाटकी-स्थिति की सुनियोजित रंग-योजना इस नाटक में दर्शनीय है। नाट्य-शिल्प, भाषा शैली और रंग-कौशल की दृष्टि से यह नाटक 'कोणार्क' से आगे है। माथुर का तीसरा महत्त्वपूर्ण नाटक 'पहला राजा' है। नाटक के कथानक के सूत्र वेद, महाभारत, पुराण और इतिहास सभी जगहों से एकत्रित किए गए हैं। पृथु और कवष की उत्पत्ति, सरस्वती की धारा का सूखना, भूख-अकाल हाहाकार कथा के जीवंत प्रसंग हैं। यह पूरा नाटक प्रतीकों, बिम्बों और अन्योक्तियों से संबंधित है। विषयवस्तु की प्रस्तुति रंग कौशलपूर्ण है। काव्यतत्व की दृष्टि से यह नाटक भी माथुर के पहले दो नाटकों के समान ही है। प्रभावोत्पादक होते हुए भी 'पहला राजा' सहज साध्य नाटक नहीं है। माथुर का चौथा नाटक 'दशरथ नंदन' है जो 1974 में सबसे बाद में प्रकाशित हुआ। इसे माथुर ने लीला नाटक की संज्ञा दी। वस्तु प्रयोग और रंग-शिल्प की दृष्टि से यह नाटक उनके पूर्व के नाटकों के समान ना तो महत्त्वपूर्ण हो सका न अधिक चर्चित।

माथुर के सभी नाटकों में मौलिक अन्वेषण, प्रयोग और प्रयास की गरिमा दिखाई देती है। इसी कारण माथुर अपनी कृतियों में ऐतिहासकि, यथार्थवादी और प्रयोगवादी कहे जाते हैं 'जगदीशचंद्र माथुर अपनी नाट्य रचना में परम्परा और प्रयोग के बीच की श्रृंखला का अन्वेषण करते रहे हैं। उन्होंने परम्परा को सही अनुपात में वैशिष्ट्य के साथ स्वीकार किया और साथ ही अपने चिंतन, समसामायिक-जीवन-बोध, रंग-शिल्प और सम्वेदना के द्वारा अपने कृतित्व को प्रयोग की नई दिशा दी।' **(गोविंद चातक : नाटककार जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 53)**

मोहन राकेश का रचना संसार :- मोहन राकेश का रचना संसार अत्यंत विस्तृत है। मोहन राकेश नई पीढ़ी के प्रतिनिधि गद्यकार हैं। उन्होंने कहानी, नाटक, यात्रा संस्मरण, ललित निबंध और डायरी लेखन में अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया। अपने जीवनकाल में जो उन्होंने प्रकाशित करवाया उससे कहीं ज्यादा वे अप्रकाशित छोड़ गए 'जैसे मंच तथा रेडियो के लिए एकांकी, नाटक, कहानियाँ, निबंध यहाँ तक कि उपन्यास भी।' **(मोहन राकेश स्मृति समारोह : 14 से 22 मार्च 1973: ओम प्रकाश द्वारा पड़े गए नए लेख का अंश)**

मोहन राकेश का ऐतिहासिक नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' मोहन राकेश का पहला पूर्णाकार ऐतिहासिक नाटक है। इसमें इतिहास केवल आधार मात्र है। ऐतिहासिक पात्र प्रतीक रूप में आधुनिक संदर्भों को संप्रेषित करते हैं। यह नाटक कालिदास के जीवन, प्रेरणा और सृजन से संबंधित है। कालिदास की संजीवनी सृजन प्रेरणा उन्हें अपनी मातृभूमि और उनके परिवेश से मिलती है। अपनी उपलब्धियों के फलस्वरूप कालिदास अपने मूल परिवेश से कट जाते हैं। फिर वे परिवेशमूलक संघर्ष और आंतरिक द्वन्द को झेलने लगते हैं। गाँव की युवती मल्लिका कालिदास की मूल प्रेरणा है जो उन्हें महान कलाकार के रूप में देखना चाहती है। वही उन्हें राजा के निमंत्रण पर उज्जयनी भेजती है, किंतु राजकवि कालिदास राजपुरुष बनकर उज्जयिनी के ही हो जाते हैं और मल्लिका सिसकती छूट जाती है। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक हिंदी-रंगमंच, रंगकौशल और मंचीय भाषा की एक महत्त्वपूर्ण प्रारंभिक उपलब्धि है... 'हिंदी का यह पहला यथार्थवादी नाटक है जो बाह्य और आंतरिक संघर्ष को उकेरने की समन्विति में उनके अंतर्द्वन्द को देखता और प्रस्तुत करता है।' **(नटरंग : अक्टूबर-दिसंबर 1972 पृ. 35)**

'आषाढ़ का एक दिन हिंदी का वह पहला नाटक है जो नाटक की भाषा में आमूल परिवर्तन का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है।'**(आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच : सम्पा, नेमिचंद जैन पृ.145)**

मोहन राकेश का दूसरा ऐतिहासिक नाटक 'लहरों के राजहंस' है जिसे हिंदी की एक रंगमंचीय उपलब्धि कहना चाहिए। कथानक अश्वघोष कृत सौंदरानंद काव्य से लिया गया है। मंचीय आकर्षण से पूर्ण यह नाटक विशुद्ध प्रतीक नाटक है। नाटक का नायक नंद अपनी रूपगर्विता पत्नी सुंदरी और अनाशक्ति प्रतीक गौतम बुद्ध के बीच में झूल रहा है और अनिश्चय का द्वन्द झेल रहा है। इस नाटक में मात्र ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से प्रवृत्ति और निवृत्ति के द्वन्द में झूलते हुए मनुष्य को चित्रित किया गया है। 'यह नाटक गौतम बुद्ध के सौतेले भाई नंद और उसकी पत्नी सुंदरी के ऐसे अंतर्द्वन्द को प्रस्तुत करता है जिसका सम्बन्ध युग-युग से है और जो ऐतिहासिक परिस्थितियों में भी आधुनिक है। सदैव, सर्वत्र जीवित है।' **(डॉ. गिरीश रस्तोगी : हिंदी नाटक : सिद्धांत और विवेचन पृ. 321-22)**

हिंदी साहित्य में इतिहास को नए रूप में ग्रहण करने की प्रेरणा, मोहन राकेश के नाटकों से मिली। 'साहित्य में इतिहास अपनी यथातथ्य घटनाओं में व्यक्त नहीं होता, घटनाओं को जोड़ने वाली ऐसी कल्पनाओं में व्यक्त होता है जो अपने ही एक नए और अलग रूप में इतिहास का निर्माण करती है।' **(मोहन राकेश : लहरों के राजहंस, भूमिका से पृ. 9-10)**

आलेखित व्याख्या के आधार पर कहा जा सकता है कि जगदीशचंद्र माथुर और मोहन राकेश दोनों की ही साहित्यिक उपलब्धियाँ हिंदी-नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण हैं। दोनों का साहित्यिक कार्यक्षेत्र व्यापक और ठोस है। माथुर और मोहन राकेश का व्यक्तित्व और कृतित्व विशिष्ट और प्रभावशाली है, दोनों की ही लेखकीय साधना की सच्चाई स्तुत्य है। माथुर व्यक्तिवादी चेतना के सृष्टा हैं। रोमांस, प्रकृति-प्रेम, सौंदर्य-पिपासा, करुणा और कल्पना के अतिरिक्त यथार्थ की कसकती हुई पीड़ा और भविष्य के सुनहरे स्वप्न। वहीं मोहन राकेश जिन्दगी को अपनी शर्त पर जीने वाले कलाकार हैं। उनके व्यक्तित्व का सबसे प्रमुख अंग उनका साहित्यिक ईगो था। लेखन के बाद उनके जीवन में और किसी वस्तु का महत्व नहीं रहा। व्यक्तिवादी चेतना के धनी मोहन राकेश भी थे। लेखकीय ईमानदारी, स्पष्टवादिता, मासूमियत, भावुकता और संवेदनशीलता दोनों ही रचनाकारों के रचनासंसार के आभूषण हैं। जहाँ तक सवाल है ऐतिहासिक तथ्यों को नाट्य साहित्य का हिस्सा बनाने का तो दोनों ही इतिहास के पन्नों से आज के चलचित्र को उकेरने वाले कुशल कलाकार रहे।

सुरभि नामदेव
सहायक प्राध्यापक, हिंदी
द भोपाल स्कूल ऑफ सोशल साइंसेस,
भोपाल-462039(म.प्र.)
9893823981

डॉ. धीरेंद्र शुक्ल,
विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी,
उच्च शिक्षा विभाग, मध्यप्रदेश शासन,
भोपाल-462038 (म.प्र.)

विशेष अनुरोध

सम्मानित सदस्यों से विनम्र अनुरोध है कि सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, आर.टी.जी.एस /एन.ई.एफ.टी, आदि ई-बैंकिंग माध्यमों से भेजने के पश्चात् एक पोस्ट-कार्ड पर अपना पूरा नाम-पता, पिन कोड नम्बर सहित लिखकर 'अक्षरा' कार्यालय को अवश्य सूचित करें। ताकि पत्रिका प्रेषित करने /मिलने में होने वाली असुविधा से बचा जा सके।

बैंक, खाता संख्या निम्नवत् है-

Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल

साहित्य और स्त्री अस्मिता के प्रश्न : मृदुला सिन्हा

- अखिलेश कुमार शर्मा

जन्म - 9 दिसंबर 1982।
जन्मस्थान - गंगापुर (राज.)।
शिक्षा - बी.एड., एम.फिल., पीएच.डी.।
रचनाएँ - एक पुस्तक प्रकाशित।

मृदुला सिन्हा भारतीय स्त्री चरित्र का प्रतिनिधित्व करती हैं। वे अपनी रचना यात्रा में स्त्री को नायिका बनाती हैं। स्त्री के सभी रूपों की प्रतिष्ठा वे अपनी रचनाओं के माध्यम से करती रही हैं। स्त्री और पुरुष को परस्पर पूरक माना गया-भारतीय जीवन शैली की परंपरा में। मृदुला सिन्हा भी इस जीवन शैली की अनुगामिनी, व्याख्याकार एवं प्रतिष्ठापक हैं। उनके प्रकाशित कुल नौ उपन्यासों में से छः उपन्यास (ज्यों मेहँदी को रंग, घरवास, अतिशय, सीता पुनि बोली, विजयिनी, परितप्त लंकेश्वरी) इस शोध आलेख के केंद्र में हैं।

तथाकथित स्त्री विमर्श से इतर मृदुला सिन्हा ने अपनी रचनात्मक चेतना में भारतीय स्त्री का चरित्र प्रस्तुत किया है-माँ, बहिन, बहू, पत्नी आदि संबंधों के द्वारा। वे अपनी कथा-कहानी की प्रस्तुति में आधुनिक नारी को संबल प्रदान करने के लिए स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को पुरजोर तरीके से उठाती हैं। वे हर रचना के द्वारा स्त्री अस्मिता को विभिन्न रूप-संबंधों में प्रतिष्ठित-स्थापित करती हैं। 'ज्यों मेहँदी को रंग' उपन्यास की शुरूआत में ही स्त्री के मनोगत भावों की पहचान को विस्तार दिया गया है -'स्त्री चाहे माँ के रूप में हो अथवा पत्नी के या फिर बेटी के, उसे पुरुष को समझते देर नहीं लगती।' **(ज्यों मेहँदी को रंग, पृ.-41)** स्त्री पुरुष के समान नहीं, विशेष है। अपनी विशेष अनुभूतियों एवं दायित्वों के कारण।

स्त्री-पुरुष को किस तरह आकर्षित-प्रभावित कर गलत से सही रास्ते पर ला सकती है, इसी की नजीर पेश होती है 'ज्यों मेहँदी को रंग' उपन्यास में। शालिनी जब दद्दा जी के आश्रम में रहती हुई वहाँ की देखरेख में प्रवृत्त होती है, तब वहाँ महेश नामक नौजवान के आक्रोश को अपने ममत्व भाव से शांत करती है, उसी परिप्रेक्ष्य में यह विचार प्रबल होता है-'जीवन में कभी स्त्री जाति से पाला न पड़ा था उसका। जमींदार साहब की पत्नी, उसकी कभी की मालकिन के व्यवहार को याद कर तो वह जेल की यातनाएँ सहते समय भी काँप उठता था। पढ़ा-लिखा था नहीं कि उपन्यास-कहानियों में माँ, बहन, पत्नी के सद्व्यवहार, प्यार और त्याग की गाथाएँ पढ़ सके। हाँ! सिनेमा उसने बहुत देखे थे। सिनेमा में भाई-बहन का प्यार देख तो वह फफक पड़ता था। माँ की ममता का दृश्य देख आता, तो दो-तीन दिन खाना नहीं खाता। और जीवन में मात्र स्त्री के सत्संग से वंचित रह, अनेक मानवीय स्पर्शों से वह वंचित रह गया था।' **(वही, पृ.-76)** मानवीय जीवन में स्त्री-पुरुष के बीच के संवेगों में बड़ा भारी अंतर होता है। स्त्री प्रकृति प्रदत्त भावों से ममत्व शालिनी होती है। वह सहज रूप से पुरुष को बाँध लेती है, पुरुष मन को पढ़ लेती है। स्त्री अपने जीवन में आई चुनौतियों से घबराती नहीं है, डटकर मुकाबला करती है। अपने व्यक्तित्व में एक गजब सा आकर्षण विकसित करती है-अपने आत्मविश्वास के बूते। अपनी कर्मठता से, अपने वैचारिक उत्कर्ष से, अपने चरित्र के तेज से, अपने ममत्व-स्त्रीत्व से। 'ज्यों मेहँदी को रंग' उपन्यास में-'शालिनी अभिवादन में हाथ जोड़े बैठी थी। तीनों आगंतुकों की नजरें उस पर टिक गईं। उन नजरों में आश्चर्य छलक आया था। पैर कटी युवती के चेहरे पर छाई दृढ़ता और जीने का संकल्प। दूसरों को जिंदा रखने की तमन्ना वहाँ अंकित थी।' **(वही,पृ.-96)** नारी जहाँ सौंदर्य की प्रतिमूर्ति होती है, वहीं कठोर निर्णयों से अपने व्यक्तित्व को एक नया आयाम देने वाली भी।

आजकल स्त्री के पहनावे को लेकर बहुत बयानबाजी होती रहती है। तरह-तरह के लोग अपने बयानों से चर्चित होने का राग अलापते रहते हैं। स्वयं महिला कथाकार भी इस स्थिति पर एकमत नजर नहीं आती हैं। मृदुला सिन्हा इस स्थिति पर 'ज्यों मेहँदी को रंग' उपन्यास में शालिनी के लिबास पर भारतीय अर्थ में टिप्पणी करती हुई कहती हैं-'कार्य के अनुसार उसने अपने लिबास में भी थोड़ा-बहुत परिवर्तन किया। सदा से पीठ

पर लटकती लंबी चोटी को जूड़े का रूप दिया। पिछले एक वर्ष में बैठे-बैठाए उसका शरीर गदरा गया था। जब से साड़ी पहनना शुरू किया, उसके ब्लाउज की लंबाई और बढ़ा दी थी। लंबी-गोरी बाँहें भी कोहनी तक ढँकी होती। गोल कटे गले से दोनों ओर, पीठ का भाग बहुत कम दिखता। लंबी गर्दन के नीचे मात्र डेढ़-दो इंच गहराई होती। इन दिनों वह 'वी' गला पहनने लगी, जिससे आगे-पीछे शरीर का बहुत कम भाग खुला होता।' **(वही, पृ.-107)** भारतीय स्त्री के सौंदर्य में पहनावा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सौंदर्य में अभिवृद्धि का एक मानक भी है पहनावा।

स्त्री अस्मिता को प्रतिष्ठित करने में नारी का रूप, व्यवहार, गरिमा, नजर आदि अवयव बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। 'ज्यों मेहँदी को रंग' उपन्यास में नारी का यह गरिमामय रूप दद्दा जी के मनोभावों में ढलकर व्यक्त होता है-'भारतीय नारियों में कोमलता, भोलापन, लचीलापन और साथ-साथ एक ठसक होती है। और इन सबसे ऊपर होता है उनका स्त्रीत्व, जिसकी मिसाल नहीं। त्याग, तपस्या, सहिष्णुता, गुण-ग्राहकता कोई उनसे सीखे और आज साक्षात अपनी धारणा के अनुरूप शालिनी को देखा तो अतीत में ही खो गए।

उनकी दृष्टि से शालिनी सकपका गई थी। नारी और पुरुष दोनों का सामाजिक संबंध कुछ भी रहा हो, कभी न कभी संबंधों के सारे दायरे लाँघकर, वे केवल नारी और पुरुष रह जाते हैं। उम्र का अंतराल भी कोई विभेद नहीं खड़ा कर पाता। और नारी, पुरुष की निगाहों को समझती-मात्र नारी रह जाती है।' **(वही, पृ.-105)** स्त्री विमर्श का यह है वास्तविक रूप। जिसे वर्तमान के कुछ लेखक-लेखिकाएँ तोड़-मरोड़कर पेश कर रहे हैं। भारत में कुछ अपवादों को छोड़कर हमेशा से ही नारी की प्रतिष्ठा रही है। वेदों में तो कहा भी गया है कि-जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। भारतीय नारी पातिव्रत का पालन कर अपने धर्म स्वरूप का निर्वाह कर विश्व भर की नारियों में सबसे ऊँचे सिंहासन पर विराजमान होती हैं। 'ज्यों मेहँदी को रंग' उपन्यास के अंत में दद्दा जी (डॉ. अविनाश) की पत्नी उन्हें खोजते-खोजते विदेश से भारत आ जाती है। और वहाँ शालिनी का दद्दा जी के प्रति प्रेम-समर्पण देखकर जल-भुन जाती है। तब उसे भारतीय नारी का स्वरूप शालिनी में प्रतिबिम्बित होता दिखलाई देता है-'मुझसे मत छुपाओ मैं उसको अच्छी तरह समझ गई। कितना प्यार है तेरे लिए उसके मन में लेकिन क्या तुमने उसे धोखा . . .।

'चुप करो! मैंने किसी को धोखा नहीं दिया।' दद्दा जी भी चिल्लाए थे।

'धोखा नहीं दिया? ये धोखा नहीं तो और क्या है! किसी को पता है कि तुम भी इस लोहे-लक्कड़ के पाँव पर। दुगुने वेग से गरजती हुई महिला ने उनके दोनों पाँव उठाकर बाहर फेंक दिए।

'मुझे मेरे पाँव दे दो। ऐसा मत करो, अब तुम्हें मुझसे क्या लेना-देना? क्यों मेरे पीछे पड़ी हो?'

शालिनी लौटने को उद्धत हो गई। दो-चार कदम ही पीछे चली होगी की दद्दा जी की गिडगिडाहट उसे पुनः लौटा लाई और वह दद्दा जी के पाँवों को उठाकर सीधे अंदर चली गई।

'तुम . . . तुम शालिनी!' दद्दाजी पलँग से दोनों अधकटे पाँव लटकाए, थर-थर काँप रहे थे। शालिनी की उपस्थिति से उनका कंपन बढ़ ही गया था। स्थिर गति से चलती शालिनी उनके पास आकर नीचे बैठे, उन्हें पाँव पहनाने लगी। और उस महिला की आँखों में, कभी डॉ. अविनाश द्वारा वर्णित भारतीय नारी की छवि नाच गई। वह जल-भुन गई। अपने प्रति डॉ. अविनाश के प्रगाढ़ प्यार की भी स्मृति सजीव हो उठी। अपनी भूल, पति के प्रति किया गया अपराध अलग से कचोट रहा था। दद्दा जी को पाँव पहनाकर शालिनी उनके पलँग से लगकर खड़ी हो गई।' **(वही, पृ.-133)** स्त्री का यह चरित्र-स्वरूप भारतीय नारी के स्वरूप को गरिमा, भव्यता, उदात्तता प्रदान करता है। नारी अस्मिता केवल और केवल स्वंय को स्थापित-प्रतिष्ठित करने में व्यक्त नहीं होती, वह संपूर्ण परिवार, समाज और उसके संबंधों के निर्वाह में व्यक्त होती है। जिसे मृदुला जी ने अपनी उपन्यास यात्रा में बखूबी से चित्रित किया है।

गाँव और शहर के बीच फैले शिक्षा के अंतर ने स्त्री-स्त्री के बीच भी दीवार खींच दी है। मृदुला जी इस अंतर को समझती-जानती हैं और स्वीकार भी करती हैं। 'घरवास' उपन्यास की नायिका 'कलिया' है। जो अपने 'घरवास' का स्वप्न देखती है और उसे पूरा भी करती है अपनी जीवटता से। इसी उपन्यास का पात्र नरेंद्र स्त्री की अस्मिता को कलिया के व्यक्तित्व के माध्यम से उकेरता है-'मुसहर पट्टी की औरतों में सबसे जिद्दी औरत। थोड़ी-बहुत विवेक से काम लेने वाली। मुसहरनियों की अगुआ। नरेंद्र को तो आश्चर्य होता था जब कलिया कभी-

कभी उसे भी शहर में जीने के नुस्खे समझाती थी। तभी वह सोचता कि औरतों की पढ़ाई-लिखाई का जो प्रचार किया जा रहा है ठीक ही किया जा रहा है। परंतु प्रकृति की गोद में पली इस महिला के जीवन-अनुभव और देश दुनिया को समझने का नजरिया कहाँ से प्राप्त करती हैं पढ़ी-लिखी शहरी महिलाएँ।' **(घरवास, पृ.-20)** नारीत्व दृष्टिकोण की श्रेष्ठ व्याख्याकारों की पंक्ति में अग्रणी हैं मृदुला सिन्हा। उन्होंने गाँव व शहर के अंतर को जिआ भी है, देखा भी है और भोगा भी है। शिक्षा के अंतर को महसूस करती हैं। इस आधार पर उन्होंने नारी की अस्मिता को अपनी कथनी-लेखनी में व्यक्त-प्रतिष्ठित किया है।

स्त्री को प्रकृति से विशेष शक्ति मिली है, इसलिए वह विशेष मानी गई है, अपने प्रत्येक स्वरूप-दायित्व-संबंधों में। 'अतिशय' उपन्यास में शिवानी और उसके पति के संदर्भ में इस बात की पुष्टि होती है-'स्त्री-पुरुष के संबंध की उसकी कल्पना उससे बिलकुल भिन्न थी, जो यति उसे यथार्थ रूप दे रहा था। स्त्री पुरुष का प्यार तो चाहती है, मगर पुछल्ला पुरुष कभी भी स्त्री को अपने में बाँध नहीं पाता। कहते हैं, प्रकृति ने स्त्री को एक ऐसी शक्ति दी है, जिसके सहारे पुरुषों के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भाव भी समझे जा सकते हैं। मात्र डोरे डालने के ख्याल से युवतियों के इर्द-गिर्द चक्कर काटते मर्द कभी उन्हे लुभा नहीं पाते। उनकी लालायित नजरों से अधिकतर स्त्रियाँ सदा कतराती हैं, जो उनके यौवन से उठे शरीर के उतार-चढ़ाव से ही जा टकराती है। पुरुष के प्यार भरे प्याले के रसास्वादन की बात और है। उन प्यालों के छलकने का टलकापन उन्हें नहीं सुहाता। शास्त्रों में वर्णित स्त्री में पुरुष से आठ गुनी कामवासना को शिवानी मंजूर करती थी, मगर यति का असंयत काममय रूप उसे आकर्षित नहीं करता था।' **(अतिशय, पृ.-46)** स्त्री और पुरुष के सूक्ष्मतर भावों का परीक्षण यहाँ देखा जा सकता है। इस परीक्षण में भी स्त्री के मनोगत भावों को गरिमा प्रदान की गई है।

स्त्री जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष को प्रेरणा प्रदान करने वाली, ऊर्जा प्रदान करने वाली, जीवन दिशा का पथ प्रशस्त करने वाली, शारीरिक, मानसिक संतुष्टि प्रदान करने वाली, भावात्मक संवेगों को पहचानने-जानने वाली, अपने मातृत्व से पुरुष से श्रेष्ठ कहलाने की हकदार है। इस रूप में स्त्री अस्मिता को एक परिवार की धुरी के रूप में भी देखा जाता है। वेद में कहा गया है-जाया (स्त्री) ही घर है। लोक में भी कहा गया है-बिन घरनी (स्त्री/पत्नी) घर, भूत का डेरा। लोक और वेद के आधार पर यह कहा जा सकता है कि-घर की पहचान, प्रतिष्ठा स्त्री से ही होती है। बिना गृहिणी (घरनी/स्त्री/पत्नी) के घर को भूतों का डेरा बताया गया है तो वेद के आधार पर गृहिणी/स्त्री के आने से ही घर 'घर' बनता है। भारतीय परिवार व्यवस्था की नियामक, धुरी के रूप में स्त्री की प्रतिष्ठा निश्चित रूप से उसकी अस्मिता को उच्च स्थान प्रदान करती है।

तत्कालीन-तथाकथित स्त्री अस्मितावादी आलोचक व लेखक भारतीय परंपरा के आलोक में उक्त विचार चिंतन के आलोक में स्त्री विमर्श को समझ-देख सकते हैं।

मृदुला सिन्हा नारी की पूर्णता माँ बनने में मानती हैं। 'अतिशय' उपन्यास में कहती हैं-'नारी की पूर्णता माँ बनने में है।' **(वही, पृ.-55)** नारी में सर्जन का यह अनमोल गुण उसकी अस्मिता को एक बड़ा फलक प्रदान करता है। 'अतिशय' उपन्यास के एक पात्र रजनीश के मुख से नारी अस्तित्व की गरिमा और अधिक ऊँचाईयों को स्पर्श करती है-'स्त्री-पुरुष के मिलन में भी नारी ही त्याग व समर्पण की मार्गप्रदर्शन बन सकती है। प्रकृति ने सृजन और संवरण का कार्यभार देकर पुरुष से बहुत ऊँचा दर्जा उन्हें दे रखा है।' **(वही, पृ.-85)** स्त्रीत्व की पहचान व प्रतिष्ठा कराने में मृदुला जी के पात्र भी पीछे नहीं रहते, विशेषकर पुरुष पात्र। लेखिका स्त्री अस्मिता की प्रतिष्ठा-स्थापना नारी पात्रों या स्वगत कथनों से ही नहीं करती, बल्कि पुरुष पात्रों के मुख से इस बात की पुष्टि व समर्थन प्रस्तुत करती हैं।

पति-पत्नी के बीच सहवास को मर्यादित व आवश्यक कार्य बताते हुए लेखिका यहाँ भी स्त्री अस्मिता के उज्जवल रूप को प्रस्तुत करती हैं। 'अतिशय' उपन्यास में यति और शिवानी पति-पत्नी हैं। पर, यति शर्मिष्ठा से भी शारीरिक संबंध बनाकर संतति को जन्म देता है। हालाँकि लेखिका ने पति पत्नी दोनों को परस्त्री व परपुरुष से शारीरिक संबंध बनाने की स्वीकृति प्रदान नहीं की है। पर, किन्हीं हालातों में यह स्थिति उत्पन्न हो जाए तो उससे निपटने, बचने, सुलझने की युक्ति पेश की है।

'अतिशय' उपन्यास में शर्मिष्ठा और यति के बीच शारीरिक संबंध बनने पर शर्मिष्ठा कहती है-'देवी-देवता को बीच में क्यों घसीट लाते हैं आप? एक जमाने के स्त्री-पुरुष ही तो अपने सत्कर्म से आने वाले युग के लिए देवी-देवता बन जाते हैं। आपका और मेरा संबंध यदि निभ गया तो क्या हम भी देवता नहीं कहलाएँगे? स्त्री के साथ मात्र आनंद के लिए किया गया सहवास पाप कहा जाएगा, किंतु वह मनुष्य, जिसे आवेश के

क्षण में भी कर्तव्य का भान रहा हो, देवता नहीं तो और क्या कहलाएगा? उसका देवत्व और भी निखर जाएगा, यदि स्वार्थ दूसरे के लिए परमार्थ भाव से किए गए कर्म को वह अपनी या दूसरे की भूल न माने।' **(वही, पृ.-138)** लेखिका आगे इसी बात को बढ़ाती हुई स्त्री अस्मिता को प्रकृति का समर्थन प्रदान करती है-'प्रकृति ने बच्चे के सभी अधिकार माँ को दिए और समाज ने पिता को।' **(वही, पृ.-160)** संतति को समाज में नाम भले ही पिता का प्राप्त हो, पर प्राकृतिक रूप से संतति जन्मों के सभी अधिकार माँ के पास ही होते हैं।

स्त्री-पुरुष के विविध संबोधनों, रिश्तों, नातों संबंधों में भी स्त्री अस्मिता को देखा जा सकता है। 'अतिशय' उपन्यास के ही एक पात्र त्रिपाठी जी के इस कथन को इस संदर्भ में देखा जा सकता है-'पत्नी-पति के लिए जिए और पति-पत्नी के लिए। माँ बच्चों के लिए और बच्चे माँ के लिए। कभी तुमने इस पर ध्यान दिया है? औरत को 'सौभाग्यवती' 'पुत्रवती' कहकर आशीष दिया जाता है। परंतु ये दोनों आशीर्वाद उसके शरीर पर फलित नहीं होते। उसके पति और पुत्र के ऊपर फलित होते हैं। 'रामचरितमानस' में कौशल्या सीता को आशीष देती है, 'अचल रहे अहिवात तुम्हारा, जब लगि गंग-यमुन जलधारा' यह आशीष भी सीता को दिया गया। परंतु इसमें राम के दीर्घायु होने की कामना है। भारतीय समाज के संबंधों को समझने के लिए इसकी पूरकता के सिद्धांत को समझना होगा। भाई-बहन, भाई-भाई, पिता-पुत्र के अतिरिक्त ऐसे अनेक रिश्ते हैं, जिन्हें अभारतीय नहीं समझ सकते। क्यों हमने इन रिश्तों के भावों को त्यौहार, उत्सव, गीता, कथा, कहानियों से सिचिंत कर जीवित रखा है? हमने तो सगे भाई-बहन नहीं रहने पर भी 'धर्म भाई' और 'धर्म बहन' का संबंध बनाया है। धर्म कहता है कि पृथ्वी भी माँ है। ऐसा कोई समाज किसी अन्य देश में नहीं।' **(वही, पृ.- 207)** भारतीय समाज के सामाजिक रिश्तों, नातों, संबंधों के जरिये भी व्यक्ति-व्यक्ति के साथ विशेष रूप से स्त्री गरिमा व अस्मिता की प्रतिष्ठा होती है।

स्त्री जीत की व्याख्या भी इसी अंदाज में होती है-'पुरुष को संतुष्ट करना एक स्त्री का कर्तव्य ही नहीं उसकी जीत भी है।' **(वही, पृ.-226)** आगे भी-'पति के आगे पूर्ण समर्पण नारी की हार नहीं, जीत है। जीतना सीखो, स्वयं हारकर पुरुष को जीतना।' **(वही, पृ.-226)** स्त्री, पुरुष पर जीत हासिल कर सकती है, स्वयं समर्पित होकर। पुरुष भी ऐसा समर्पण चाहता है और स्वयं को करना भी चाहिए स्त्री के प्रति। स्त्री सशक्तीकरण के नाम पर ढोल पीटने वाले स्त्री-स्त्री का गीत गाते हैं। जबकि भारत में व्यक्ति, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, परिवार के हिस्से हैं। इसलिए स्त्री सशक्तीकरण को परिवार सशक्तीकरण के अर्थ में देखना चाहिए ओर परिवार के केन्द्र में, परिवार के मूल में, नियोजक धुरी के रूप में स्त्री ही होती है। इस अर्थ में स्त्री की पहचान व प्रतिष्ठा स्वयंमेव स्थापित हो जाती है।

मृदुला सिन्हा अपनी औपन्यासिक यात्रा में पौराणिक मिथकों/पात्रों/कथानकों से भी अपने कथा संसार को विस्तृत करती हैं। अपने कथा संसार में पौराणिक कथा प्रसंगों द्वारा भी लेखिका ने स्त्री अस्मिता को स्थापित किया है। 'अतिशय' उपन्यास में शिवानी जब यति को (शर्मिष्ठा के साथ शारीरिक संबंध बनाने, संतति उत्पन्न करने के संदर्भ में) क्षमा करती है, तब यह उदाहरण स्त्री के उदार स्वरूप को गरिमामय रूप प्रदान करता है - 'शिवानी ने यति को क्षमा करके हरि का क्षमा दान भी छोटा कर दिया। विष्णु ने भृगु द्वारा लात खाकर भी उसे क्षमा कर दिया था। बड़े क्षमादानी कहलाए। परंतु, यति के शिवानी के प्रति किए गए अपराध की तुलना भृगु के अपराध से नहीं की जा सकती। यति का अपराध उस अपराध से अधिक संगीन था। शिवानी ने क्षमादान दे दिया। एक साधारण स्त्री ने इतना बड़ा असाधारण कार्य कर दिखाया। यही नारी का रूप है। सीता ने राम को क्षमादान किया। राम द्वारा परित्याग करने भी उनके दोनों बालकों को पाल-पोसकर बड़ा किया। उन्हें पिता राम का नाम दिया। दुनियावालों को भले ही लगता हो कि राम से मिलन के समय धरती में सीता का समा जाना राम को दंड देना था, परंतु ऐसा नहीं था। उसने राम के पुत्रों को संस्कारित कर उन्हें सौंप दिया था, एक पत्नी और एक माँ का दायित्व निभाया था। यदि वह राम को क्षमा नहीं करती तो उसके पुत्रों को पराक्रमी नहीं बनाती। हम मानें या न मानें, मगर सीता ने राम को क्षमादान दिया था। इसलिए तो हम 'सीताराम' कहते हैं,'रामसीता' नहीं। हमारे यहाँ शास्त्र ही नहीं, लोककथाओं, शास्त्रों और पुराणों में वर्णित नारियाँ भी महान हैं, बुद्धिमती हैं, व्यवहारकुशला हैं।' **(वही, पृ.-238)** नारी के उदार चरित्र को विभिन्न पौराणिक प्रसंगों से प्रकट कर लेखिका स्त्री की अस्मिता को पुरजोर तरीके से स्थापित किया है।

'अतिशय' उपन्यास में स्वयं नारी पात्रों शिवानी और शर्मिष्ठा के वार्तालाप से नारी की गरिमा, चरित्र, व्यवहार पाठकों के मन

एक छाप छोड़ता है–नारी की उदारता व मातृत्व के साथ– 'शर्मिष्ठा! तुमने पुरस्कार को गर्भ में सँजोकर कहा था न–'मेरे पेट का बच्चा किसी भिखमंगे का नहीं, करोड़पति का हैं। इसे मैं अरबपति बनाऊँगी।' तुम जीती, मैं हारी, शर्मिष्ठा। तुमने बेटे को अरबपति क्या, बहुत बड़ा बना दिया, पैसों से नहीं, बुद्धि से, हृदय से। बहुत बड़ा है हमारा बेटा पुरुषार्थ, बहुत बड़ा।' **(वही, पृ.-497)** शिवानी का यह कथन न केवल यति को क्षमादान देता हुआ शर्मिष्ठा को यति की दूसरी पत्नी के रूप में स्वीकृति है, बल्कि शर्मिष्ठा के पुत्र पुरुषार्थ को यति का बेटा मानने की उदार स्वीकृति है। हालाँकि भारतीय परिवार की परंपरा में दो पत्नियों की स्वीकृति तो नहीं, पर यदि किसी कारणवश पुरुष या पति की आसक्ति, कामवासना से या दूसरी स्त्री से संतति उत्पन्न हो जाती है तो उसे भी भारत की नारियाँ किस तरह स्वीकृति प्रदान करती हैं इसे यहाँ देखा-समझा जा सकता है। नारी-नारी के प्रति विद्रोह, रोब, क्रोध, ईर्ष्या न कर परस्पर इस तरह के मसले को सुलझा सकती हैं। यह भी स्त्री की एक नई पहचान के रूप में देखा जा सकता है। परंतु, इस दृष्टिकोण पर तत्कालीन कुछ नारीवादी लेखकों-लेखिकाओं को आपत्ति हो सकती है।

मृदुला सिन्हा के 'सीता पुनि बोली', 'विजयिनी' व 'परितप्त लंकेश्वरी' उपन्यास तो वास्तविक रूप से नारी अस्मिता का भारतीय संदर्भ प्रस्तुत करते हैं। पौराणिक नारी पात्रों की आत्मकथा लिखकर लेखिका आधुनिक नारी को आत्मबल, संयम, आत्मविश्वास का पाठ पढ़ाती हैं, स्त्री अस्मिता को भारतीय परिवेश में पुनर्स्थापित करती हैं। पौराणिक कथाओं के आधार पर लेखिका ने स्त्री अस्मिता को आधुनिक व प्राचीन जीवन शैली के बीच गठजोड़ बिठाते हुए स्थापित किया है। हमारी परंपरा में वर-वधु के विवाह के लिए स्वयंवर प्रथा विद्यमान रही है। आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण में सीताराम के विवाह के लिए स्वयंवर व्यवस्था का वर्णन किया है। स्वयंवर प्रथा में स्त्री अस्मिता को प्रबलता से देखा जा सकता है। 'सीता पुनि बोली' उपन्यास में सीता की माँ सीता से कहती हैं–'मेरी तर्कबुद्धि-संपन्ना बेटी! यह संसार ही स्त्रियों के लिए है। हर युवती को अपना घर-संसार चलाने के लिए एक सहचर ढूँढ़ना पड़ता है। अब देखो न। जिस राजकुमार से तुम्हारा विवाह होगा, उसके पिता ने कोई प्रण नहीं कर रखा। उन्होंने वधु की परीक्षा के लिए कोई शर्त नहीं रखी। शर्त तो तुम्हारे पिता ने यानी कन्या के पिता ने रखी है। उन्हें अपनी कन्या के योग्य वर चाहिए। उन्हें अपनी बेटी के गुण-कर्म पता है। इसलिए उसके योग्य जो राजकुमार होगा, उसी से ब्याह होगा। स्वयंवर होता है, स्वयंवधु नहीं, अर्थात् वर का चयन कन्या द्वारा ही होता है।' **(सीता पुनि बोली, पृ.-40)** यह स्त्री अस्मिता को मजबूती प्रदान करने वाला जीवन व्यवहार का पौराणिक या प्राचीन उदाहरण-प्रसंग है। जिसमें कन्या स्वयं अपनी पसंद से वर का चयन करने के लिए स्वतंत्र होती है।

आजकल शादी से पूर्व लड़का-लड़की देखने का चलन है। जिसमें लड़का-लड़की आपस में एक दूसरे को पसंद करते हैं। परिवार वाले भी आपस में साम्यता के आधार पर पसंद करते हैं। बदलते परिवेश की जीवन शैली में कुछ अंतर आज विद्यमान हो गए हैं। लड़कों का परिवार में अधिक महत्व दिया जाने लगा है। लड़की या वधु को पसंद करने या लड़की दिखाने की व्यवस्था ने जोर पकड़ लिया है। परंतु, यह व्यवस्था अधिक समय तक चलने वाली नहीं। हमारी परंपरा में लड़की के द्वारा लड़के को पसंद/चयन करने व्यवस्था विद्यमान रही है। यही व्यवस्था धीरे-धीरे मजबूत और स्थापित होगी।

वर्तमान में लड़कियों की प्रत्येक क्षेत्र में दावेदारी, मजबूती, दखल ने इस मत को प्रबल किया है कि लड़कियाँ लड़कों से किसी भी क्षेत्र में कम नहीं हैं। वह समान से अधिक विशेष अधिकार रखती हैं। स्वयं लेखिका भी अपने कथा संसार में, अपने जीवन में स्त्रियों को पुरुष से विशेष मानती हैं। और हैं भी। स्त्री माँ है सबसे पहले। स्त्री होना मातृत्व प्राप्त करना बताया गया है हमारी परंपरा में। स्त्री को अपने गौरव की अभिवृद्धि में पति से अधिक संतति उत्पन्न करने में निहित बताई गई है। एक स्त्री को जितना गर्व अपने पति के कार्यों-व्यवहार से होता है, उससे अधिक उसे गर्व की अनुभूति अपने संतान के यश कार्यों से होती है।

स्त्री अस्मिता के प्रश्नों की पैरवी करते हुए मृदुला सिन्हा 'विजयिनी' उपन्यास में स्त्रियों के कुछ गुण-धर्मों का उल्लेख करती हैं–'स्त्रियों के लिए शील ही उनका कवच है और लज्जा ही है उनका आभूषण।' **(विजयिनी, पृ.-110)** नारी जब प्रण कर लेती है तो जीवन की बड़ी से बड़ी चुनौती भी उसके सामने बौनी हो जाती है। 'विजयिनी' उपन्यास सती सावित्री की आत्मकथा के रूप में है। जिसमें सती सावित्री अपने पति सत्यवान की मृत्यु को काल के देवता यमराज से जीवन में परिवर्तित करा जीवित कर लाती है। वह संकल्प धारण करती है–'सत्यवान की आयु बढाने के लिए मुझे ही कुछ करना होगा।' **(वही, पृ.-110)** ऐसे संकल्प-व्रतों से ही भारतीय नारी

की अस्मिता मजबूत और प्रबल होती है। पातिव्रत धारण करने वाली भारतीय नारियाँ ही इस देश की पारिवारिक नींव को मजबूती प्रदान करती हैं।

मृदुला सिन्हा ने अपनी सर्जन यात्रा में उपन्यास के रूप में नौ उपन्यासों का सर्जन किया है। जिनमें से चार उपन्यास पौराणिक स्त्री पात्रों की आत्मकथा के रूप में हैं। लेखिका इस सर्जन यात्रा में भी नहीं चूकती हैं, स्त्री के प्रतिनिधित्व को लेकर। चारों पौराणिक उपन्यासों के रूप में भी स्त्री ही हैं यानी की पूरी उपन्यास यात्रा में स्त्री की अस्मिता बरकरार रखती हैं मृदुला सिन्हा। लेखिका के रचनात्मक तौर पर यह बिंदु भी स्त्री के अस्मितावादी प्रश्नों को भारतीय शैली में उत्तर देता हुआ स्त्री की स्थिति को एक महनीय पारिवारिक स्तंभ के रूप में स्थापित करता है। 'परितप्त लंकेश्वरी' उपन्यास में मंदोदरी अपने पति रावण से कहती है–'मैं आपको भरोसा दिलाती हूँ कि मैं आपकी सभी आकांक्षाओं को पूर्ण करने में आपकी अनुगामिनी के साथ सहगामिनी भी बनूँगी और कभी–कभी मार्गदर्शिका भी।' **(परितप्त लंकेश्वरी, पृ.-53)** अपने पति को भरोसे में लेना, पति की आकांक्षाओं का पूर्ण करना, अनुगामिनी, सहगामिनी बनना, साथ ही मार्गदर्शिका भी बनना स्त्रीत्व के पद को और अधिक उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करता है।

एक नारी के लिए उसके पति व उसके पुत्र के लिए की गई अनुभूति में फर्क होता है। 'परितप्त लंकेश्वरी' उपन्यास में अपने पुत्र मेघनाद के प्रश्न के उत्तर में मंदोदरी कहती है कि–'नारी के लिए पति और पुत्र में अंतर होता है। पत्नी अपने पति की अर्धांगिनी होती है। उसके सुख–दुख, जीत–हार, यश–अपयश में आधे की भागीदारिणी। पर पुत्र पर वह सदा एकाधिकार रखना चाहती है। पुत्र उसके रक्त का अंश होता है। संतान के सुख–दुख, यश–अपयश से उसका हृदय प्रभावित होता है। तुम्हें छींक भी आती है तो मेरे पूरे शरीर में पीड़ा होती है। माँ और संतान का संबंध ईश्वरीय संबंध है। पति और पत्नी का ऐच्छिक व सांसारिक।' **(वही, पृ.-102)** पति व पुत्र के साथ स्त्री की अनुभूतियाँ अलग–अलग होती हैं। भारतीय जीवन परंपरा में इस मूल्य की स्थापना स्त्री अस्मिता के साथ होती है, यह ही सबसे बड़ी गारिमामय, महनीय बात है स्त्री के अस्तित्व की।

'परितप्त लंकेश्वरी' उपन्यास में विभीषण के मुख से एक कथन द्वारा वेद परंपरा से नारी की स्थिति को जोड़कर मजबूती प्रदान की गई है–'वेदों में नारी को पुरुष से श्रेष्ठ माना गया है।' **(वही, पृ.-112)** वेदों से लेकर आज तक नारी को पुरुष से श्रेष्ठ माना गया है और है भी। परिवार में पति–पत्नी के रिश्ते में स्त्री अपने पति की पराजय स्वीकार नहीं करना चाहती। वह हमेशा अपने पति की विजय की कामना करती है। 'परितप्त लंकेश्वरी' उपन्यास में भी मंदोदरी अपने पति रावण के लिए कहती हैं–'पत्नी होने के नाते मैं यही तो नहीं सुनाना चाहती। उन्हें कहीं किसी से भी दंडित होते मैं देख नहीं सकती, न उन्हें दुखी होते देख सकती।' **(वही, पृ.- 115)** रावण कितना ही क्रूर, अत्याचारी, पापी, कामी, अहंकारी हो पर मंदोदरी अपने पति की हार स्वीकार नहीं करना चाहती। भले ही युद्ध भगवान श्रीराम से क्यों न हो रहा हों। परंतु, अंत में सीता के परिताप से तप्त होकर सीता मुक्ति के रूप में श्रीराम विजय की कामना करती है मंदोदरी। इसी उपन्यास में विभीषण नारी के लिए कहते हैं–'वह प्रेयसी, पत्नी और माँ भी होती है। कभी–कभी उसके इन तीनों रूपों के भाव मिश्रित हो जाते हैं। तभी तो कहते हैं कि पत्नी अपने पति की माँ भी हो जाती है।' **(वही, पृ.-115)** स्त्री की यह भूमिका कितनी गरिमामय एवं अभिभूत करने वाली है।

नारी के पातिव्रत धर्म को मजबूती प्रदान करता मंदोदरी का यह कथन स्त्री अस्मिता को एक–दूसरे से जोड़ता है। राम–रावण युद्ध में राम की विजय होती है, रावण के जीवन का अंत होता है। तब सीता माता को भगवन श्रीराम के साथ पुष्पक विमान पर विदा करते समय अपने पति के लिए वरदान माँगती हुई सीताराम से मन ही मन आकांक्षा व्यक्त करती है–'स्वर्गवासी की भूलों को क्षमादान दिया जाता है।' **(वही, पृ.-230)** नारी की यह पति की भूलों को क्षमा कर देने की प्रार्थना–इच्छा उसे सतीत्व, स्त्रीत्व, पत्नीत्व धर्म से विभूषित कर स्त्री अस्मिता को गौरवमयी रूप प्रदान करती है।

नारी अस्मिता का प्रश्न भारतीय समाज में पुरुष के बराबर खाँचे में नहीं, बल्कि एक विशेष स्थान–दायित्व के साथ देखा जा सकता है। मृदुला सिन्हा ने अपनी उपन्यास सर्जन यात्रा में स्त्री अस्मिता को भारतीय परिवेश के तहत गढ़ा है। लोक जीवन व पौराणिक कथा प्रसंगों से आधार बनाकर भारतीय स्त्री को आत्मबल, संयम, विश्वास, प्रदान कर एक आत्म स्वाभिमानी स्त्री चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। स्त्री अस्मिता पर लग रहे, उठ रहे तमाम तात्कालिक प्रश्नों का निदान भारतीय लोकजीवन की परंपरा से देकर मृदुला सिन्हा स्त्री की पहचान, प्रतिष्ठा मातृत्व धर्म के साथ प्रस्तुत कर परिवार सशक्तीकरण के पक्ष में खड़ी नजर आती हैं।

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
मिजोरम विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय),
आइजोल, मिजोरम-796004
मो. - 9413224221

कहानियों में स्त्री विषयक चिंतन

– अजिता मिश्रा

जन्म – 2 सितंबर 1983।

शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी.।

रचनाएँ – पाँच पुस्तकें प्रकाशित।

पुरातन काल से आधुनिक काल तक जो साहित्य रचित हुआ है नारी के अभाव में उसकी कल्पना करना असंभव है। साहित्य में नारी के विविध रूपों का वर्णन हमें नायिका पात्रों के माध्यम से देखने को मिलता है। डॉ. ओम प्रकाश शर्मा के अनुसार, 'महिलाओं के लिए लेखन कई रूपों में सामने आता रहा है। कुछ महिला साहित्य में स्त्रियों को परम्परागत नारी गुणों से परिपूर्ण करने का प्रयास मिलता है, तो कुछ में आज के समसामयिक आधुनिक बोध से सम्पन्न होने की कोशिश दिखाई देती है। आजकल कहीं परम्परागत स्त्रीत्व का मंडित रूप प्रस्तुत है, तो कहीं स्त्रीत्व की खंडित अभिव्यक्ति भी प्रस्तुत हो रही है।' **(समकालीन महिला लेखन, डॉ. ओम प्रकाश शर्मा, पृ. 27-28)**

साहित्य में समाज के यथार्थ सत्य को दर्शाने के लिए नारी जीवन का साहित्य में वर्णन होना आवश्यक है। 'नारी जैसे सृष्टि का मूल है, वैसे ही वह साहित्य का भी उत्स रही है। साहित्य जीवन-यथार्थ की जिस पूर्णता की अभिव्यक्ति करता है, वह बिना नारी की सहभागिता के अपूर्ण होगा।' **(वही पृ. 55)**

साहित्य में नारी के जीवन की व्यथा का वर्णन बहुत मार्मिक शब्दों में हुआ है। महादेवी वर्मा ने लिखा है-'नारी जागरण की दृष्टि से तो साहित्य उसके स्वत्व और व्यथा का समर्थ व्याख्याकार ही रहा है। कवियों के कंठ से भारत की जय ही नहीं गूँजी, नारी की जय भी ध्वनित हुई है। कथाकारों की आँखों में, भारतमाता की परवशता पर ही आँसू नहीं आए हैं, विवश नारी के बंधनों पर भी आए हैं।' **(नये दशक में महिलाओं का स्थान, महादेवी वर्मा, पृ.13)**

पाश्चात्य साहित्य का भारतीय लेखन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। 'नारी का अपने अधिकारों के प्रति सजग होना पाश्चात्य प्रभाव की देन कही जा सकती है। कुल मिलाकर देखा जाए तो भारतीय नारी चेतना का विकास और नारी मुक्ति का संघर्ष दो आधार बिन्दुओं पर केन्द्रित रहा है। पहला कुप्रथाओं के विरुद्ध संघर्ष के रूप में और दूसरा स्वतन्त्रता आन्दोलन के क्रमिक विस्तार के साथ नारी जागरण के रूप में।' **(वही पृ. 68)**

21वीं सदी की प्रमुख महिला लेखिकाओं की कहानियों में नारी पात्र मुख्य पात्र के रूप में चित्रित हुए हैं। इनकी कहानियाँ नारी जीवन के उतार-चढ़ाव को बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत करती हैं। नारी के मन की स्थिति की टोह एक नारी ही अच्छी तरह ले सकती है। इन लेखिकाओं ने नारी जीवन की छोटी-बड़ी मानसिक उलझनों को अपनी लेखनी के माध्यम से पाठकों के समक्ष जोरदार तरीके से उठाया है। इन कहानियों मे कामकाजी नारियों के दु:ख दर्द, दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों, दहेज एवं अनमेल विवाह आदि बिन्दुओं पर गहन चिन्तन किया गया है।

कामकाजी नारियों का दु:ख दर्द पर विचार करे तो हम पाते हैं कि मध्यवर्गीय तथा निम्नवर्गीय नारी आर्थिक असमानता को दूर करने के लिए विवश होकर नौकरी करती हैं, लेकिन उच्च वर्गीय शिक्षित नारी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा बनाने के लिए तथा नाम कमाने के लिए नौकरी कर रही है। डॉ. रामदरश मिश्र के मत में- जहाँ तक आर्थिक विवशता के बिना भी नौकरी करने का प्रश्न है उसका कारण 'आत्मतोष' है जिसके साथ ही जीवन स्तर को उन्नत करने की आकांक्षा भी जुड़ी है।

किन्तु अधिकांश भारतीय नारियाँ इसलिए नौकरी करने को मजबूर हैं कि घर के पुरुष सदस्यों की आय पूरी नहीं पड़ती। जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आर्थिक आय की

आवश्यकता अनुभव होती है। घर की मूल आवश्यकता की पूर्ति के लिए नौकरी करने वाली नारियों के लिए नौकरी एक मजबूरी है, वे चाह कर भी उसे छोड़ नहीं सकतीं।

मंजुल भगत ने कहानियों में ऐसे कई पात्रों की रचना की है जो आर्थिक स्थिति से कमजोर हैं और उससे बाहर निकलने के लिए प्रयासरत हैं। कामिनी का पति बेरोजगार हो गया है। घर में खाने-पीने की भी तंगी आन पड़ी है। वह घर में पड़ा पीतल का सामान बेचती है और पैसे लेकर सोचती है-'कबाड़ी से मुड़े-तुड़े गँदले बीस रुपये के नोट लेकर कामिनी ने राहत की साँस ली। चलो कुछ तो जुगाड़ हुआ।' **(मंजुल भगत, समग्र कथा साहित्य, कमल किशोर गोयनका, पृ. 43)**

इसी तरह गिंदौरी नाम की पात्र है जो आर्थिक तंगी से जूझ रही है। 'वह सोच रही थी, गरीब के घर न बेटा होता है न बेटी। जन्म होता है न मरण। बस एक कारण होता है, जो सुलटाना होता है और जिसके लिए कुछ भी, कैसे भी करके पैसा उगाहना होता है। त्यौहार हो चाहे गमी। रसम निभानी हो तो, लाओ टका। धोबी पाजेब बेच आया था। रुपया आ गया था बिजूका की अर्थी उठ रही थी।' **(वही पृ. 274)**

आर्थिक रूप से तंगी झेलते पात्र मंजुल भगत के कथा संसार में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। उच्च तथा मध्यवर्गीय नारी की वेदना मानसिक और भावना के धरातल पर अधिक प्रकट होती है जबकि निम्न वर्ग की नारी को शारीरिक कष्ट अधिक सहना पड़ता है।

कामकाजी नारी के लिए घर और बाहर दोनों क्षेत्र महत्त्वपूर्ण हैं। परम्परा से पति सदैव काम करके नारी पर अधिकार जमाता रहा और निराश्रित होने के कारण नारी उसकी प्रताड़ना सहती रही किन्तु अब स्थिति बदल गई है। नारी अब विश्राम चाहती है, वह घर की समस्याओं में सहयोग की माँग करती है जिनके न मिलने पर वह विक्षिप्त हो उठती है। स्त्रियाँ इतनी सहनशील होती हैं कि जब उनके यहाँ आर्थिक तंगी होती है तब उनके पास जो वस्तुएँ होती हैं उसमें ही वे गुजर बसर कर लेती हैं।

'सिगड़ी सुलगाकर कनस्तर से कुल जमा तीन मुट्ठी आटा झाड़कर भाँडने बैठ गई। एक-दो भाकरी ज्यादा ही बना लेती एक लोई से दो।' **(चित्रा मुद्गल, आदि अनादि, पृ. 99)**

गहन पीड़ा से पीड़ित नारी कई बार अपनी जीवन लीला ही समाप्त करने की सोच लेती है-'बच्चों समेत मरने की क्या पहली बार सोची है? एक रात जब पेट में पानी उड़ेलकर भी बच्चों से भूख सहन नहीं हुई तो विरझाई सी तीनों को घसीटती करीमन चाली के पिछवाड़े अँधेरी में डूबी बावड़ी पर छलाँग लगाने नहीं जा खड़ी हुई थी' **(लकड़बग्घा, चित्रा मुद्गल, पृ. 102)** दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों पर विचार करें तो वैवाहिक जीवन में तनाव के लिये बाह्य कारणों के अतिरिक्त कुछ मनोवैज्ञानिक कारण भी उत्तरदायी होते हैं, जिनका समाधान आवश्यक है।

स्वतन्त्रता परवर्ती हिन्दी कहानी मोह भंग की कहानी है जिसमें परम्परापालित समग्र मोह बरबस भंग हो जाते हैं। फलस्वरूप पति-पत्नी के संबंधों में आमूलचूल परिवर्तन परिलक्षित होता है। इस परिवर्तन का परिणाम यह हुआ है कि आधुनिक नारी पारम्परिक भीतियों से ऊपर उठकर नवीन भूमिकाओं की तलाश करने लगी है। एक समय था जब विवाह पवित्र एवं धार्मिक बन्धन समझा जाता था जिसमें स्त्री-पुरुष अपनी या माता-पिता की इच्छा से यौन-संबंध की पूर्ति, सन्तानोत्पत्ति, आत्मसंतुष्टि तथा सामाजिक नैतिकता बनाये रखने के लिए आयु पर्यन्त एक दूसरे के हो जाते थे। विवाह नारी के लिए आकस्मिक था। नारी भगवान के भरोसे पति के अनाचार सह कर पति परायण बनी रहती थी, पर आधुनिक नारी अपने अधिकारों तथा व्यक्तित्व की आकांक्षाओं के प्रति सचेत है। नारी की इस स्वतन्त्रता-प्रियता ने परम्परागत विवाह संस्था के सामने प्रश्न चिह्न लगा दिया है जिसके कारण विवाह संस्था परिस्थितिजन्य संतुलन माँग रही है।

बदलती हुई परिस्थितियों में स्त्री और पुरुष दोनों के लिए पौराणिक मूल्य तहस-नहस हो गये हैं। आज के पढ़े-लिखे पति की चेतना 'प्रतिष्ठा' के प्रति सजग रहती है। वह अपने को विशेष स्थिति तथा 'स्टैंडर्ड' के रूप में देखना चाहता है तो नारी का 'अस्तित्व' और 'अहं' भी पुरुष की अपेक्षा गौण भूमिका स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। नारी युग की नई आँधी के साथ बहना चाहती है। दोनों की बदली हुई मन: स्थितियों ने पति और पत्नी की इकाइयों को दो अर्द्ध-इकाइयों में बदल

दिया है और अब ये अर्द्ध इकाइयाँ अपने परिवेश से जीवन के संगत मूल्यों और पद्धतियों को चुन कर स्वतंत्र और परिपूर्ण इकाई बन सकने की दिशा में अग्रसर है। आज पति–पत्नी ऐसा घर चाहते हैं जो सामाजिक रूप से स्थाई भी हो, पर परंपरागत बोझ से मुक्त हो।

आधुनिक परिवेश में मानसिकता के आधार पर आत्मपरक संबंधों के दौर से गुजरते पति–पत्नी एक–दूसरे के व्यवहार से ऊब अनुभव करने लगते हैं और बँधी–बँधायी रूटीन में छटपटाते रहते हैं। पति–पत्नी के संबंधों में व्याप्त 'ऊब' तथा 'संघर्ष' का चित्रण हिन्दी कहानीकारों ने विविध कोणों से किया है। कहीं तो यह स्त्रियाँ पति के प्रति स्वच्छन्द व्यवहार से ऊब रही है, कहीं उसकी स्वार्थान्धिता से, कहीं बँधे–बँधाये अस्तित्वहीन जीवन से।

महानगरीय परिवेश में परिवारेत्तर जिम्मेदारियों के कारण पति–पत्नी के संबंधों में घुटन भरी एक ऐसी स्थिति आती है जबकि दोनों ठंडापन, खिलाहट तथा सीलन अनुभव करते हुए सोचते हैं कि वे मजबूरन एक–दूसरे की जरूरत को पूरा कर रहे हैं। वैवाहिक जीवन में व्याप्त इस ऊब के कारण पति–पत्नी जब किसी तरह से समझौता नहीं कर पाते तो उनके समक्ष इस ऊब को तोड़ने के लिए एक ही रास्ता बचता है अलगाव का। परन्तु ऐसा देखा गया कि अलग हो जाने पर भी वह संतुष्ट नहीं हो पाते और उस स्थिति को कोसने लगते हैं जिसमें वह समझौता नहीं कर पाते हैं।

प्रेम की चरम सीमा विवाह नहीं है, यह बात सिद्ध हो चुकी है और समय और परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर विवाह मात्र धर्म रह गया है। आज भी युवती रोमांच के लिए स्थापित किये गये इन यौन संबंधों को अन्तिम नियति नहीं मानती अर्थात् उसके लिए यह जरूरी नहीं कि प्रेमी पति ही हो। पुराने संस्कारों और नयी परिस्थितियों के बीच नारी किस प्रकार पुरुष के अनेक टूटे संदर्भों में अकेली होती जाती है, उनकी मानसिक गठन और मनोविज्ञान में कैसे परिवर्तन आते–जाते हैं, इसे आज की कहानी अधिक वास्तविक भूमि, अनेक सूक्ष्म संश्लिष्ट धरातल और विविध संवेदनशील पक्षों से चित्रित करती है। 21वीं सदी की महिला कहानीकारों ने अपनी कहानियों में नारी जीवन के विविध रूपों का वर्णन किया है। नारी–विकास के लिए इन लेखिकाओं ने नये–नये प्रतिमान स्थापित किये हैं लेकिन उन्हें साकार होने में अभी समय है। योजना रावत के शब्दों में–'समकालीन कथा–साहित्य में स्त्री की पीड़ा एवं वेदना को व्यापक फलक पर अभिव्यक्ति मिली है। सदियों से चली आ रही रूढ़ परम्पराओं, पितृसत्ता, नैतिक प्रतिमानों, स्त्री के लिए मान्य सामाजिक व पारिवारिक बन्धनों तथा पुरुष प्रधान भारतीय समाज में सदियों से दमित, शोषित व संघर्षरत स्त्री आज भी पुरुष के दमन चक्र से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पायी है।' **(स्त्री विमर्शवादी उपन्यास : सृजन और सम्भावना, योजना रावत, पृ. 7)**

इस तरह इन लेखिकाओं ने नारी चेतना के नये आयाम उपस्थित किये हैं। चित्रा मुद्गल ने अपनी कहानियों में दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों को दर्शाया है। तलाकशुदा नारी को किस प्रकार मानसिक पीड़ा से गुजरना पड़ता है। इस विषय पर चित्रा जी ने अपनी कहानी में बहुत ही यथार्थ वर्णन किया है।

'बताया था दिल्ली के जनपथ होटल में। 'जे' के तीन बच्चे थे। तीनों को वह अपने साथ लेकर आई थी। दो बेटे और एक बेटी। तेरह वर्ष में तीन तलाक 'जे' के खाते में दर्ज थे। दो बड़े फ्लैटों की मालकिन थी। जीवन पर्यन्त कमाती, तब भी अपने बूते दो बड़े शहरों में बड़े फ्लैट बना पाना उसके लिए मुश्किल था। औरत की योनि और कोख ने उसे इतनी बड़ी सम्पत्ति का हकदार बनाया था। बस! हमारे यहाँ की मूर्ख औरतें इस गुर से नावाकिफ हैं या उनमें साहस की कमी है।' **(पेंटिंग अकेली है, चित्रा मुद्गल, पृ. 21)**

इसी तरह गेंदा नाम की पात्र है जिससे उसका पति ही देह व्यापार कराता है– 'इहा लोक लालू दलाल के साथ हमसे धंधा करवाने को मार–कुटाई करने लगा, हम हाथ–गोड़ जोड़ते रहे, हमका छाड़ि दे, हमसे नाहि होगा आज सुबह बहुत जबरई किया। खिड़किया से कूद के भागे गेंदा के धैर्य का बाँध टिका नहीं रह पाया।' **(आदि अनादि, चित्रा मुद्गल, पृ. 232)**

वर्तमान परिदृश्य के लोग स्त्रियों को मात्र सुविधापरस्त ही मानते हैं, उनकी मानसिकता में स्त्रियों के लिए कोई सम्मान का स्थान प्रतिबिम्बित नहीं होता। मंजुल भगत ने अपने उपन्यासों में दाम्पत्य जीवन को विस्तार से वर्णित किया है। डॉ. मैना जगताप लिखती हैं–'मंजुल भगत ने अपने कथा साहित्य में दाम्पत्य

जीवन के विभिन्न चित्र दिखाए हैं। इन्होंने अपने कथा साहित्य में आस-पास के यथार्थ को सामाजिक स्तर पर प्रस्तुत किया है। साथ ही दाम्पत्य जीवन से सम्बन्धित मध्यवर्ग के पारिवारिक यथार्थ एवं उनकी समस्याओं को सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है।' **(मंजुल भगत के कथा साहित्य में नारी, डॉ. मैना जगताप, पृ. 24)**

दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी एक-दूसरे का साथ निभाते हुए गृहस्थी को आगे बढ़ाते हैं किन्तु सब कुछ सामान्य रहते हुए भी कभी-कभी पति-पत्नी के सम्बन्धों में नीरसता आ जाती है। 'विवाह के पश्चात् तो उसने प्रभात का विश्लेषण करना भी बंद कर दिया था। लगा, उसके बारे में जो कुछ जानने-समझने लायक था, वह सभी जान-परख चुकी थी। रहा प्रभात, तो इतना शोभना को विश्वास था कि वह इतना सज्जन है कि पत्नी के अंतर्मन की निजी, अंतरंग छिपी पगडंडियों पर कभी अनाधिकार प्रवेश नहीं करेगा।'**(मंजुल भगत समग्र कथा साहित्य, कमल किशोर गोयनका, पृ. 24-25)**

'भग्नावशेष' कहानी में भावना और रोहित पति-पत्नी हैं। चार साल तक चले प्रेम प्रसंग के बाद उनका विवाह हुआ। छः वर्ष बीत जाने पर स्थिति बदल जाती है। एक समय ऐसा आता है जब भावना रोहित को छोड़ना चाहती है-'तुम्हें छोड़ने के लिए दलील देना क्या आवश्यक है? मैं क्या तुम्हें केवल इसलिए नहीं छोड़ सकती कि तुम्हारे साथ रहने या न रहने में अब कोई अंतर नहीं रह गया है। या फिर यह छोड़ सकना मुझसे हो पा रहा हैं। क्या यह संकेत नहीं है कि हममें अब कुछ बाकी नहीं रह गया?'**(वही पृ. 28)**

सम्पूर्ण दाम्पत्य सम्बन्ध पारिवारिक जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। अलका सरावगी ने अपनी कहानियों में पति-पत्नी के सम्बन्धों को स्पष्ट किया है। अलका जी की एक कहानी में शशांक का दोस्त कहता है-'तुम्हारी माँ क्यों ऐसा सोचती है, कि पुरुष को ही अधिक मजबूत होना चाहिए और उसे स्त्री को सहारा देना चाहिए? ऐसा भी तो हो सकता है कि तुम्हारे पापा को हमेशा लगा हो कि तुम्हारी माँ बहुत मजबूत है और उसे किसी तरह के सहारे की जरूरत नहीं।' **(कोई बात नहीं, अलका सरावगी, पृ. 92)**

'न्यू इयर्स ईव' कहानी में अलका सरावगी ने दाम्पत्य जीवन के मनमुटाव का चित्रण किया है। प्रबोध कुमार अपनी पत्नी से ऊब और चिड़चिड़ाहट महसूस करता है। पत्नी विमला भी पति को खुश करते-करते थक चुकी है-'पंद्रह सालों के साथ के बाद विमला को यह मालूम हो चुका था कि कोई हल्की सी शिकायत का भी चेहरे पर दिखाई दे जाना भारी पड़ेगा वरना इस तरह खटनी करना उसके लिए शारीरिक रूप से ज्यादा मानसिक रूप से कष्टकर था। उसका वश चलता तो वह अपने पति और बच्चों के अलावा किसी को अपनी दुनिया में झाँकने तक नहीं देती और न ही उन लोगों को बाहर मन लगाने देती। पर उसके पति थे कि उसकी दुनिया में आते ही ऊब और चिड़चिड़ाहट महसूस करने लगते थे और उससे भी तभी सलीके से पेश आते थे जब वह दुनिया के न जाने किन-किन ऐरों-गैरों को समेट लेती थी।' **(दूसरी कहानी, अलका सरावगी, पृ. 141)**

इस तरह इन सभी लेखिकाओं ने नारी चेतना के नये आयाम उपस्थित किये हैं। 21वीं सदी की महिला कहानीकारों ने अपनी कहानियों में दहेज एवं अनमेल विवाह का तिरस्कार को अपनी कहानी मे प्रमुखता से स्थान दिया है। वैवाहिक कुरीतियों में दहेज लेने एवं देने की रीति घोर अनर्थपूर्ण रीति है। सरकार ने कानूनन इस प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाया है परन्तु व्यवहार में इसका प्रचलन निरन्तर बढ़ता जा रहा है। लड़के वाले मुँह माँगा दाम लेते हैं और विवश होकर लड़की वाले देते हैं।

ऐसी स्थिति में जब कि माँ-बाप धन के अभाव में बेटी के लिए योग्य वर नहीं जुटा पाते, उन्हें रूप गुण से सम्पन्न कन्या किसी दुहाजू या बूढ़े को ही सौंपनी पड़ती है। आज पढ़े-लिखे लड़के भी शादी के संबंध में जो शर्तें रखते हैं उनमें दहेज की शर्त विद्यमान रहती है।

दहेज की समस्या से लड़की के माँ-बाप तो परेशान होते ही हैं इस सिलसिले में लड़की भी कम यातना नहीं सहती। कई बार विवाह न हो पाने की अवस्था में वह कुंठित होकर रह जाती है या भाग खड़ी होती है, कुछ परिस्थितियों में अनमेल विवाह हो जाने पर आत्महत्या कर लेती हैं। इन परिस्थितयों में विवश लड़की तथा माता-पिता के लिए दहेज विरोधी कानून बनाना या ना बनाना बराबर है।

वर्तमान समय में रूढ़िवादिता व अंधविश्वास अभी भी देश की प्रमुख सामाजिक समस्याओं में से एक है। जिसके कारण आज भी बाल-विवाह, अनमेल विवाह, बाल श्रम, दहेज प्रथा, विधवा पुनर्विवाह न होना आदि जैसी सामाजिक विसंगतियाँ घर कर जाती हैं जो देश की प्रगति में आज भी बाधक बनते हैं। चंद्रकांता ने अपनी कहानियों में दहेज प्रथा, अनमेल विवाह से जूझती नारियों का भावपूर्ण चित्रण किया है। राजनाथ कौल नामक पात्र अपनी बेटियों को पढ़ा-लिखा कर व दहेज प्रथा के खिलाफ अपनी तीनों बेटियों का विवाह ऊँचे कुल में करते हैं। जबकि उस समय समाज में दहेज लेन-देन का चलन शुरू हो चुका था। उसके बाद भी राजनाथ समाज के खिलाफ जाकर अपनी तीनों बेटियों का दहेज नहीं देते हैं और समाज में एक जिम्मेदार नागरिक का फर्ज अदा करते हैं। **(यहाँ वितस्ता बहती है, चन्द्रकान्ता, पृ. 141)**

अलका सरावगी ने अपनी कहानी में दहेज प्रथा का तिरस्कार करते हुए दर्शाया है-'वे हमारे लिए बहुत कुछ छोड़ गए हैं, भाई साहब। बच्ची की सगाई भी उनके सामने ही तय हो गई थी। लड़के वाले दहेज भी नहीं लेंगे। बहुत पैसे वाले हैं-दूसरी जाति के हैं तो क्या हुआ?' **(कहानी की तलाश में, अलका सरावगी, पृ. 109)**

मंजुल भगत ने 'दोबारा' कहानी में प्रलोभी युवक को दिखाया है जो अधिक दहेज के लालच में रिश्ता तोड़ देता है। लेकिन लड़की कहती है-'जाने दो मम्मी, वह तो कायर था, जो अपनी माँ से टक्कर न ले सका, वह भला मेरी पत क्या रखता? वह हमारे काबिल नहीं था, मम्मी।' **(मंजुल भगत समग्र कथा साहित्य, पृ. 266)**

विवाह दो दिलों का मिलन होता है किन्तु अगर ये दिल एक दूसरे से मेल नहीं खाते हो तो यह अनमेल विवाह हो जाता है। कभी-कभी माँ-बाप की मर्जी या कभी अपनी ही महत्वाकांक्षा के लिये हम ऐसा रिश्ता जोड़ लेते हैं। जिसे निभाना बहुत मुश्किल हो जाता है। पति-पत्नी में भिन्नता किसी भी स्तर की हो सकती है। कभी-कभी अशिक्षा के कारण लोग कम उम्र की लड़कियों का विवाह अधिक उम्र के पुरुष से कर देते हैं। ऐसे विवाह किसी भी परिस्थिति में सफल नहीं हो पाते। मंजुल भगत की कहानी की रेशम और उसका पति एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। 'अग्नि को साक्षी मानकर लाया गया मेरा शरीर उनसे संबंधहीन ही रह गया। सास को मुझसे वंशज चाहिए था और पति को मेरे से भय लगता था। पति के लिए मैं ऐसी छलछलाती, उन्मादी नदी थी, जिसका उछाल देखकर ही वह किनारे पर खड़े-खड़े थरथराने लगते, उतरने-तैरने की तो बात ही क्या? साथ के लिए मैं दरकी-बंजर धरती बन गई।' **(मंजुल भगत समग्र कथा साहित्य, कमल किशोर गोयनका, पृ. 488)** रेशम और उसके पति की दैहिक जरूरतें भिन्न थीं इसलिये उनका विवाह सफल नहीं हो पाया।

मंजुल जी की शादी की सालगिरह, भग्नावशेष, पायदान, अंधे मोड़ आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं जो हैं तो प्रेम विवाह लेकिन इनका अन्त बेमेल विवाह के रूप में होता है।

आधुनिक युग में नारी जागरण की भावना तथा शिक्षा व्यवस्था ने नारी के आत्मबल को बढ़ावा दिया है। वह विवाह-संस्था को नकारने लगी है और दहेज से मुक्ति पाने के लिए विद्रोह कर उठती है।

दहेज प्रथा संबंधी विवेचन से स्पष्ट है कि आज का कहानीकार जानता है कि इस अर्थ-आधारित समाज में व्यक्ति इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि पैसा। ऐसे परिवेश में इन सब विभीषिकाओं से उबर कर स्त्री को अपना बोझ स्वयं सँभालना होगा।

21वीं सदी की महिला कहानीकारों की कहानियों में आर्थिक स्वावलम्बन की ललक, देह मुक्ति की चाह एवं आदर्शवादी मूल्य मर्यादाओं के विरोध के स्वर भी मुखर रूप से प्रकट हुए हैं। महिला कहानीकारों की लगभग सभी कहानियों में परम्परागत रूढ़ियों से ग्रस्त अंधविश्वास, मूल्य एवं मर्यादाओं का विरोध करते हुए एक स्वावलम्बी नारी चरित्र के चित्रण का प्रयास किया गया है जिसमें नारी के परम्परागत भोग्या रूप से इतर स्वतन्त्र व्यक्तित्व सम्पन्न पुरुष के पूरक के रूप में नारी प्रतिष्ठित हुई है।

फ्लैट नं.-402, वैशाली अपार्टमेंट, 06 पार्क रोड, (विधायक निवास 06 के पास)
हजरतगंज, लखनऊ -226001 (उ.प्र.)
मो.-9935158785

पॉल गोमरा का स्कूटर : उदयप्रकाश

– सुमन आचार्य

जन्म – 5 जून 1991।
जन्मस्थान – मांडल (भीलवाड़ा)।
शिक्षा – बी.ए., बी.एड., एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

भारतीय साहित्य में ही नहीं, विश्व साहित्य में भी कहानी सबसे दिलचस्प और मनोरंजक विधा मानी जाती है। मानव मन की चिन्तन शक्ति, चेतना, विवेक, विकास आदि में कहानी का योगदान सर्वोपरि तथा महत्त्वपूर्ण रहा है। मानव द्वारा किया गया चिन्तन और मनन, देश-काल की सीमाओं से परे जाकर उसकी संस्कृति की जड़ों को मजबूत कर देता है। इस कार्य में कहानी की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। समकालीन समय में कहानी ने अपनी वस्तु एवं शिल्प में काफी प्रगति की है। इस प्रगति में कई कहानीकारों ने योगदान दिया है फिर भी समकालीन सामाजिक परिवेश को सही रूप में पहचान कर उन्हें अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त करने में अच्छी सफलता उदयप्रकाश को मिली है।

समकालीन कहानीकारों में उदयप्रकाश की अपनी एक अलग पहचान है। उदयप्रकाश ने अपनी कहानियों में भारतीय जीवन के बदलते यथार्थ को उसकी जटिलताओं के साथ उद्घाटित किया है। उन्होंने अपने आस-पास के जीवन के साथ ही व्यापक स्तर तक की समस्याओं को अपनी कहानियों में उकेरा है। उन्होंने अपनी कहानियों में कथ्य की बारीकी के साथ शिल्प का भी सचेत प्रयोग किया है। यथार्थ को व्यक्त करने की छटपटाहट और बेचैनी ने उनको जादुई यथार्थवाद की ओर उन्मुख किया। उदयप्रकाश की कहानियों के संबंध में कहा जाता है कि जादुई यथार्थवाद उनकी आन है। 'जादुई यथार्थवाद एक परागामी शैली है। इसका आधार वास्तविक यथार्थ ही होता है। जादुई यथार्थवाद वास्तविक यथार्थ से परे जाने या कि उसका अतिक्रमण किए जाने की प्रक्रिया के तहत ही ईजाद हुआ था।' **(देवकीनंदन महाराज : समकालीन कहानीकार उदयप्रकाश, पृ. 215)**

जादुई यथार्थवाद के कारण उनकी कहानियाँ सरल रेखा में नहीं हैं। उदयप्रकाश की कहानियाँ समसामयिक परिस्थितियों, संवेदनाओं तथा सामाजिक दायित्व बोध से पैदा हुई है, जिनमें जीवन के ढेर सारे अनुभव अपनी भाषिक व शैल्पिक विशिष्टता को लेकर विभिन्नता तथा वैभव के साथ प्रकट होते हैं। यथार्थ की जटिलता को देखते हुए लेखक ने यथार्थ की सूक्ष्मता को उजागर करने के लिए नयी शैली का सहारा लिया है। वास्तविक यथार्थ की बहुकोणीय व्याख्या इसके माध्यम से सरलता से की जा सकती है। 'किसी रचना की श्रेष्ठता का एक बड़ा पैमाना यह भी है कि उसे जितनी बार पढ़ा जाये, उतनी बार वह नये-नये अर्थ दें। बार-बार वह पुनर्नवा हो।' **(शंभु गुप्त डिबिया में धूप उदयप्रकाश एक अध्ययन, पृ. 48)**

उदयप्रकाश की कहानी 'पॉल गोमरा का स्कूटर' इसी अर्थ में अपनी संरचना तथा यथार्थ निरूपण में व्यापक और बहुआयामी है। यह कहानी आधुनिक भावबोध पर लिखी गई है। इसमें उन्होंने मध्यवर्गीय लिप्सा और मूल्यहीनता को उजागर किया है। यह एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है। रामगोपाल सक्सेना से पॉल गोमरा बने हिंदी के कवि एक छोटे से दफ्तर में काम करते थे। वे अपने सिद्धान्तों और विचारों में क्रान्ति व सामाजिक परिवर्तन के प्रबल समर्थक थे। यह समय ऐसा था जब समाज के प्रत्येक क्षेत्र में तेजी के साथ परिवर्तन हो रहा था। 'वर्तमान उनकी समझ में नहीं आता था। बहुत प्रयत्नपूर्वक एकाग्रचित्त होकर वे कभी-कभार वर्तमान को समझने का प्रयत्न करते, तब तक वह बदल जाता था।' **(उदयप्रकाश अरेबा परेबा कहानी संग्रह, पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ. 103)**

संसार से अच्छी चीजें तेजी से विलुप्त होती जा रही थीं। राम गोपाल सक्सेना वर्तमान समय के साथ कदम मिलाने के लिए अपने नाम का कलात्मक विखंडन कर देते हैं। राजधानी दिल्ली के एक साधारण अखबार में काम करने वाले हिन्दी कवि राम गोपाल सक्सेना विखंडनवादी पद्धति के तहत अपना नाम पॉल गोमरा कर देते हैं। इतनी तेजी से परिवर्तित होते समय को राम गोपाल से पॉल गोमरा बने हिंदी के साधारण कवि समझ नहीं पाते हैं। आधुनिक से उत्तर आधुनिकता की ओर होने वाली उथल-पुथल को दो युगों की सीमा पर खड़े कवि पॉल गोमरा आश्चर्य से देखते हैं।

उदयप्रकाश पॉल गोमरा के माध्यम से बढ़ती बाजारी शक्ति की चिंता को केन्द्र में रखते हैं। दुनिया में उपभोक्ता समाज ने बाजार के बल पर जितना भी विस्तार किया है, उसका प्रभाव मनुष्य के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पर पड़ा है। बाजार मनुष्य की आकांक्षाओं को कभी न खत्म होने वाली महत्त्वाकांक्षाओं में बदल रहा है। यह बदलाव तकनीक, आधुनिकता, भूमंडलीकरण, बाजारवाद, मीडिया, कम्प्यूटराइज्ड, उपभोक्तावाद, अश्लीलता सबमें नजर आ रहा है। रातोंरात मालामाल होने के लिए कुछ लोग कुछ भी करने को तैयार हो रहे थे। 'सर गंगाराम हॉस्पिटल के सफाई कर्मचारी राम औतार आर्य की सत्रह साल की बेटी सुनीला रातोंरात मालामाल हो गयी थी, क्योंकि किसी टीवी के विज्ञापन में वह आठ फुट बाइ चार फुट साइज के विशाल ब्लेड के मॉडल पर नंगी सो गयी थी।' **(वही, पृ. 104)**

अपनी अस्मत को दाँव पर लगाने में किसी को कोई डर नहीं था। ऐसा एक और उदाहरण लेखक आशा मिश्रा का देता है जो प्राइमरी स्कूल की टीचर थी परंतु 'द ब्लैक हॉर्स' नामक बियर के विज्ञापन में अपनी अस्मत दाँव पर लगा चुकी थी। बाजार की मायवी दुनिया में विज्ञापन एजेन्सियाँ सुनीला और आशा मिश्रा जैसी महिलाओं की देह का बाजारीकरण कर लोगों की कामुकता को बढ़ावा दे रही है। ऐसे विज्ञापनों की राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर हुई चर्चा बताती है कि वर्तमान समय में विज्ञापन ही लोगों की सोच को संचालित कर रहा है। समाज में अश्लीलता बढ़ती जा रही है। संस्कार और मर्यादा कहीं खो गये हैं। पैसे कमाने की दौड़ में हर कोई दूसरे से ज्यादा पैसा कमाना चाहता है और बाजार इसको बढ़ावा दे रहा है। लेखक स्वयं कहता है कि 'बाजार अब सभी चीजों का विकल्प बन चुका था। शहर, गाँव, कस्बे बड़ी तेजी से बाजार में बदल रहे थे। औरत बिकाऊ और मर्द कमाऊ का महान चकाचक युग आ गया था।' **(वही, 104)**

पॉल गोमरा सब कुछ बदलता हुआ अपनी आँखों से देख रहा था। यथार्थ अब मशीन युग से निकलकर इलेक्ट्रॉनिक और उसके आगे के युग में जा रहा था। औरत बिकाऊ और मर्द कमाऊ के युग में इंसानियत, प्रेम, मानवता आदि का कोई महत्त्व नहीं रह गया था। नये युग में ऐसी उपभोक्तावादी संस्कृति विकसित हो रही थी जिसमें पैसा ही सब कुछ माना जा रहा था।

उदयप्रकाश की 'खुफिया आँखों' ने उत्तर आधुनिक मनुष्य की हासोन्मुखी दशा का चित्रण किया है। बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति-विषमताओं से हमारा साक्षात्कार कराया है तथा उत्तर आधुनिक समस्याओं के माध्यम से नया जीवन बोध देकर अपने दायित्व का निर्वाह किया है। **(सुरेश पटेल उत्तर आधुनिकता और उदयप्रकाश का साहित्य, फ्लैप)**

लेखक ने 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी में महानगरीय जीवन में तेजी से होते बदलाव को उजागर किया। उत्तर आधुनिकता की ओर बढ़ता मनुष्य किस प्रकार अपने पतन की ओर बढ़ रहा है, इसका चित्रण किया। पॉप कल्चर के बढ़ते प्रभाव के कारण पॉल गोमरा का बेटा मंटू जिसे की परसों पैर में मोच आई थी वह मैडोना के गाने पर डांस कर रहा था। पॉल गोमरा की पत्नी कपड़ों व साज सज्जा द्वारा मशहूर मॉडल मेहर जेस्सिया बनी हुई थी। उनको अपनी पत्नी स्नेहलता सक्सेना नहीं लगकर मशहूर मॉडल मेहर जेस्सिया लग रही थी। इससे स्पष्ट होता है कि आज का बाजार आभासी यथार्थ हमारे सामने रख रहा है। बाजारवाद का जादू सब पर सिर चढ़कर बोल रहा है। स्वयं को साधु संन्यासी कहने वाले भी उपभोक्तावादी संस्कृति के चंगुल में फँस चुके हैं। राज्य परिवहन की बसों को चलाने वाले चालक किसी की भी जान की परवाह किये बिना नये युग की भाग दौड़ में शामिल हो चुके हैं। महानगरीय जीवन की भाग दौड़ में इन चालकों को आम नागरिक दिखायी ही नहीं दे रहे हैं। लेखक कहानी के माध्यम से इस नये युग में बढ़ते आतंकवाद, नक्सलवाद, दंगे, अपराध आदि की ओर संकेत कर रहा है। ऐसा महसूस होता है जैसे हम नये युग में नहीं बल्कि किसी बारूद के ढेर पर सवार है।

हिंदी कवि रामगोपाल सक्सेना अपने आपको इस बदलते सामाजिक परिवेश में फिट करने के लिए दो फैसले लेते हैं। ये दोनों फैसले उनके जीवन के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण फैसले होते हैं। दोनों फैसलों का दायरा बहुत व्यापक और युगीन संदर्भों से जुड़ा होता है। पहला फैसला अपना नाम बदलने का तथा दूसरा फैसला स्कूटर खरीदने का। कवि रामगोपाल बाजारवादी संस्कृति के लालच में पढ़कर, उपभोक्तावादी संस्कृति के विज्ञापनों में आकृष्ट होकर अपने आपको बदलने का प्रयास करते हैं। वे अपने नाम को लेकर हीन भावना से ग्रस्त हो जाते हैं। इसलिए विखंडनवादी पद्धति अपनाकर उत्तर आधुनिक युग से तालमेल बिठाने के लिए अपना नया नाम पॉल गोमरा निर्मित करते हैं। पॉल गोमरा का दूसरा फैसला बदलते हुए तकनीकी समाज, बाजार उत्तर आधुनिक, उत्तर ऐतिहासिक यथार्थ के साथ तालमेल बिठाने और संवाद बनाने की गम्भीर व सुनियोजित कोशिश से जुड़ा है। पॉल गोमरा को स्कूटर चलाना नहीं आता है फिर भी वे प्रोविडेंट फंड से पैसे निकालकर स्कूटर खरीद लेते हैं।

स्कूटर खरीदना उनके आधुनिक होने का दूसरा उपक्रम है। पॉल गोमरा स्कूटर घर आने के बाद रात में स्वप्न देखते हैं। इस स्वप्न में आदिवासी झुंड जंगल में लोहे का एक अजीबो गरीब जानवर देखते हैं। यहाँ यह आदिवासी दूसरा कोई नहीं पॉल गोमरा ही थे और लोहे का अजीबो गरीब जानवर स्कूटर ही है, क्योंकि उनके जीवन में मशीन युग की पेट्रोल ईंधन से चलने वाली यह पहली टेक्नोलॉजी थी। स्कूटर घर में आने पर पत्नी व बच्चों का खुश व भावुक होना बताता है कि इस नये युग में कुछ अच्छी बातें अभी भी बची हुई है। पॉल गोमरा इस नये उत्तर आधुनिक युग में भरपूर जोश के साथ प्रवेश करना चाहते हैं परंतु वे इसमें फिट नहीं बैठ पाते हैं। उदयप्रकाश स्कूटर के रंग के माध्यम से पॉल गोमरा के जीवन में या आम आदमी के जीवन में प्रवेश करते नये युग उत्तर आधुनिक युग का संकेत करते हैं। कहानी में पॉल गोमरा अपने स्कूटर को गौर से देखते हैं–'हरा रंग–बिल्कुल हल्का, जैसे किसी पेड़ के नये–नये कोपल होते हैं। नवजात, सहजात, अकृत्रिम और प्राकृतिक।' लेखक स्कूटर को प्रकृति का ही विस्तार बताता है तथा स्कूटर के निर्माण में लगे सभी पुर्जों का विश्लेषण करता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रत्येक नया युग बीते हुए युग का ही विस्तार है। यहाँ लेखक यह संकेत करना चाहता है कि हमें नये युग में प्रवेश करते समय पुराने युग की अच्छी बातों को नजरअंदाज न करके उन्हें साथ लेकर आगे बढ़ना चाहिए तथा नये युग की कमियों को छोड़कर अच्छाइयों को ग्रहण करना चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध जिस प्रकार गाँधी जी ने चरखे का प्रतीकात्मक प्रयोग किया उसी प्रकार स्कूटर भी प्रतीकात्मक रूप से नव–औपनिवेशिक, भूमण्डलीकृत, उपभोक्तावादी, बाजारू, साम्राज्यवाद का सशक्त प्रतिरोध है।

उदयप्रकाश उत्तर आधुनिक युग के नेताओं पर भी कटाक्ष करते हैं। जिन नेताओं को आम आदमी चुनकर आगे भेजता है वे ही नेता आम जनता के प्रति क्रूरता, अमानुषिक बर्बरता तथा अत्याचार करने वाले लोगों के साथ खड़े हो जाते हैं। ऐसे लोगों को भारत रत्न जैसे देश के सर्वश्रेष्ठ सम्मान से नवाजते हैं। ऐसे नेताओं को भारतीय साहित्य की भी सही जानकारी नहीं होती है। लेखक कहानी में भ्रष्टाचार में संलग्न मंत्रियों, वित्त मंत्री, सरकार तथा परियोजनाओं में संलग्न विभिन्न लोगों का पर्दाफाश करता है। कहानी का नायक पॉल गोमरा इन सबको अपनी आँखों से देखता है।

पॉल गोमरा उस रात एक अजीबो गरीब नजारा देखते हैं–'इंडिया गेट से एक विशाल सीढ़ी ऊपर की ओर गयी हुई थी। इस पर लोग चींटियों, चूहों और छिपकलियों की तरह रेंग रहे थे। वे उस सूटकेस तक जाते और अपने दाँतों में नोटों की गड्डियाँ दबाकर नीचे कूद जाते। उनकी पीठ पर कागज की छोटी–छोटी चिप्पियाँ चिपकी थीं, जिन पर ग्रामीण विकास, रोजगार आवास, सड़क, साक्षरता, प्लेग, गरीबी, चेचक, परिवार कल्याण, राहत, भूकम्प, पर्यावरण, शौचालय, संस्कृति, एड्स, साहित्य आदि लिखे हुए थे। हर शब्द के अन्त में एक अन्त:सर्ग था, जो हर चिप्पी पर मौजूद था–'परियोजना।' यहाँ लेखक सीधा–सीधा आम जनता के लिए बनाई गई परियोजनाओं में लगने वाले पैसों की बात कर रहा है। यह पैसा परियोजनाओं में न लगकर सीधे उन लोगों की जेबों में पहुँच जाता है जो इन परियोजनाओं से जुड़े हैं। गरीब आम जनता के जीवन स्तर को सुधारने वाला पैसा बीच में ही हड़प लिया जाता है और गरीब जनता की स्थिति वैसी की वैसी बनी रह जाती है। पॉल गोमरा के रूप में लेखक सामान्य पाठक को इस स्थिति से अवगत कराता है कि यह नया युग कितना क्रूर है। जो लोग जनता का पैसा खाते हैं, वे अधिकांश लोग पॉल गोमरा के जाने–पहचाने हैं। उनके मन में मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में' की पंक्तियाँ गूँजने लगती है–

'चेहरे वे मेरे जाने-बूझे से लगते
उनके चित्र समाचार-पत्रों में छपे थे
उनके लेख देखे थे
यहाँ तक की कविताएँ पढ़ी थीं
भई वाह!
उनमें कई प्रकांड आलोचक, विचारक,
जगमगाते कविगण
मंत्री भी, उद्योगपति और विद्वान
यहाँ तक की शहर का हत्यारा कुख्यात
डोमा जी उस्ताद।'

स्पष्ट है कि पॉल गोमरा ने जिन लोगों को भी देखा वे जाने-माने, नामी-गिरामी लोग थे, सशक्त थे। कुछ के फोटो समाचार पत्र में देखे थे तो कुछ की कविताएँ भी पढ़ी थीं, कुछ साहित्यकार, आलोचक, विचारक थे, वहीं मंत्री, उद्योगपति, विद्वान के साथ-साथ कुख्यात अपराधी भी आम जनता का पैसा लूटने में शामिल थे। इस परिवर्तित होते समाज तथा नये युग में भ्रष्ट नौकरशाही का बोलबाला है।

लेखक कहानी में लोगों द्वारा दिए जाने वाले झूठ व धोखे को भी उजागर करता है। पॉल गोमरा जब अपने एक मित्र इकबाल जाफरी से स्कूटर चलाना सिखाने की बात करते हैं तो मित्र एक शर्त के साथ यह बात स्वीकार कर लेता है। पॉल गोमरा, इकबाल को शर्त अनुसार सब कुछ खिलाते-पिलाते हैं परंतु जब स्कूटर चलाना सिखाने की बात आती है तब अंत में इकबाल जाफरी यह स्वीकार कर लेते हैं कि उन्हें स्कूटर चलाना नहीं आता। इस प्रकार लेखक बदलते परिवेश में बदलते महानगरीय लोगों का सच उजागर करता है, जो दूसरे लोगों को भ्रम में रखते हैं, दिखावा अधिक करते हैं परंतु वास्तविकता कुछ और ही होती है। इसी क्रम में पॉल गोमरा की काले-कलूटे, दुबले-पतले, दाढ़ी वाले हँसमुख राजीव मेनन से मुलाकात होती है। राजीव मेनन पॉल गोमरा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है और दोनों रोज स्कूटर पर आने-जाने लगते हैं। इसी दौरान पॉल गोमरा को एक आयोजन में शामिल होने का इनविटेशन कार्ड मिलता है। जिसमें किसी मंत्रालय के सचिव स्तर के एक प्रशासनिक अधिकारी को एक साथ पद्मश्री, साहित्य विभूषण, वेदव्यास सम्मान तथा मोकांजी कम्पनी द्वारा दस लाख रुपये का 'सृजन शिखर' पुरस्कार दिया जाना है। पॉल गोमरा राजीव मेनन से इस प्रोग्राम में शामिल होने की बात कहता है तब राजीव मेनन कहता है कि 'लिसेन पॉल, ये प्रोग्राम तुम्हारे जाने का नहीं है। इतने दिनों से तुम्हारा साथ रहकर हम तुम्हारा नेचर समझ गया है। तुम्हारा दुनिया अलग है, उन लोगों का अलग है। दे आर पॉवरफुल मनीड पीपॅल। यू आर ए पुअर, सिम्पल, वीक हिंदी पोएट डोंट गो देयर' इससे स्पष्ट होता है कि आज पूँजी ने कला को अपने कब्जे में कर रखा है।

कोई कलाकार तब तक प्रतिष्ठित या प्रसिद्ध नहीं हो सकता जब तक की उसके पास अधिक धन, पद तथा बड़े-बड़े पूँजीपतियों द्वारा सम्मानित न किया जाये। सचिव जैसे प्रशासनिक अधिकारी अपने पद व धन के कारण विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किये जाते हैं। उनका कवि रूप में सम्मान मोकांजी ग्रुप की कम्पनी करती है जो स्वयं किसानों पर कभी अत्याचार व शोषण कर नील की खेती करवाया करती थी। इस प्रकार भूमण्डलीकरण, उपभोक्तावादी, बाजारवादी युग में सच्ची रचनात्मक प्रतिभा कहीं गुम हो जाती है। पॉल गोमरा जैसे अच्छे कवि हाशिए पर आ जाते हैं। वे इस नये समय में अनफिट सा महसूस करते हैं तथा अपने भीतर घुटते दिखाई देते हैं। वे अपनी कविता के माध्यम से कहते हैं-

'मैं नहीं बन सकता सीवेज पाइप
अपने भीतर से नहीं गुजर जाने दूँगा मैं
ये सारा कीचड़, इस बूढ़ी सदी की विष्ठा'

समाज के भ्रष्ट लोगों के प्रति पॉल गोमरा का जो क्षोभ है वह उनके भीतर ही हुमड़ कर रहा जाता है। यह पॉल गोमरा के जीवन की त्रासदपूर्ण विडम्बना है।

उदयप्रकाश ने कहानी में फैंटेसी का प्रयोग भी बड़े ही सटीक रूप में किया है। इसमें लेखक ने फैंटेसी के माध्यम से विसंगत यथार्थ को उभारने की कोशिश की है। फैंटेसी कथा-कल्पना के माध्यम से जीवन की विसंगतियों को उघाड़ती है तथा पाठक को सजग करती है। यह सामाजिक यथार्थ की कटुताओं का तीव्र व मुखर एहसास कराने का सशक्त व्यंग्यात्मक साधन है। फैंटेसी के माध्यम से यथार्थ की सम्यक अभिव्यक्ति की जाती है। कहानी में पॉल गोमरा की कई स्थानों पर विक्षिप्त-सी स्थिति दिखायी जाती है। इस विक्षिप्त सी स्थिति में लेखक पॉल गोमरा द्वारा कई सारे सत्य उद्घाटित करवाता है। स्कूटर के संदर्भ में देखा स्वप्न जिसमें अबूझमाड़ या अलीराजपुर का जंगल हो या विभिन्न परियोजनाओं के संदर्भ में मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में' या दुर्घटना के बाद होने वाली विभिन्न घटनाएँ जिनमें दांडी

मार्च, क्विट इंडिया, स्वदेशी आंदोलन, आजाद हिंद फौज का तराना, अल्लामा इकबाल का गीत आदि सभी घटनाएँ फैंटेसी के माध्यम से विसंगत होते यथार्थ को हमारे सामने रखती हैं। पॉल गोमरा सपरिवार नष्ट हो जाता है। दुर्घटना में पॉल गोमरा के मित्र राजीव मेनन की मृत्यु हो जाती है, स्वयं पॉल गोमरा विक्षिप्त हो जाते हैं। दिल्ली के संग्रहालय में रखे सफेद रंग के एक दुशाले पर जिस प्रकार के काले-पड़े खून के धब्बे हैं ठीक उसी प्रकार के धब्बे पॉल गोमरा तथा उनके मित्र राजीव मेनन के उनके दुर्घटना ग्रस्त टूटे-फूटे स्कूटर पर लगे हैं। इससे लेखक यह स्पष्ट करना चाहता है कि इस नव-औपनिवेशिक जाल में फँसती दुनिया को गाँधी जैसे व्यक्तित्व की आवश्यकता नहीं है। दुनिया स्वयं इस उत्तर-आधुनिकता की ओर बढ़ते नव-औपनिवेशिक जाल में रहना चाहती है। भूमण्डलीकरण के कारण वर्तमान समाज एक खुला मालगोदाम और विशाल उपभोक्ता बाजार बन गया है। ऐसे सामाजिक परिवेश में पॉल गोमरा कुछ नहीं रह गए न कवि, न नागरिक, न शायद ठीक ढंग से मनुष्य ही। पॉवरफुल मनीड पीपल से लड़ाई लड़ते हुए पुअर, सिंपल, वीक हिंदी पोयट विक्षिप्त हो जाते हैं। उनकी लिखी कविता की अन्तिम पंक्तियाँ-

'जो प्रजातियाँ लुप्त हो रही हैं,
यथार्थ मिटा रहा है जिनका अस्तित्व
हो सके तो हम उनकी हत्या में न हों
शामिल
और संभव हो तो सँभालकर रख लें
उनके चित्र . . .
ये चित्र अतीत के स्मृति चिह्न हैं।'
(- पॉल गोमरा, 15 अगस्त, 1995)

यह कविता पॉल गोमरा द्वारा लिखी गयी है और शायद उनके द्वारा लिखी अंतिम कविता है। इस पर 15 अगस्त, 1995 की तारीख अंकित है। यह समय हमें भूमण्डलीकरण, उपभोक्तावाद, बाजारवाद उदारीकरण की ओर बढ़ते भारत का दृश्य स्पष्ट करती है। यहाँ पॉल गोमरा के माध्यम से लेखक कहना चाहता है कि जिस पुरानी पीढ़ी का अस्तित्व मिटता जा रहा है उसे हमें सँभालकर रखने की आवश्यकता है। अतीत की स्मृति में जो संस्कार, संस्कृति, नैतिक मूल्य है, जिनसे हमारा देश पतन की ओर न जाकर उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो, जनता में मूल्यहीनता पैदा ना हो, लोकतांत्रिक अवमूल्यन ना हो अत: ऐसे स्मृति चिह्न हमें सँभालकर रखने होंगे।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि उदयप्रकाश कहानी में जिस कल्पना, अटकल और फैंटेसी का प्रयोग करते हैं, संभवत: वही एक मात्र रास्ता यथार्थ को प्रकट करने का हो सकता है। यथार्थ निरूपण की इस प्रविधि का सबसे बड़ा रचनात्मक प्रतिफल यह होता है कि कहानी के पाठ की अनंत संभावनाएँ पाठक के सामने खुलती चली जाती हैं। लेखक ने जिस कल्पना, अटकल, फैंटेसी के माध्यम से आधुनिक समाज को व्याख्यायित करने की कोशिश की है वह और कुछ नहीं जादुई यथार्थवाद ही है। जादुई यथार्थवाद हिंदी में यथार्थ के काल्पनिक अतिक्रमण की एक प्रविधि के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इतिहास दृष्टि, सांकेतिक और निहित अर्थ के रूप में यहाँ उपस्थित रहती है। हिंदी कहानी का यह एक बदला हुआ और नया शिल्प है जिसके केन्द्र में पाठक होता है। जादुई यथार्थवादी शैली का प्रयोग कर लेखक पॉल गोमरा के साथ हुई घटनाओं के बारे में जब बताते हैं तो यह लगता है कि आधुनिक समाज में हिंदी कवि जो गरीब, साधारण और कमजोर है, उसकी नियति सिर्फ विक्षिप्त होने में है। वह समाज की विसंगति से त्रस्त होकर कविताएँ करता है तथा स्वाधीनता संग्राम के गीत गाते हुए मर जाता है। इसी के साथ उदय प्रकाश कहानी के माध्यम से आधुनिकता, उदारीकरण, भूमण्डलीकरण, उत्तर-आधुनिकता, उपभोक्तावाद, बाजारवाद आदि के कारण भारतीय समाज व संस्कृति पर पड़े प्रभाव को भी उद्घाटित करते हैं। इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने हमारी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को पूरी तरह से तहस-नहस कर दिया है। उपभोक्तावादी संस्कृति तथा बाजारवाद के पड़े कुप्रभाव को बड़े ही सटीक रूप में कहानीकार ने चित्रित किया है। उपभोक्तावादी संस्कृति का कुप्रभाव मध्यवर्ग पर बहुत अधिक पड़ा है जिसका बड़ी संजीदगी से प्रस्तुतीकरण किया है। आजाद भारत के इतिहास में यह कहानी पूरे सिस्टम के ऊपर सवाल उठाती है। उदयप्रकाश ने कहानी में जादुई यथार्थवाद का प्रयोग तत्कालीन यथार्थ को अधिक सूक्ष्म स्तर पर अभिव्यक्त करने के लिए किया है। शताब्दी के अंतिम पड़ाव में अंधाधुंध होते हुए निजीकरण, भूमंडलीकरण, विकसित होती बाजारी संस्कृति का चित्रण इस कहानी में देखने को मिलता है।

शोधार्थी,
हिंदी विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर-313002 (राज.)
मो.-9413616920

चार का चातुर्य

– उमाशंकर चतुर्वेदी

जन्म – 11 सितंबर 1940।
शिक्षा – एम.ए., एम.एड.।
रचनाएँ – ग्यारह पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – प्रादेशिक एवं अखिल भारतीय सम्मान।

चार का अंक इतना चतुर, चुस्त, चंचल और चालाक है कि उसने हर क्षेत्र में, हर जगह अपनी पैठ बना ली है। बातचीत, भाषा, लोकभाषा, कहावत, मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों, शास्त्रों और वेद पुराणों में अर्थात् सभी जगह तो चार का अंक बैठा हुआ है। चार अंक की चपलता चौदह लोकों में देखने और पढ़ने को मिलती है। अब यहीं से लीजिए कि हमारी चार दिशाएँ हैं-पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण। आदि शंकराचार्य ने देश की अखंडता और भाई चारे की भावना को बनाए रखने के लिए देश की चार दिशाओं में, चार धामों की स्थापना की थी। पूर्व दिशा में जगन्नाथपुरी धाम, पश्चिम में द्वारिका धाम, उत्तर में बद्रीधाम, और दक्षिण में रामेश्वर धाम। हमारे चार वेद हैं-ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद। देश के चार प्रमुख तीर्थों पर कुम्भ मेले का आयोजन होता है- ये चार तीर्थ हैं-प्रयागराज, उज्जैन, हरिद्वार तथा नासिक। सृष्टि के निर्माता ब्रह्मा जी के चार मुख हैं इसीलिए उन्हें चतुरानन कहा जाता है। विष्णु भगवान की चार भुजाएँ हैं इसलिए उनका एक नाम चतुर्भुज भी है। वे अपनी चारों भुजाओं में चार अलग-अलग चीजें-शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हैं। हमारे जीवन की चार अवस्थाएँ होती हैं, बचपन, युवावस्था प्रौढ़ अवस्था और वृद्धावस्था। कुछ लोग बचपन, किशोर अवस्था, युवा अवस्था और वृद्धावस्था ये चार अवस्थाएँ मानते हैं। शास्त्रों में जीवन को चार आश्रमों में बाँटा गया है-ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम भी चार भाई थे-राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। हमारे आदि देवता गणेश जी चार भुजाओं वाले हैं-एकदंत दयावंत चार भुजाधारी। गणेश जी-विवेक, विद्या, बुद्धि और बल चार गुण वाले हैं। नीति धर्म के चार चरण होते हैं- साम, दान दण्ड और भेद। ये चार राजाओं के हृदय में बसते हैं-साम, दाम, अरु दण्ड विभेदा, नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा। कोई काम निकालने या किसी पर विजय प्राप्त करने के लिए साम, दाम, दण्ड और भेद इन चार उपायों का प्रयोग किया जाता है। मानव अपने जीवन में चार पदार्थ चाहता है और ये चार पदार्थ हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। चार युग होते हैं-सतयुग, त्रेता युग, द्वापर युग और कलियुग। अपने भागवत पुराण के चार अक्षर क्रमशः भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और तरण (मोक्ष) के प्रतीक हैं। भागवत से भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और मोक्ष की प्राप्ति होती है। संत कहते हैं कि अपनी वाणी में भक्ति, प्रताप, तेज और बल ये चार बातें होनी चाहिए। कुछ न हो तो वाणी के साथ मुस्कुराहट रखिए।

कहते हैं कि आदमी के पूर्वज चार पैरों वाले बन्दर थे। होते-होते वे बन्दर आज आदमी के रूप में परिवर्तित हो गए जिनके चार पैरों के स्थान पर दो पैर और दो हाथ हो गए, लेकिन संख्या फिर भी चार ही रही। हमारी चार आँखें बताई गई हैं-दो बाहरी चक्षु और दो अन्त: चक्षु। सभी जानवर भी चार पैरों वाले होते हैं इसीलिए उन्हें चौपाए कहते हैं। छोटे जानवर, कई कीड़े-मकोड़ों के भी चार पैर ही होते हैं। रथ के भी चार पहिए होते हैं। तुलसी बाबा ने भी रामायण में श्रीराम के मुख से धर्मरथ के घोड़े भी चार बताए हैं और वे चार घोड़े हैं-बल, विवेक, दम और परोपकार, जो क्षमा, कृपा और समता की रस्सी से बँधे हैं-'बल, विवेक, दम, परहित घोरे, क्षमा, कृपा, समता रजु जोरे'। श्री कृष्ण के रथ गरुढ़ध्वज' में भी श्वेतरंग के चार अश्व हुआ करते थे। श्री कृष्ण ने उनके नाम रखे थे- शैव्य, सुग्रीव, बलाहक और मेघपुष्प। देश की तीन ऋतुएँ भी चार-चार महीने की होती है। चौमासा तो सर्व प्रसिद्ध है। वर्षाकाल के चार महीनों को चौमासा कहते हैं। चौमासे में ही जीवनदाता झलाझल जल बरसता

है। संत जन चौमासे में एक जगह ठहरकर अपनी साधना करते हैं। हिन्दू मान्यता अनुसार देवतागण इन चार महीनों में सोने चले जाते हैं और फिर कार्तिक में देवउठनी एकादशी पर जागृत होते हैं। अपने देश में मुख्यत: चार ही जातियाँ थी–हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, सब मिलकर हैं भाई–भाई। कर्म के हिसाब से चार वर्ण थे–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। चारपाई के कितने ही आधुनिक स्वरूप बदल गए हैं लेकिन चारपाई के पाए चार ही हैं। पलँग या चारपाई चाहे राजा के हों या रंक के, उनके पाए चार ही होंगे। कुर्सी, मेज के भी चार पाए ही होते हैं। कारों में चार पहिए ही होते हैं, कार का मॉडल कोई भी हो। शादी की डोली में भी चार लोग लगते हैं और अंत समय में भी चार के कंधे पर जाते हैं। घर के दरवाजे खिड़कियों की चौखट भी चार भुजाओं की चौकोर होती है और दरवाजे भी चौकोर ही होते हैं। आदमियों और महिलाओं की धोतियाँ, साढ़ियाँ भी चार कोर की होती हैं। क्रिकेट में चौका लगता है तो कितनी प्रसन्नता होती है। चार भुजाओं वाली आकृति को चतुर्भुज या चौखटा कहते हैं। चार रास्ते जहाँ आकर मिलते हैं उसे चौराहा कहते हैं। जिस चौराहे पर रोशनी के लिए चार बत्तियाँ लगी हों उसे चारबत्ती चौराहा कहते हैं। हैदराबाद की चारमीनार बहुत प्रसिद्ध है। किसी वस्तु, मनुष्य या उसके कार्यों का मूल्यांकन भी चार श्रेणियों में किया जाता है–सर्वश्रेष्ठ, श्रेष्ठ, अच्छा और खराब। अंग्रेजी में चार के अक्षर को फोर कहते हैं और उसमें भी चार अक्षर होते हैं। अंग्रेजी में भी मूल्यांकन के चार ग्रेड ही हैं–ए ग्रेड, बी ग्रेड, सी ग्रेड और डी ग्रेड। मनुष्य के चार दुर्गुण बताए गए हैं और वे हैं– काम, क्रोध, लोभ और मोह। साधु संतों के चार सम्प्रदाय हैं। धर्म के चार चरण होते हैं–सत्य, शौच, दया और दान। रामायण में भी चार अक्षर है। तुलसी बाबा लिखते हैं कि मानव जीव माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण, इन चार बातों में घिरा रहता है, भटकता रहता है। अविनासी जीव चार खण्डों में बँटा है–अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज।

चार के अंक को लेकर अनेक कहावतें, मुहावरे और लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं। चार आँखें करना का मतलब परस्पर नजर मिलाना होता है। चार के काँधे चढ़ने का तात्पर्य मृत व्यक्ति को ले जाना होता है। चार चाँद लगने का मतलब सौंदर्य वृद्धि और चार चाँद लगाना का मतलब सौंदर्य में अनुपम वृद्धि होना है। 'चार पैसे कमा लेना' अर्थात् कुछ धन कमा लेना, 'चार सौ बीस होना' अर्थात् धूर्त होना, 'चार सौ बीसी करना'–अर्थात् धोखा देना, चार–पाँच करना अर्थात् ठीक से बात न करना होता है। चारपाई पकड़ना, चारपाई से पीठ लगना और चारपाई से लगना तीनों का मतलब बीमार होना होता है। चारपाई सेना' का तात्पर्य आलस में पड़े रहना होता है। चारों दिशाएँ गूँजना का मतलब सब ओर मधुर स्वर सुनाई पड़ना, 'चारों खाने चित्त' का मतलब पूरी तरह परास्त होना और 'चारों खाने चित्त करना' का तात्पर्य ऐसा पटकना कि उठ न सके, होता है। 'चार दिन की चाँदनी, फिर अँधियारी रात' मुहावरे का अर्थ होता है–थोड़े समय का सुख, चार अक्षर पढ़ लेना का तात्पर्य थोड़ा ज्ञान और चार कदम का मतलब पास में ही होता है। कुछ दिन जीने वाले के लिए कहा जाता है कि वह चार दिन का मेहमान है। चार–पाँच करना अर्थात् बहाना बनाना, चार पैसे होना मतलब पास में धन होना, चार–पाँच की लाकड़ी का मतलब मिलजुल कर काम करना होता है। कुछ लोग जब तक चार बातें न कर लें उन्हें चैन नहीं आता है। एक कहावत है कि–'चार जनें मिल कीजै काजा, हारै जीते आय न लाजा'। जो समझदार होता है उसके लिए मुहावरा है कि पढ़े–लिखे की चार आँखें। कहा गया है कि नारी, लकड़ी का पटा घर, कुएँ का जल और बरगद की छाँह, ये चार गर्मी और सर्दी में विपरीत गुण रखते हैं। इसके लिए कहावत है कि–नारि, पटौहा, कूप–जल अरु बरगद की छाँह/गर्मी में शीतल रहें, ठंडी में गरमाँह। सूम व्यक्ति की सेवा, बहिन के घर रहने वाला भाई, बुरे लक्षणों की स्त्री और घर जमाई होना चे चार स्थितियाँ अच्छी नहीं बताई गई हैं–'बुरौ सूम को सेव, बुरौ भगिनी घर भाई/बुरी कुलच्छिन नारि, सास घर बुरौ जमाई।' इसी प्रकार प्रेम का पंथ, जंगल का वास, परस्त्री प्रेम और मूर्ख व्यक्ति से हँसी मजाक बुरे बताए गए हैं– बुरौ प्रीति कौ पंथ, बुरौ जंगल कौ वासौ/बुरौ नारि को नेह, बुरौ मूरख सों हाँसौ। वानर के हाथ मोतियों की माला, अज्ञानी के हाथ में वेद, जोगी के पास परम सुन्दरी और कायर व्यक्ति के हाथ लड़ाई की कमान, ये स्थितियाँ सही नहीं होती हैं–'मुक्तामाल वानर लिए वेद लिए अज्ञान/परम सुन्दरी जोगी लिए, कायर हाथ कमान। माली, धोबी, साधू और चोर ये चार आपनी आवश्यकतानुसार अपनी बात सोचते हैं–'माली चाहे बरसना, धोबी चाहे धूप/साधू चाहे बोलना, चोर चाहिए चूप।'

इसी प्रकार नींद, प्यास, भूख और प्यार ये चार चीजें मुश्किल

से बस में होती हैं इसलिए कहा गया है कि–'नींद न जानें टूटी खाट, प्यास न जाने धोबी घाट/ भूख न जानें बासी भात, इश्क न जाने जात, कुजात।' कहा गया है कि खेती, पत्र लिखना, विनती करना और घोड़े की जीन सँभालना ये चार काम अपने हाथ से ही करना चाहिए-'खेती, पाती, वीनती, अरु घोड़े की तंग/ अपने हाथ सँभालिए, चाहे लाख हो संग।' अपने शरीर पर ये चार चिह्न अर्थात् तिल, लहसुन, भौंरी और मस्सा दाहिने अंगों में हो तो हमेशा लक्ष्मी साथ रहती है–तिल, लहसुन, भौंरी, मसा, होय दाहिने अंग/ जाय बसौ वनखंड में रहै लक्ष्मी संग।' लोक मानस में मान्यता है कि पूनम के बाद की प्रतिपदा, अमावस के बाद की द्वितीया, त्रयोदशी और तीज ये चार शुभ मुहूर्त होते हैं– 'पूनम की पड़वा, अमावस की दोज/ बिना विचारे करलो तेरस और तीज। पीर बावर्ची, भिस्ती और खर ये चार काम जो करले ऐसे कम लोग ही होते हैं–इसलिए कहा गया है कि–पीर, बावर्ची भिस्ती, खर/ खोजो कोई ऐसा नर। सम्मिलित जिम्मेदारी जब नहीं निभती है तो कहा जाता है कि 'चार घर कौ पावनो, भूखो रह जाय।'

वेदों, पुराणों, स्मृतियों एवं अन्य धर्मग्रन्थों में भी चार को ध्यान में रखकर अनेक बातें कही गई हैं। तुलसीबाबा लिखते हैं कि गुरु, मित्र, अच्छे मालिक और साधुजन ये चार लोग यही कहते हैं कि पेड़ से पका फल ही तोड़कर खाना चाहिए। एक राजा को भी कर वसूलते समय यही नीति अपनानी चाहिए। इसी प्रकार वे लिखते हैं कि इन चार लोगों को–जो जीवद्रोही हैं, मोह के बस में हैं, राम विमुख हैं और कामासक्त हैं, उन्हें स्वप्न में भी सम्पत्ति, शुभ शकुन और चित्त की शांति नहीं मिलती है। वाल्मीकि रामायण में धर्म के चार गुण बताए गए हैं। धर्म से अर्थ उत्पन्न होता है, धर्म से सुख प्राप्त होता है, धर्म से सबकुछ मिलता है और धर्म ही संसार का सार है। इसी रामायण में लिखा है कि सज्जनों ने चार प्रकार के व्यक्तियों के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया है–गौ हत्या करने वाले, सुरापायी, चोर और व्रत भंग करने वाले। अथर्ववेद में इन चार से प्रार्थना की गई है– प्रकंपित पृथ्वी हमारे लिए कल्याण प्रद हो, उल्कापात हमारे लिए शांतिदायक हो, दुधारू गाएँ हमारा कल्याण करें और फटती हुई भूमि भी हमारे लिए शांतिदायक हो।

सामवेद में चार देवों की इस प्रकार प्रार्थना की गई है–इन्द्र हमारा कल्याण करें, सर्वज्ञ पूषादेव हम सभी को कल्याणकारक हो, अनिष्ट निवारक गुरु जी हमारा कल्याण करें और वृहस्पति जी भी हम सब को कल्याणकारी हों। यजुर्वेद में चार बातों के लिए प्रार्थना की गई है–मेरी दृष्टि को दृढ़ कीजिए, सभी प्राणी मुझे मित्रवत देखें। मैं भी सभी को मित्रवत् देखूँ और हम सभी परस्पर एक–दूसरे को मित्रवत् देखें। महाभारत उद्योग पर्व में कहा गया है कि ये चार बातें ही अकेले सब कुछ होती हैं–केवल एक धर्म परम श्रेयस्कर है, एक मात्र क्षमा ही शांति का सर्वोत्तम साधन है, एक मात्र विद्या ही परातृप्ति है और एक मात्र अहिंसा ही परम सुख प्रदान करने वाली है। इसी उद्योगपर्व में आगे कहा गया है कि ये चार प्रकार के व्यक्ति सफल होते हैं–प्रिय वचन बोलने वाला प्रिय होता है, विवेकी व्यक्ति सफल होता है, अधिक मित्र बनाने वाला सुखी रहता है और धर्मपरायण व्यक्ति सुगति प्राप्त करता है। महाभारत वन पर्व में कहा गया है कि तृष्णा के चार अवगुण होते हैं–तृष्णा पापिष्ठा है, उद्वेग उत्पन्न करती है, अधर्म कराती है और पापों के बंधन में डालती है। इसी में आगे लिखा है कि ये चार चीजें सत्य परायण पुरुष की कामना करती है–पृथ्वी, कीर्ति, यश, और लक्ष्मी। महाभारत अनुशासन पर्व में सत्य के चार लक्षण या गुण बताए गए हैं– सत्य के प्रताप से सूर्य तपता है, सत्य से ही अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, सत्य के प्रभाव से ही वायु चलती है और सत्य में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। महाभारत शांति पर्व में वाणी की चार विशेषताऐं बताई गई हैं–व्यर्थ बोलने की अपेक्षा न बोलना, सत्य बोलना, प्रिय बोलना और धर्म सम्मत बोलना। गाथा सप्तपदी में लिखा है कि ये चार बातें याद रखना चाहिए–धन वही जो हाथ में हो, मित्र वही हो विपत्ति में साथ दे, रूप वही जिसमें गुण हो और विज्ञान वही जिसमें धर्म हो। कालिदास कृत विक्रमोर्वशीयम् में चार प्रार्थनाएँ की गई हैं–सभी लोग कठिनाइयों से पार उतरें, सभी कल्याण को देखें, सभी अपना अभीष्ट प्राप्त करें और सभी सर्वत्र आनन्दित रहें। कालिदास जी की ही कृति मालती–माधव में भी इसी प्रकार चार प्रार्थनाएँ की गई हैं–सब का कल्याण हो, दूसरों के कल्याण में प्राणी संलग्न रहें, सभी दोष शांत हों, और लोग सदा सर्वत्र सुखी रहें। सन्तजन अपने प्रवचन समाप्ति पर ये चार बातें कहते हैं–धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो और विश्व का कल्याण हो।

ऋग्वेद में चार कामनाएँ की गई हैं तेजोमय सूर्य हमारा कल्याण

करता हुआ उदित हो, चारों दिशाएँ हमारा कल्याण करने वाली हों, अटल पर्वत कल्याणकारी हों और नदियाँ हमारा हित करने वाली हों जिनका जल कल्याणकारी हो। ऋग्वेद में ही आगे चार और कामनाएँ की गई हैं-सविता हमारा कल्याण करे, उषा देवी हमें सुख प्रदान करें, पर्जन्य देव हमारी पूजा के लिए कल्याण कारक हों, और क्षेत्रपति शंभु भी हम सब को शान्ति प्रदान करें। कथा-सरित्सागर में चार चीजों की चार विशेषताएँ बताई गई हैं- सभा वही जिसमें सभ्यजन हों, सभ्य व्यक्ति वही जो धर्म का उपदेश करता हो, धर्म वही जिसमें सत्य हो, और सत्य वही जिसमें कपट न हो। मनुस्मृति कहती है कि ये चार काम नहीं करना चाहिए अन्यथा नुकसान होता है-असत्य कहने से यज्ञ नष्ट हो जाता है, अहंकार से तपस्या नष्ट होती है, विप्र निन्दा से आयु क्षीण होती है और कह देने से दान नष्ट हो जाता है। मनुस्मृति में आगे लिखा है कि सज्जनों के घर से ये चार चीजें कभी नष्ट नहीं होती हैं-तृण, भूमि, जल और मधुर वाणी। शुक्रनीति कहती है कि वार्तालाप में चार बातों का ध्यान रखना चाहिए-बिना पूछे किसी को घर की बात न बताए, वार्ता कार्य सिद्ध करने वाली हो, वार्ता अधिक अर्थयुक्त हो और वार्ता में कम शब्दों का उपयोग हो। कामन्दकीय नीतिसार में कहा गया है कि जिनमें ये चार गुण हों वे मनुष्य शरीर धारी देवता ही हैं-जो प्रिय वाणी बोलते हैं, जो सब का सत्कार करते हैं, जो शोभा सम्पन्न हैं और जो अनिन्द्य चरित्र सम्पन्न हैं। इसी ग्रंथ में लिखा है कि चार प्रकार के ही बचन बोलना चाहिए- प्रिय, सत्य, हितकर और धर्मयुक्त। बुद्ध चरित्र में क्षमा के बारे में चार बातें बताई गई हैं- क्षमा पराशक्ति है, क्षमा परम तप है, क्षमा ही धर्म का मूल है और क्षमा ही सर्व हितकारी है।'महावीर चरित' में लिखा है कि मैत्री रूपी व्रत के चार लक्षण होते हैं- अपने प्राणों से भी हित करना, द्रोह भावना से रहित होना, कपट का त्याग और मित्र का अपनी तरह प्रिय-सम्पादन करना। तुलसी बाबा ने रामायण में लिखा है कि इन चार प्रकार के व्यक्तियों अर्थात् ममता में फँसे व्यक्ति से ज्ञान की कथा, लोभी से वैराग्य की बात, क्रोधी से शान्ति की बात और कामी से हरि कथा कहना व्यर्थ होता है। आगे तुलसीबाबा ने लिखा है कि छोटे भाई की पत्नी, बहिन, लड़के की पत्नी तथा कन्या ये चार बेटी समान होते हैं-अनुज वधु, भगिनी, सुतनारी, सुन सठ कन्या सम ये चारी'। रामायण में आगे कहा गया है कि चार व्यक्तियों-गुरु, माता, पिता और स्वामी की आज्ञा में अपना भला जानकर माननी चाहिए-गुरु, पितु, मातु, स्वामि हितवानी/ सुनि मन मुदित करिअ भल जानी। उधर कबीरदास जी ने चार प्रकार के लोगों के चार अलग- अलग गुरु बताए हैं-'कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम/ कबीर का गुरु सन्त है, संतन का गुरु राम'।

चाणक्य नीति तो चार के पीछे ऐसी पड़ी है कि चार को महिमा मंडित ही कर दिया है। महामति चाणक्य लिखते हैं कि जिस देश में ये चार बातें न हों, वहाँ नहीं रहना चाहिए। जिस देश में सम्मान न हो, आजीविका के साधन न हों बन्धु-बान्धव न हों और विद्याप्राप्ति के साधन न हों, वहाँ न रहें। आगे वे लिखते हैं कि इन चार की परीक्षा इस तरीके से करना चाहिए-नौकरों को बाहर भेजने पर, बन्धुबान्धवों को संकट के समय, विपत्ति में दोस्त को और धन नष्ट होने पर अपनी पत्नी को परखना चाहिए। चाणक्य नीति में कहा गया है कि ये चार स्थितियाँ अनुचित नहीं हैं -विष से अमृत लेना, अशुद्ध स्थान से सोना लेना, नीच कुल वाले से विद्या तथा दुष्ट स्वभाव कुल की गुणी कन्या को ग्रहण करना। इन चार के ये गुण बताए हैं-पुत्र वही जो पिता भक्त हो, पिता वही जो बच्चों का पालन करे, मित्र वही जिसमें पूर्ण विश्वास हो, स्त्री वही जिससे परिवार में सुख शान्ति हो। इन चार को विशिष्ट स्थानों पर ही खोजना पड़ता है-मणि प्रत्येक पर्वत पर नहीं मिलती है, हर हाथी में मुक्तामणि नहीं होती, साधु लोग सभी जगह नहीं मिलते हैं और चन्दन भी हर जंगल में नहीं होता है। आचार्य चाणक्य वर्ण व्यवस्था की शक्तियों का परिचय देते हुए लिखते हैं कि चार वर्णों में ब्राह्मण का बल विद्या, क्षत्रिय राजा का बल उसकी सेना, वैश्य का बल उसका धन और शूद्र का बल सेवा धर्म है। ये चार अपना काम निकल जाने पर अपने साथ वाले को छोड़ देते हैं। वेश्या निर्धन मनुष्य को, प्रजा अपने पराजित राजा को, पक्षी, फलरहित वृक्ष को तथा अतिथि अपने आतिथेय को भोजनोपरान्त छोड़ देते हैं। ये चार अपने सही स्थिति या स्थान पर ही शोभा पाते हैं। मित्रता बराबर वालों में शोभा पाती है, नौकरी राजा की अच्छी, व्यवहार में व्यापारी और घर में सुन्दर स्त्री शोभा पाती है। ये चार स्थितियाँ सभी में मिलेंगी-ऐसा कौन जिसके कुल में दोष न हो, ऐसा कौन है जो दुखी न हो, अवगुण रहित कौन है और सदैव सुखी कौन रहता है?

मनुष्य के चार लक्षण उसकी असलियत दर्शाते हैं-आचरण

देखकर उसके खानदान का, बोली से देश का, आदर सत्कार से उसके प्रेम भाव का और उसके शरीर से उसके भोजन का पता चल जाता है। चाणक्य जी कहते हैं कि ये चार चीजें अच्छी प्रकार ध्यान देने योग्य हैं–कन्या का विवाह अच्छे कुल में, पुत्र को अच्छी विद्या, दुश्मन को विपत्ति में डालना और मित्र को अच्छे कार्यों में लगाना। इन चार की शोभा उनके कार्यों में है–कोयल की शोभा उसके स्वर में, स्त्री की शोभा उसके पतिव्रत धर्म में, पुरुष की शोभा विद्वता में और तपस्वी की शोभा क्षमा में है। इन चार परिस्थितियों में इस प्रकार आचरण करना चाहिए–कुल की रक्षा हेतु एक व्यक्ति, को गाँव की भलाई के लिए कुल को, देश की भलाई हेतु गाँव को और आत्म सम्मान की रक्षा के लिए पृथ्वी को भी छोड़ देना चाहिए। ये चार स्थितियाँ लाभकारी होती हैं–उद्योग धंधा करने पर निर्धनता नहीं रहती, प्रभु नाम जपने से पाप नहीं रहते, चुप रहने से लड़ाई–झगड़े नहीं होते और जो सजग रहता है उसे भय नहीं सताता है। इन चार के लिए कुछ भी असंभव नहीं–समर्थ को भार कैसा, व्यवसायी को दूर स्थान कैसा, विद्वान के लिए विदेश कैसा और मधुर भाषी का शत्रु कौन हो सकता है? इन चार परिस्थितियों में जो भाग जाता है वही जीवित रहता है–देश में उपद्रव होने पर, शत्रु आक्रमण के समय, भयानक दुर्भिक्ष में तथा दुष्ट का साथ होने पर।

चाणक्य नीति कहती है कि जिसके पास ये चार अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से एक भी नहीं उसका अंत तो मृत्यु ही है। चार स्थितियों में सूनापन बताया गया है–बिना पुत्र या पुत्री के घर सूना, बिना बन्धुबान्धवों के दिशाएँ सूनी, भावों के बिना मूर्ख का हृदय सूना और दरिद्रता सबसे सूनी है। ये चार परिस्थितियाँ विष के समान बताई गई हैं–अभ्यास के बिना विद्या भी विष बनती है, बिना पचा भोजन विष हो जाता है, दरिद्र के लिए स्वजनों की सभा या मिलन, तथा वृद्धों के लिए युवा स्त्री विष के समान है। इन चार को छोड़ देना चाहिए–दयाहीन धर्म को, विद्या विहीन गुरु को झगड़ालू स्त्री को तथा स्नेहहीन बन्धुबान्धवों को। ये चार परिस्थितियाँ बुढ़ापा ला देती हैं–बहुत ज्यादा रास्ता चलना, घोड़ों को एक ही स्थान पर बाँधे रखना, स्त्रियों के साथ पुरुष समागम न होना और वस्त्रों को धूप में डाले रखने से। स्वर्ण की परख चार प्रकार से होती है–घिसने से, काटने से, आग में तपाने से तथा पीटने से। इन चार के चार अलग–अलग शत्रु होते हैं–मूर्खों के पंडित, विधवाओं की सुहागिनें, वेश्याओं की पतिव्रताएँ और दरिद्रों के धनी शत्रु होते हैं। चार कमियों से ये चार नष्ट हो जाते हैं। आलस्य से विद्या, दूसरे के हाथ में गया धन, बीज की कमी से खेती और सेनापति के बिना सेना नष्ट हो जाती है। उसी प्रकार इन चार गुणों से चार की पहिचान होती है–स्वभाव से कुल के बड़प्पन का पता चलता है, श्रेष्ठता की पहिचान गुणों से, क्रोध को आँखों से जाना जा सकता है और अभ्यास से विद्या आती है।

महामति चाणक्य कहते हैं कि इन चार की रक्षा चार प्रकार से करनी चाहिए–धर्म की धन से, विद्या की साधना से, राजा की मृदु स्वभाव से, और घर की रक्षा पतिव्रता स्त्रियों से। ये चार अलग–अलग चार कारणों से नष्ट हो जाते हैं–दरिद्रता दान से, दुर्गति शालीनता से, मूर्खता सद्बुद्धि से और भय अच्छी भावना से। इन चार के लिए ये चार तिनके के समान होते हैं–ब्रह्म ज्ञानियों को स्वर्ग, शूरवीर को जीवन, इन्द्रिय संयमी के लिए स्त्री और कामना रहित व्यक्ति को सारा संसार। इन चार के ये चार अलग–अलग मित्र होते हैं–विदेश में गुणीजनों को विद्या, घर में पत्नी, रोगियों को औषधि और मृतक व्यक्ति का धर्म मित्र होता है। चाणक्य नीति कहती है कि ये चार क्रियाएँ व्यर्थ होती है–समुद्र में वर्षा, तृप्त व्यक्ति को भोजन, धनिक को दान और दिन में दीपक जलाना। इन चार के बराबर दूसरा नहीं होता है–बादलों का जल, आत्मबल, आँखों का प्रकाश और अन्न। ये चार चीजें सत्य पर टिकी हैं–पृथ्वी, सूर्य, वायु और संसार के समस्त पदार्थ इन चार की चार अलग–अलग इच्छाएँ होती हैं–निर्धन को धन की, पशु को वाणी की, मनुष्य को स्वर्ग की, और देवताओं को मोक्ष की। ये चार चाण्डाल या नीच श्रेणी में सुमार होते हैं–पक्षियों में कौवा, पशुओं में कुत्ता, मनुष्य में चुगलखोर और ऋषि मुनियों में क्रोधी। ये चार अलग–अलग चार प्रकार से शुद्ध या निर्मल होते हैं–काँसे का पात्र राख से माँजने पर, पीतल का पात्र खटाई से रगड़ने पर, स्त्री रजस्वला होने से और नदी तीव्र गति से बहने पर। ये चार भला–बुरा नहीं देखते हैं–दृष्टिहीन, कामाशक्त, मद में मतवाला और स्वार्थी व्यक्ति ये चार लोग दूसरों के द्वारा किए पाप का फल भुगतते हैं–राजा अपनी प्रजा द्वारा किया पाप, पुरोहित अपने राजा द्वारा किया पाप, पति अपनी पत्नी द्वारा किया पाप, और गुरु अपने शिष्य द्वारा किए पाप। ये चार शत्रु केसमान बताए गए हैं– कर्जदार

पिता, व्यभिचारिणी माता, मूर्ख लड़का और अति सुन्दर स्त्री।

चार प्रकार के लोगों को इस प्रकार जीता जा सकता है- लोभी को धन से, घमंडी को हाथ जोड़कर, मूर्ख उसके अनुसार व्यवहार से और पंडित को सच्चाई से। इसी प्रकार चाणक्य नीति कहती है कि इन चार के साथ नहीं रहना चाहिए-दुष्ट राजा, दुष्ट मित्र, नीच शिष्य और कुलटा स्त्री। मुर्गे से चार बातें सीखना चाहिए-ब्रह्म मुहूर्त में जगना, रण में पीछे न हटना, बराबर बाँटकर खाना और पत्नी को समागम में संतुष्टि। इन चार से दूरी रखना चाहिए-बैलगाड़ी से पाँच हाथ, घोड़े से दस हाथ, हाथी से हजार हाथ और दुष्ट राजा का राज्य ही छोड़ देना चाहिए। ये चार लोग अर्थात् ब्राह्मण भोजन से मोर बादलों के गर्जन से, साधु लोग दूसरों की समृद्धि देखकर और दुष्ट लोग दूसरों पर आई विपत्ति से प्रसन्न और संतुष्ट होते हैं।

सद्पुरुषों की पहिचान चार लक्षणों से होती है-दान की प्रवृत्ति, मधुर वाणी, देवताओं का पूजन और ब्राह्मणों को भोजन कराने की प्रवृत्ति। ये चार इस प्रकार आधीन होते हैं-हाथी अंकुश से, घोड़ा चाबुक से, मरखा बैल डंडे से, और दुष्ट व्यक्ति तलवार से। चार परिस्थितियों में मनुष्य अशुद्ध रहता है-तेल लगाने पर, चिता का धुँआ लगने पर, स्त्री समागम करने पर, और बाल कटवाने पर। चार परिस्थितियों में पानी के चार गुण होते हैं- अपच में पानी दवा, पचने पर बलवर्धक, भोजन के बीच में अमृत और भोजन के अंत में जहर। महामति चाणक्य कहते हैं कि ये चार इस कारण व्यर्थ होते हैं-क्रिया बिना ज्ञान, ज्ञान बिना मनुष्य, सेनापति बगैर सेना और पति बगैर पत्नी। इन चार चीजों पर ध्यान देना चाहिए-शान्ति के बराबर तप नहीं, संतोष से बड़ा सुख नहीं, लालच जैसा रोग नहीं, दया से बड़ा धर्म नहीं। इन चार बातों को भी ध्यान में रखना चाहिए-क्रोध मृत्यु तुल्य है, लालच नरक की नदी समान, विद्या कामधेनु समान, और संतोष नन्दन वन की तरह सुखकारी होता है। इन चार से चार वस्तुओं की अलग-अलग शोभा है-गुण से रूप की, शील से कुल की, सिद्धि से विद्या की और योग से धन की। ये चार व्यर्थ हैं-गुणहीन व्यक्ति की सुन्दरता, दुष्ट स्वभाव का व्यक्ति, लक्ष्यहीन विद्या और बिना सदुपयोग का धन। ये चार अर्थात् पृथ्वी के भीतर पानी, पतिव्रता स्त्री, कल्याणी राजा और संतोषी ब्राह्मण पवित्र होते हैं। असंतोषी ब्राह्मण, संतोषी राजा, लज्जाशील वेश्या और निर्लज्ज कुलीन स्त्री ये चार नष्ट हो जाते हैं। चार श्रेष्ठ होते हैं-औषधियों में अमृत, सुखों में भोजन, इन्द्रियों में नेत्र, और शरीर में सिर। द्ररिद्रता में धैर्य, मैले कपड़ों को साफ रखना, घटिया अन्न का भी गरम भोजन, कुरूप व्यक्ति का अच्छा स्वभाव होना ये चार स्थितियाँ उत्तम कही गई हैं। ये चार काम अवश्य करना चाहिए-आगे देखकर पैर रखना, छानकर पानी पीना, व्याकरण से शुद्ध करके वचन बोलना और विचार कर कार्य करना।

चाणक्य नीति में लिखा है कि इन चार की कोई सीमा नहीं होती हे-कवि लोग क्या नहीं देखते, स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकती हैं, मदिरा पीने वाला क्या नहीं कर सकता और कौवे क्या नहीं खाते? इन चार के ये चार शत्रु होते हैं-लोभियों का भिखारी मूर्खों का ज्ञानी, व्यभिचारिणी स्त्री का पति और चोरों का चन्द्रमा शत्रु होता है। विद्या, तप, दान और धर्म ये चार चीजें जिनके पास नहीं हैं, उनका जीवन व्यर्थ है। राजा, ब्राह्मण, विद्वान और परिजन, इन चार का विरोध नहीं करना चाहिए। मनुष्य के निर्धन होने पर ये चार लोग संग छोड़कर चले जाते हैं- मित्र, स्त्री, नौकर, और हितैषी। इसी प्रकार राजा, अग्नि, गुरु, और स्त्री इन चार से मध्यम व्यवहार करना चाहिए। पानी में डाला गया तेल, दुष्टों संग गोपनीय बातें, उत्तम पात्र को दिया गया दान तथा बुद्धिमान के पास का शास्त्र ज्ञान ये चार चीजें स्वत: विस्तार पाती हैं। अधर्म के वृक्ष पर चार प्रकार के फल लगते हैं-दरिद्रता, रोग, दुख और व्यसन। ये चार चीजें बारबार प्राप्त हो सकती हैं-धन, मित्र, स्त्री और पृथ्वी। इसी प्रकार ये बातें अभ्यास से नहीं आती हैं-दानी स्वभाव, मधुर वाणी, धैर्य और उचित की पहिचान। इन चार को अर्थात् घर में आसक्त को विद्या नहीं, माँस भक्षी को दया नहीं, धन लोभी को सत्यवचन और कामुक व्यक्ति को पवित्रता नहीं रहती है। संतजन कहते हैं कि परिवार के सदस्य जब आपस में बातचीत कर रहे हों तो उनका आधार ये चार बातें होना चाहिए-वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति। इस प्रकार चार की महिमा अपार है। चार की महिमा गाते, लिखते चार दिन तो निकल ही जाएँगे और किसी के पास और समय है नहीं। एक शायर के शब्दों में-उम्र-दराज माँग कर लाए थे चार दिन/दो आरजू में कट गए, दो इन्तजारी में।

'पारिजात बंगला'
298-सी/सेक्टर-बी
सर्वधर्म कालोनी, कोलार रोड
भोपाल-462042 (म.प्र.)
मो.-9826553484

शब्द में जिया, अर्थ में व्यर्थ

– **रमेश दवे**

मैं रमेशचन्द्र दवे लिख रहा हूँ, अपना आत्म-कथ्य। जरूरी नहीं कि जिसने भी अपना आत्म-कथ्य लिखा हो, वह सत्य और तथ्य की विश्वसनीय अभिव्यक्ति हो फिर भी खुदा को हाजिर-नाजिर करके जो कुछ लिख रहा हूँ, वह जन्म से मृत्यु तक की प्रतीक्षा तक की आत्म-कथा भी है और आत्म-व्यथा भी। पृथ्वी पर कोई भी प्राणी स्वयंभू तो नहीं होता, मैं भी नहीं हूँ और मैं जन्मा इस धरती पर, कह नहीं सकता कि भार बन कर या अधिकार बनकर।

मेरे जन्म से ही मेरे साथ विसंगतियों की विडंबना नृत्य करने लगी थी। मेरी परिवार में प्राप्त जन्म-पत्री का साक्ष्य है कि मैं 8 जून 1936 को रोता-चीखता माँ सीताबाई की गोद में गिरा और पिता स्व. रामदयाल दवे दो पुत्रियों के बाद मुझ नाचीज़ के प्रथम पुत्र प्राप्त पिता बने। दादा जी दाशरथी दवे तो महाप्रस्थान कर गए थे तब जब मैं मात्र छः माह का था और दादी स्व. जानकीबाई ने परिवार के इस प्रथम पुत्र प्रस्तर को अपने आँचल की छाँव में पालकर दवे कुल की नई पीढ़ी के रूप में विश्वास किया कि दवे परम्परा जारी रहेगी।

बचपन में मरणासन्न सीमा तक बीमार रहा। मेरी नन्हीं शिशु-देह पर फोड़े पैदा हुए, शल्य-क्रिया हुई और वे मेरी देह पर निशान बनकर अब भी पुरातत्व के प्रमाण की तरह मौजूद हैं। मेरा जन्म मालवा, मध्यप्रदेश के शाजापुर जिला नगर में उस मकान में और उसी भट्ट मोहल्ले में हुआ था, जिस मकान और मोहल्ले में ज्ञानपीठ सम्मानित कवि, कथाकार, दूसरा सप्तक के यशस्वी काव्य-पुरुष का उत्सव पुरुष के रूप में अवतरण हुआ था। ऐसा सोचने में हर्ज ही क्या है कि शाजापुर में श्री नरेश मेहता के जन्मोत्सव का कोई शक मेरी देह पर भी चिपक गया हो और उसने मेरी आत्मा में प्रवेश कर मुझे भी एक लेखक की अनर्थ राह पर अर्थाभाव की व्यथा के साथ आम हिन्दी लेखक की करुणा बना दिया हो।

मेरी प्रारंभिक शिक्षा में कोई तेज प्रकट नहीं हुआ। सात संतानों और काकाओं के साथ के संयुक्त परिवार में कुटते-पिटते जिया। परीक्षाओं में कोई तीर भी नहीं मारा, मगर जब मैट्रिक की बोर्ड परीक्षा में उत्तम श्रेणी में पास हुआ, तो परिवार ने मुझमें शायद भविष्य देखने की कोशिश की। मुझे उज्जैन में टाइपिंग और स्टेनोग्राफी सीखने भेज दिया गया, जहाँ मैं अपनी बहिन और बहिनोई के साथ रहा। वर्ष 1955 में प्रायमरी स्कूल का मास्टर हो गया और स्टेनोग्राफी सीख कर उज्जैन की जिला अदालत में प्रारंभ में एक विफल स्टेनो बाबू बना मगर वहाँ वर्ष 1956 से 1961-62 तक नौकरी कर सहयोगियों व साहबों के बीच एक अच्छे द्विभाषी स्टेनो के साथ कवि की भी छाप छोड़ी। कोर्ट की नौकरी में 12-13 घण्टे प्रतिदिन के काम ने मेरी देह को छलनी कर दिया और मैंने कोर्ट की नौकरी छोड़कर ग्रामोद्योग के एक उप-खण्ड ताड़-गुड़ उद्योग में वहाँ की पत्रिका के सम्पादक के रूप में काम किया जिसमें मेरे अभिन्न मित्र श्री मनोहरलाल दलाल का विशेष योगदान था। श्री दलाल अब इन्दौर के जाने-माने वरिष्ठ एडवोकेट तो हैं ही साथ ही उज्जैन से इण्डोलाजी के छात्र रह कर इण्डोलाजी विभाग में प्राध्यापक भी बने और उनके द्वारा की गई कटु आलोचना का सत्य न पचा पाने से तत्कालीन विश्वविद्यालयीन अधिकारियों ने उन्हें नौकरी रहित कर दिया। परिणाम में वे वकील हो गए। मैं वर्ष 1963 में अंग्रेजी का व्याख्याता बना, गाँव-गाँव की खाक छानी। बी.एड. में गोल्ड में उत्तम प्राप्त किया। एम.ए. इतिहास में दूसरा एम.ए. प्रथम श्रेणी प्रावीण्य सूची के साथ पास किया, हैदराबाद से अंग्रेजी शिक्षक और पटियाला से उर्दू का प्रारंभिक प्रमाण-पत्र कोर्स किया और मध्यप्रदेश की मालवा भूमि का यह बंजारा वर्ष 1976 में भोपाल के अंग्रेजी भाषा शिक्षण संस्थान में आ गया।

भोपाल से पूर्व की मेरी साहित्यिक यात्रा गाँव-कस्बों के भावुक लोगों के बीच प्रशंसा तो बनी मगर भोपाल ने मुझे साहित्य की सच्ची जमीन दिलाई जो डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय की मित्रता और श्री अशोक वाजपेयी की उत्कृष्ट रुचियों के बीच मेरी प्रेरणा की नई यात्रा बनी। वैसे कविता करना तो मैंने कक्षा सात से ही शुरू कर दिया था।

अंग्रेजी संस्थान में 1976 से 1984 तक रहा, शायद सफल अध्यापक भी माना गया मगर 1983-84 में म.प्र. शैक्षिक अनुसंधान परिषद में शरदचन्द्र बेहार ने अपना सहयोगी बनाकर मुझे 'पलाश' नामक पत्रिका के सम्पादन से जोड़ दिया। 'पलाश' जिसको मैं शिक्षा की लाश कहता था, उसमें नया प्राण भरने का चुनौती भरा काम मुझे दे दिया गया और श्री बेहार के सहयोग, मार्गदर्शन और हस्तक्षेप रहित मेरी स्वायत्तता के कारण 'पलाश' जिसको मैं शिक्षा की लाश कहता था, उसमें नया प्राण भरने का चुनौती भरा काम मुझे दे दिया गया और श्री बेहार के सहयोग मार्गदर्शन और हस्तक्षेप रहित मेरी स्वायत्तता के कारण 'पलाश' एक लोकप्रिय पत्रिका तो 13-14 वर्ष तक रही मगर मेरे 1995 में रिटायर होने के बाद वह पत्रिका भी धक्के खा-खाकर, छटपटाती हुई परलोक गमन कर गई और शायद अब वह एक स्मृति शेष विस्मृति बनकर रह गई है।

मैंने काम तो खूब किया, पढ़ा भी खूब, भोपाल की तत्कालीन ब्रिटिश लाइब्रेरी का 25 वर्ष से अधिक समय रहकर विश्व साहित्य में दिमाग खपाया और अब तक दो कविता-संग्रह, एक प्रकाशित, एक अप्रकाशित, चार कहानी संग्रह, चार उपन्यास, एक निबन्ध-संग्रह, दस आलोचना पुस्तकें, छः बाल्य साहित्य की पुस्तकें, दस शिक्षा पर पुस्तकें, अफ्रीकी साहित्य की हिन्दी में प्रथम आलोचना पुस्तक, अफ्रीका के ग्यारह देशों के अड़तीस कवियों की कविता का अनुवाद, स्वीडन के नोबेल पुरस्कार प्राप्त उपन्यास कथाकार पार कागरक्विस्त के उपन्यास 'द डवार्थ' का अनुवाद 'बौना' नाम से किया। कुल मिलाकर पचास से अधिक किताबों का ढेर लगा दिया। कुछ पर पाठफना आलोचकों का अच्छा प्रतिसाद मिला, कुछ पर लोगों ने रमेश दवे को साहित्य के रोजनामचे से रिजेक्ट कर उनके लेखन पर ध्यान देना अपनी तोहीन समझा।

दुनिया भर में साहित्यकारों की समकालीन पीढ़ियाँ आपस में ईर्ष्या युद्ध करती रही हैं। कभी विचारधाराओं के नगाड़े पीटे गए, तो कभी प्रतिबद्धता एवं प्रतिक्रियावाद के नारे उठा ले गए। कुछ स्वयंभू बौद्धिक और उत्कृष्ट लेखक के तमगे पहनकर आक्त्त-मुग्ध हो गए और अपने अलावा शेष को दोयम दरजे तृतीय दरजे का ठहराने के फतबे देते रहे। मुझे भी कभी कमयुनिस्टों की बैठक में बिछाऊ खल्लासी कहा गया तो कभी भाजपा का भगवा तिलक लगा कर सांप्रदायिकता के तलघर में पटक दिया गया। भारत-भवन बना तो हिन्दी के तमाम भवन, महाभारत भवन के रूप में अपनी-अपनी कौरवी मुद्रा में आ गए। पुरस्कारों, सम्मानों के चयन वफादारी एवं अवसादवाद की योग्यता पर किए गए जहाँ साहित्यक-न्याय के गले में फंदा डाल दिया गया। हिन्दी भवन जो आज साहित्यिक आयोजन के कारण देश भर में प्रतिष्ठित है, उसका मैं दो बार अध्यक्ष चुना गया, वहाँ की हर व्याख्यान माला में सक्रिय भी रहा लेकिन मुझे अध्यक्ष पद की वह गरिमा न होकर हिन्दी भवन का कर्मचारी मान लिया गया। यह सच्चाई उगलने में हर्ज ही क्या है, जो आत्मीय रहे, लम्बे समय तक मित्र रहे, उन्होंने भी पदासीन होने पर नजर फेर ली जबकि मैंने उनके कुछ ऐसे काम किए, साहित्य में उनकी त्रुटियाँ तक ठीक की मगर पद जितना अहंकार देता है, उतनी विनम्रता कहाँ देता?

जहाँ तक सम्मानों का प्रश्न है मुझे 1983 में आलोचना का नंद दुलारे वाजपेयी प्रादेशिक सम्मान मिला था। मगर अब ऐसे निष्पक्ष सम्मान केवल वफादारी की रजत-मंजूषा में रखे हैं। मुझे वर्ष 2019-20 में पुनः नंददुलारे वाजपेयी प्रादेशिक सम्मान के लिए चुना गया, मगर मैंने नैतिकता के आधार पर सम्मान लेने से इंकार करते हुए कहा कि यह सम्मान मुझे 1983 में मिल चुका है और मुझसे आधी उम्र के लोगों को जब राष्ट्रीय सम्मान दिया गया तो, मैं उनके बीच बैठकर सम्मान का प्रमाण-पत्र क्यों ग्रहण करूँ। मुझे भारत सरकार का शिक्षा सम्मान कुसुमांजलि फाउण्डेशन का कुसुमांजलि सम्मान मेरे उपन्यास 'खेलगुरु'

पर वर्ष 2013 में प्रदान किया गया। मैं मानता हूँ कि प्रतिभा में कोई वरिष्ठ या कनिष्ठ होता है मगर जब मुझे राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति मिल गई तो म.प्र. में यह अपमान क्यों?

मैंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के पुणे (पूना) सम्मेलन में समाजशास्त्र प्रभाग का समायनित्व ग्रहण किया और मेरा उद्बोधन सुन कर आदरणीय निर्मल वर्मा, श्री सत्यप्रकाश मिश्र और देश भर से आए प्रतिष्ठित साहित्यकारों के साथ भोपाल के मित्रों ने भी दो प्रेरक शब्द मेरे कहें जो उत्साह वर्धक थे। मैंने अफ्रीकी साहित्य पर हिन्दी में प्रथम आलोचना पुस्तक लिखी, अफ्रीकी कविताओं का पहली बार अनुवाद किया। कृष्ण बलदेव वैद जिनसे मेरा परिचय ही नहीं था, उन पर एक पूरी पुस्तक लिखी, जिसके लिए स्वयं वेद जी ने तो आशीर्वाद दिया ही, रमेशचन्द्र शाह ने भी मेरे इस प्रयास की सराहना की। यहाँ तक की श्री अशोक वाजपेयी ने वैद जी के 75वें वर्ष में अमृत महोत्सव पर मुझे आमंत्रित किया, मैंने जो पेपर पढ़ा उस पर कुँवर नारायण जी ने खड़े होकर गले लगाया और अशोक जी ने भी प्रशंसा की। यह मुझ जैसे उपेक्षित, दोयम दर्जे से विभूषित लेखक के लिए क्या कम संतोष था कि श्री निर्मल वर्मा, सुश्री कृष्णा सोबती, कृष्ण बलदेव वैद, नेमिचन्द जैन, कुँवर नारायण, नरेश मेहता, केदारनाथ सिंह, प्रभाकर श्रोत्रिय, राजी सेठ, धर्मवीर भारती, वीरेन्द्र कुमार जैन, ज्योत्सना मिलन, असम हिन्दी के मूर्धन्य लेखकों ने मेरी पीठ मेरे लेखक पर थपथपाई। स्व. नामवर सिंह जी ने उज्जैन में सुमन जी पर आयोजित एक समारोह में मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा था। आप अच्छा काम कर रहे हैं। आप जैसे मेहनती लेखक हिन्दी में कम हैं। प्रभाकर श्रोत्रिय और राजी सेठ का तो मुझे सम्बल मिला ही मगर अन्य मित्रों-अमित्रों ने भी नोटिस जरूर लिया। देश भर के साहित्यिक आयोजनों में मुझे बुलाया गया और सम्मान भी दिया गया।

आत्म-कथ्य भी होता है एक अकेला ही अपनी आलोचना तो होगी नहीं, अपनी उपलब्धियों का अबेकस गणना यंत्र लेकर भले ही आत्मानंद में डूबे रहें, मगर जब तक एक साहित्यकार शब्द के सही अर्थ में नहीं पहचाना जाए और भौतिक जीवन में अर्थाभाव के सफर से मुक्त न हो तब तक आत्म-कथ्य एक प्रकार व्यर्थ यथा-कथ्य ही है। अपना रोना अपने ही शब्दों में। अंत में कुछ सत्य कहने की मंशा है। भोपाल शहर साहित्यिक एवं बौद्धिक रूप से एक घमण्डी या अहंकारी शहर है। हिन्दी उर्दू की मिली-जुली तहजीब के इस ऐतिहासिक और खूबसूरत शहर के माथे पर बौद्धिकों, साहित्यकारों, विचारधाराओं के अफसरनुमाँ लेखकों, साहित्यक संस्थाओं के आत्म-केन्द्रित महापुरुषों में ऐसे स्टीकर चिपका दिए हैं कि जो जेन्यूइन लेखक हैं, वे अपनी सुदामाई कुण्ठा की कोठरी में बन्द हैं, जो आत्म घोषित महान हैं, वे सम्मानों की पुष्प वर्षा से आच्छन्न और प्रसन्न हैं और अपनी वफादारी के राष्ट्रीय प्रादेशिक इनाम जीत रहे हैं, जो खुद्दार हैं, उन्हें साहित्य की पूर्वाग्रह ग्रस्त गलियों में गद्दार साबित कर दिया गया है।

मेरा यह आत्म-कथ्य मेरी इस 88 वर्ष की उम्र का देखा, भोगा और सहा गया जीवन है। इसे सच या झूठ मानने का अधिकार आपका है। हिन्दी का आम लेखक रोटी का भूखा है, रोटी के संघर्ष का भोक्ता है। आज मैं विपन्न स्थिति में एक उपेक्षा और आर्थिक अभाव के साथ घर से बाहर तक इस तरह नजरबंद हूँ जैसे साहित्यकार होना मेरा जमानत रहित अपराध हो। फिर भी शिकवा-शिकायत नहीं। करम फूटे हों तो धरम क्या काम का। जो मिला उसे माथे से लगाया, जो नहीं मिला उसे अपनी अयोग्यता या अपात्रता माना फिर भी आचार्य डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री का यह कथन याद कर संतुष्ट हूँ कि रमेश तुम स्वाभिमानी हो, हिन्दी के लेखक स्वाभिमान की इज्जत नहीं करते। एक बड़े राष्ट्रीय स्तर के विद्वान डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री के इन शब्दों के साथ आत्मकथ्य अपने दर्द को बयान करने का मौका रहा। मगर यह जरूर कहूँगा कि अगर आत्मा में ईमान का खून मौजूद न हो तो बेईमान और झूठी प्रशंसाओं को पुलिन्दा क्यों रचा जाए। उम्मीद है जो मित्र रहे थे वे मित्र बने रहें जो मित्रता तोड़ना चाहें या मित्र न माने, यह उनकी आजादी है। जिन्दा हूँ तब तक लिखूँगा चाहे कोई पसंद करें, न करें।

अपरिचिता

(बांग्ला कहानी)

मूल : अभिज्ञान राय चौधरी
अनु. : नीलम शर्मा 'अंशु'

नीलम शर्मा 'अंशु'

जन्म – 11 दिसंबर 1966।
शिक्षा – एम.ए.।
रचनाएँ – अठारह पुस्तकें प्रकाशित।

दो दिन हुए पुष्पेन ऑफिस के काम से मुंबई आया है। ऑफिस से एक प्रशिक्षण पर। पहली बार वह कोलकाता से बाहर आया है। वह निम्न मध्यवर्गीय परिवार से है। बचपन से ही अभावों भरी गृहस्थी है। छोटे से व्यवसाय से जितनी भी पारिवारिक आय होती थी, कुछ वर्ष पहले पिता की अस्वस्थता की वजह से वह भी बंद हो गई थी। पारिवारिक संचय उसके बाद के वर्षों में पिता की चिकित्सा में लग चुका था।

उसी समय पढ़ाई के साथ-साथ प्राइवेट ट्यूशनें पढ़ाकर उसे गृहस्थी की गाड़ी भी खींचनी पड़ रही थी। उन संघर्ष भरे दिनों का असर अभी भी उस पर रह गया है। इसलिए वह अन्य लोगों की तुलना में अधिक विनम्र है। हमेशा दूसरों का ध्यान रखता है। उसे मालूम है कि इस जीवन के उत्थान-पतन से किसी भी समय सब कुछ बदल सकता है।

पढ़ाई में वह बहुत अव्वल था, इसलिए ज्वाइंट परीक्षा में पहली बार में ही इंजीनियरिंग में मौक़ा मिल गया था। वहीं से उत्तीर्ण होकर अभी कुछ माह पहले उसे नौकरी मिली है कोलकाता में। इसीलिए उसे विगत चार माह में कोलकाता से बाहर कहीं नहीं जाना पड़ा।

अब पहली बार इस विशेष प्रशिक्षण हेतु कोलकाता से बाहर आना हुआ है, मुंबई। जुहू के पास एक बढ़िया होटल में रुका है वह। ऐसे होटल में वह पहले कभी नहीं रहा। फोर स्टार होटल। इस स्तर के आसपास के स्तरों के होटलों में भी कभी रुकने का मौका नहीं मिला। इसलिए एक तरफ जहाँ उसे खुशी भी हो रही थी, वहीं दूसरी तरफ ज़रा बेचैनी भी।

रात बढ़ते ही होटल के पब में शोर-शराबा भी बढ़ना शुरू हो गया। ऐसे माहौल का पुष्पेन अभ्यस्त नहीं है। बेचैनी और बढ़ गई। उसने सुना है कि होटल के बहुत पास ही जुहू बीच है। समुद्र उसे बहुत अच्छा लगता है। वहाँ शांत माहौल होगा यही सोच कर वह उस तरफ बढ़ गया।

बीच तलाशने में ज़्यादा समय नहीं लगा। रात काफ़ी हो गई थी। दिन का उजाला लगभग ख़त्म हो गया है। एक काली स्याह चादर से मानो सब कुछ ढक सा गया है। मोबाइल पर समय देखा। रात के दस बज रहे थे। बीच पर लोग हैं, पर कम हैं। पाव-भाजी, पापड़ी-चाट, पानी पूरी यह सब बिक रहा था। उसने पहले समुद्र नहीं देखा है। बहुत साल पहले एक बार दीघा गया था। अभी भी याद है। बाद के कुछ वर्षों में पिता की स्वास्थ्य, चिकित्सा-इन सब में वे सभी इतना ही व्यस्त रहे कि कभी कहीं जाने की बात सोची ही नहीं।

वह अपने में मग्न समुद्र तट पर चहलकदमी करने लगा। पानी

की तरफ काफ़ी आगे बढ़ आया। अब भी जहाँ खड़ा है, चारों तरफ सीपियाँ, काई जमे पत्थर बता रहे हैं कि यहाँ नियमित रूप से पानी आता है। इससे थोड़ी दूरी पर ही एक के बाद एक लहरें रेत पर उछल-उछल कर गिर रहीं हैं। रात की रोशनी में मानो पानी में एक साथ लाखों हीरे जगमगा उठे हों। इन तरंगों की भी मानो अपनी एक भाषा है। घंटों रेत पर खड़े होकर लहरों की बातें सुनते-सुनते सब कुछ भुलाया जा सकता है।

व्हॉट अ लवली नाइट, इजन्ट इट?

प्रश्न सुनकर पुष्पेन चौंक उठा।

एक युवती पास आ खड़ी हुई है। उसी ने यह सवाल किया था। काली जींस के ऊपर एक छोटा टॉप पहन रखा है। अच्छी ख़ासी लंबी। इस अँधेरे-उजाले में युवती का चेहरा अच्छी तरह दिखाई नहीं दे रहा है।

कौन है यह युवती? लगभग उसकी हमउम्र होगी।

अचानक उसे ध्यान आया कि आज जो प्रशिक्षण शुरू हुआ है, उसमें कुछ युवतियाँ भी थीं। उन्हीं में से ही शायद कोई है। पहला दिन होने के कारण अभी तक किसी से परिचय नहीं हुआ था। पुष्पेन खुद ही शर्मीले स्वभाव का है। आगे बढ़कर परिचय नहीं कर पाता। उतना ज़्यादा ध्यान भी नहीं दिया था उन पर।

वह कह उठा-हाँ सचमुच, रात के अँधेरे में समुद्र मानो अलग ही छटा बिखेर रहा है। मानो किसी ने हीरे के असंख्य टुकड़े पानी में चारों तरफ बिखेर दिए हों। युवती अब हिन्दी में बोल उठी-सही कहा। परंतु पास जाते ही हीरे के टुकड़े गायब हो जाते हैं, बिलकुल हमारी तरह ही। दूर से जो हीरे जैसा लगता है, पास जाते ही साधारण सा लगता है।

पुष्पेन अच्छी हिन्दी बोल लेता है, यूनिवर्सिटी में उसका एक दोस्त था यू पी से। लखनवी घराने की विशुद्ध हिन्दी बोलता था। उसीसे हिन्दी सीखी है। हिन्दी और अंग्रेजी मिला कर वे बातें कर रहे थे।

युवती ने उसके साथ-साथ चलना शुरू कर दिया। अवश्य उसे जानती होगी। नहीं तो क्या आगे बढ़ कर पहल करके बात करती। लेकिन परिचय पूछने में पुष्पेन को हिचक महसूस हो रही थी। निश्चित ही ऑफिस में मुलाकात हुई होगी। अभी पूछने पर पहचान न पाने की बात कहकर दोस्तों में हँसी उड़ाएगी। ऐसा बादलोंरहित आसामान कम ही होता है। आज पूर्णिमा की रोशनी में चारों तरफ का दृश्य और भी सुंदर लग रहा है न? जैसे किसी ने रोशनी की चादर बिछा दी हो। ऐसे आकाश के नीचे खड़े होने पर हृदय के सारे मेघ उड़नछू हो जाते हैं।

वे दोनों महीन रेत पर चलने लगे। मुझे इस महीन रेत पर चलना बहुत अच्छा लगता है और तुम्हें?

युवती फिर बोल उठी।

हाँ मुझे भी।

अगर हमारा जीवन ऐसा होता कि जिस रास्ते पर चले जा रहे हैं उस रास्ते का कोई चिह्न न होता, सब कुछ खो जाता, कितना अच्छा होता न। फिर से नई शुरुआत करते। कभी-कभी लगता है कहाँ से आए हैं, कहाँ जा रहे हैं सब झूठ है, सिर्फ़ इस चलते जाने का नाम ही जीवन है। जैसे अभी तुम्हारे साथ चल रही हूँ।

तुम बातें बहुत अच्छी करती हो। तुम क्या कविता लिखा करती थीं। पुष्पेन पूछ बैठा।

हाँ, अब भी लिखती हूँ। हिन्दी में। बहुत अच्छा लिखती हूँ, ऐसा भी नहीं है। दरअसल जो सोचती हूँ, वह सब लिख नहीं पाती। लेकिन यहाँ सुमुद्र तट पर आकर वे बातें कहने में डर नहीं लगता, क्योंकि सभी यहाँ केवल समुद्र की बातें सुनने ही आते हैं। मेरी बातें तब केवल मुझ तक ही रह जाती हैं। हिम्मत बढ़ जाती है।

फिर कविताई जैसी बातें।

यहाँ समुद्री हवा जो बातें करती हैं, उसके समक्ष मेरी क्या

बिसात भला। तुम तो बंगाली हो। बाँग्ला में बहुत अच्छी कविताएँ पढ़ी हैं मैंने।

अब पुष्पेन निश्चिंत हो गया कि युवती को उसने ऑफिस में ही देखा है। वर्ना उसके बारे में वह इतना सब कैसे जानती।

रेत में से एक सीप उठाकर चलते-चलते युवती ने बोलना जारी रखा-मैं जब छोटी थी न, तब माँ और नानी के साथ यहाँ आकर बिखरे पड़े सीप, पत्थर बीना करती। कितनी ही तरह के, तरह-तरह के रंगों के और तरह-तरह के आकार के। दो साल पहले बैग में भरकर लाकर यहीं फिर से छितरा कर बिखेर दिए थे। सुमुद्र ने उन्हें समेट लिया था। फिर ढूँढ़े नहीं मिले।

क्यों? समुद्र में सब क्यों फेंक दिए?

दरअसल मेरा ही तो घर-बार नहीं है, तो उन्हें कैसे जतन से सहेज कर रखूँगी, है न?

युवती मोहक मुस्कान बिखेरते हुए फिर बोल पड़ी-दूर वो जो समुद्र के किनारे इतनी अट्टालिकाएँ देख रहे हो, उजाले और अँधेरे से अस्पष्ट साये सा तन लेकर खड़ी हैं।

कितनी ऊँची-ऊँची है न। तीस-चालीस मंजिला। परंतु अधिकतर अभी भी घर नहीं बन पाईं हैं। इन्सान को भी ठीक तरह से आश्रय नहीं दे पाती हैं। मैंने एक घर ढूँढ़ा था। मिला नहीं। चारों तरफ सिर्फ़ ईंटों और संगमरमर की दीवारें मिलीं। अंततः कुछ भी न मिलने पर फिर से समुद्र के पास आ गई।

युवती की आँखें मानो सजल हो उठीं।

बीच पर कुछ छोटी नौकाएँ खड़ी थीं। उनकी तरफ संकेत कर पुष्पेन बोल उठा-मछुआरों की नौकाएँ। तुम गई हो कभी उनके साथ मछली पकड़ते देखने?

नहीं, दरअसल मुझे अच्छी तरह तैरना नहीं आता। इसलिए डर लगता है। हाँ, जाया भी जा सकता है, जीवन की तैराकी के बारे में भी मैं कहाँ कुछ जानती हूँ। लेकिन वहाँ डूबने के डर से तो हाथ पर हाथ धरे बैठी नहीं रहती। हो सकता है जब समुद्र में डूब जाऊँ तो समुद्र मुझे लौटा कर कह उठेगा-तुम्हें अब नए सिरे से भला क्या डुबोऊँ। तुम तो पहले ही डूबी हुई हो।

युवती की रहस्य और काव्यात्मक बातें पुष्पेन को हैरान कर रही थीं। क्या करती है युवती? इंजीनियरिंग पढ़ रही है क्या? उसे तो कविता-कहानियाँ लिखनी चाहिए थीं। आजकल के ज़माने में थोड़ी सी पढ़ाई-लिखी अच्छी होने पर भारी संख्या में लोग इंजीनियरिंग में आ जाते हैं। सुनिश्चित रोज़गार की संभावना के कारण।

युवती ने और भी बहुत सी बातें कीं पुष्पेन के साथ। अपने घर की बातें। माता-पिता की बातें। उसका घर यहाँ से तीन घंटे दूर महाराष्ट्र और केरल की सीमा पर एक गाँव में है। वह अपने विभिन्न शौकों के बारे में बता रही थी, जो अभी भी पूरे नहीं कर पाई। कभी मॉडलिंग करने की बहुत इच्छा थी। लेकिन वैसी सफलता नहीं मिल पाई।

पुष्पेन ने भी बहुत सी बातें कीं। अपने कॉलेज की बातें। दोस्तों की बातें। माता-पिता की बातें।

लगभग और एक घंटा समुद्र तट पर टहलने के बाद युवती ने पुष्पेन से कहा, चलो अब रेत पर बैठा जाए।

इस अँधेरे में एक अपरिचित युवती के साथ बैठने में पुष्पेन को ज़रा संकोच हो रहा था। बोल उठा-नहीं, मुझे चहलकदमी करना अच्छा लग रहा है। तुम क्या थक गई हो?

कहते ही युवती के चेहरे की तरफ देख चौंक उठा। अभी तक इस तरह उस युवती के चेहरे की तरफ नहीं देखा था। समुद्र को देखते हुए चलता जा रहा था। रोशनी भी उतनी नहीं थी। एक स्ट्रीट लाइट की रोशनी पड़ रही थी उसके चेहरे पर। कितनी खूबसूरत! आँखें मानो सावन के मेघों की भाँति गहरी थीं। चेहरे पर एक सरलता सी।

उसकी विभोर निगाहों को युवती ने भाँप लिया था।

धीरे-धीरे बोल उठी-बहुत देर चल लिया। अब बैठा ही जाए। मेरा रेट जानते हो कितना है? दे सकोगे तो?

चौंक उठा पुष्पेन।

किस चीज का रेट?

युवती उसके अवाक चेहरे की तरफ देख बोल उठी-मैं कौन हूँ, तुम समझे नहीं? मैं तो देह व्यवसाय करती हूँ। रुपए नहीं हैं तुम्हारे पास?

पुष्पेन की लगभग बोलती बंद हो गई। उसके सुर्ख चेहरे को देख युवती ने कहा-ओह, लगता है तुम यहाँ नए आए हो? पता नहीं था?
ज़रा रुक कर कहा-दरअसल, समुद्र तट के इस तरफ जो लोग आते हैं, वे सब जानते-बूझते हुए ही आते हैं। इस तरफ इस तरह देह व्यापार होता है, यहाँ सब कुछ ज़रा सॉफिस्टीकेटेड है। समझ ही रहे हो अमीरों का इलाका है यह। मैंने सोचा था कि तुम भी वैसे ही कोई ग्राहक हो। चलो, तुम्हें तुम्हारे होटल तक पहुँचा दूँ।

नहीं, नहीं, मैं खुद ही ढूँढ़ लूँगा। दरअसल मैंने तुम्हें, मेरा मतलब है आपको ग़लती से कुछ और सोचा था। सोचा था आप मेरे ऑफिस की दोस्त हैं, परिचिता हैं। यहाँ तो अभी आया ही हूँ। सोचा था कि शायद ऑफिस में मुलाकात हुई होगी। मैं ज़्यादातर चेहरे याद नहीं रख पाता। मैं आपको आपका प्राप्य भुगतान कर देता हूँ।

ज़ोर-ज़ोर से हँस पड़ी युवती-नहीं, नहीं, रुपए नहीं चाहिए। लेकिन मुझे तुम कहो।

लेकिन मेरे पास रुपए हैं। कितने चाहिए?

युवती फिर हँस पड़ी-नहीं, रुपए देने की ज़रूरत नहीं। जो भी हो थोड़ी देर के लिए मुझे दोस्त तो समझा था। उस समय का मोल क्या तुम पैसों से चुका पाओगे? मुझे भी लग रहा था कि तुम अलग किस्म के हो। मैं सिर्फ़ एक माह पहले बाध्य होकर इस पेशे में आई हूँ, इसलिए समझने में भूल हो गई। सभी अब तक मेरे तन से खेलना शुरू कर देते, मन की थाह लिए बिना। कहकर लगभग एक मिनट तक ख़ामोश रही। भीगे से स्वर में कहा-मैंने भी हमेशा तुम्हारे जैसे दोस्त ढूँढ़ा था। मिला नहीं। इसलिए इस समुद्र के पास बार-बार आती हूँ। इस समुद्र के किनारे तुम्हारा साथ मिला, भले ही कुछ समय के लिए ही सही। यहाँ रेत पर अवश्य सभी रास्ते खो जाते हैं। समुद्री लहरों का रुदन भी यह रेत बहुत देर तक याद नहीं रखती। शायद तुम मुझे उससे अधिक समय के लिए याद रखोगे। याद रखोगे इस रात की बात।

एक बार पुष्पेन का हाथ थाम लिया युवती ने। कुछ देर तक मुग्ध निगाहों से उसकी तरफ देखती रही। फिर धीरे-धीरे हाथ छोड़ दिया। कहा-दरअसल मैं बहत दूर चली आई हूँ। आज जहाँ खड़ी हूँ, वहाँ मैं और तुम एक ही माटी पर खड़े नहीं रह पाएँगे। चाह कर भी नहीं। कहते हैं समुद्र सब कुछ लौटा देता है लेकिन जीवन कभी भी खो गए वक्त को और नारी के सम्मान को नहीं लौटाता।

पुष्पेन कहाँ ठहरा है, वह पूछ लेती है। इधर का इलाका उतना अच्छा नहीं है। उसे आगे तक छोड़ आती है। फिर कहती है-अब इस रास्ते से आगे बढ़ते जाओ। अपने होटल पहुँच जाओगे। आज के बाद मैं भी कह पाऊँगी कि मैंने भी किसी को सही राह दिखाई थी।

पुष्पेन बोल उठा-तुम्हारा नाम क्या है?

युवती ने जवाब दिया-उमंग।

शायद फिर कभी मुलाकात हो।

युवती ने कोई जवाब नहीं दिया। कुछ देर तक चुपचाप खड़ी उसकी तरफ देखती रही। उसकी आँखें सजल हो गई थीं। फिर सिर झुकाए विपरीत दिशा में चलती गई।

फ्लैट -बी/जी, टाइप-4, टावर-2,
किदवई नगर, पूर्व दिल्ली -110023
मो.-9830293585

अनाम रिश्ते

– शेर सिंह

जन्म – 1 दिसंबर 1955।

जन्मस्थान – हिमाचल प्रदेश।

शिक्षा – एम.ए.।

रचनाएँ – छः पुस्तकें प्रकाशित।

उसके आँसू ही नहीं रुक रहे थे। उसे केवल रोना आ रहा था। जब से उसे जानकारी हुई थी, उसका मन बेचैन हो उठा था। और पता चला भी तो कैसे? कहीं बाहर के किसी दूसरे देश में रहने वाले से! अपने देश, शहर से भी नहीं।

'मम्मी पता चला है, साने आंटी आईसीयू में एडमिट हैं। मुझे बहुत चिंता हो रही है।' उसकी बेटी ने सिडनी, ऑस्ट्रेलिया से वीडियो कॉल करके उसे बताया था।

'तुम्हें कैसे पता चला?' अनुपमा ने अपनी बेटी से फोन पर एमदम चिंता में पड़कर पूछा।

'नवीन ने अपने फेसबुक स्टेटस में डाला है, आंटी का ऑक्सीजन मास्क चढ़ा मुँह शेयर किया हुआ है।' अनुपमा को अपनी बेटी की आवाज़ किसी गहरी गुफा से आती हुई लग रही थी। बेशक वह बहुत दूर दूसरे देश की धरती से बात कर रही थी, लेकिन वीडियो में वह बहुत टेंस, रुँआसी और चिंता से भरी हुई लग रही थी। उसका उतरा हुआ चेहरा और भर्राई हुई आवाज़ सब स्पष्ट कर रहे थे।

'अच्छा बेटे! तुम फोन रखो मैं नवीन से बात करती हूँ।' कहती हुई अनुपमा ने मोबाइल फोन के लाल बटन को दबा दिया। उसकी बेटी ने आज साने आंटी के साथ अपने कई पुराने फोटो को उसके वाट्सएप में शेयर किये हुए थे। किसी में वह साने आंटी के गले लगी है, किसी में उनकी गोद में सिर रखे लेटी है, किसी में उनके हाथों में हाथ डाले उनके लॉन में टहलती हुई दिख रही है। उसने ये फोटोस शायद कुछ देर पहले ही शेयर किये हैं परन्तु उसने उन्हें अब देखा।

अनुपमा ने तुरंत ही हैदराबाद में नवीन को मोबाइल फोन लगाया। परन्तु नवीन का फोन एंगेज आ रहा था। उसने बार-बार फोन मिलाकर बात करने की कोशिश की। पर नवीन का फोन एंगेज ही आता रहा। थोड़ी देर बाद नवीन का मोबाइल स्विच ऑफ ही हो गया। अब बात करना मुश्किल था। उसने साने भाभी के मोबाइल पर फोन लगाया। रिंग जाती रही। लेकिन किसी ने फोन उठाया नहीं। उसने साने भाभी का वाट्सएप स्टेटस चेक किया। साने भाभी ने उसके गुड मॉर्निंग वाले मैसेज को 2 अक्टूबर तक देखा हुआ था। उसके बाद के वाट्सएप मैसेज अनसीन ही थे। दो सफेद टिक मार्क सफेद ही थे। वे नीले रंग में नहीं बदले थे। इसका मतलब था कि साने भाभी ने 2 अक्टूबर के बाद से मोबाइल फोन का प्रयोग किया ही नहीं था। वह हर रोज की तरह ही गुड मॉर्निंग मैसेज भेजती रही थी। पर ध्यान नहीं दिया था कि मैसेज को देख, पढ़ लिया है या नहीं? अब देखा, तो।

पिछले दस दिनों के दौरान वाले मैसेज देखे ही नहीं गए थे। नवीन का फोन स्विच ऑफ हो गया था। बंटू तो कनाडा में है। उसको जानकारी हो गई होगी? हो सकता है, वह इंडिया आ भी चुका होगा? नवीन छोटा और बंटू बड़ा बेटा है साने भाभी का। बंटू का असली नाम अभिनव था। परन्तु बचपन में उसका निकनेम बंटू पड़ गया, तो घर-परिवार, नाते-रिश्तेदार, जान-पहचान वाले सभी उसे बंटू ही पुकारते, बुलाते थे। उसे उसके असली नाम से केवल बाहर या निकनेम से अनजान लोग ही बुलाते थे। बेटी सविता तो मुंबई में है। साने भाभी नवीन के पास हैदराबाद में ही है। नवीन ही माँ की देख-भाल और अस्पतालों में दौड़-भाग कर रहा होगा। डॉक्टरों के चक्कर लगा रहा होगा। अनुपमा अपनी लाचारी पर खीज रही है। कुढ़ रही है। वह कुल्लू में बैठकर हैदराबाद में अचानक ही घट रही इन बेचैन करने वाली घटनाओं से व्यग्र और विचलित हो गई है। वह बेहद चिंता में पड़ गई है। दिमागी कशमकश के कारण

रुआँसी और चिड़चिड़ी हो उठी है।

उसने बेटी को फिर से वाट्सएप पर सिडनी फोन लगाया। इस बार बेटी ने भी फोन नहीं उठाया। वहाँ इस समय मध्य रात्रि का समय हो रहा होगा। यहाँ इंडिया में इस समय रात के ग्यारह बजे हैं।

अनुपमा का मन रात के इस पहर में साने भाभी के इर्द-गिर्द ही घूम रहा था। हैदराबाद को तुरंत ही जाया जाए, या कुछ दिन इंतजार किया जाए? अनुपमा इसी ऊहापोह में फँसी रही। कुल्लू से हैदराबाद पहुँचने में उसे समय लग जाएगा। कुल्लू से दिल्ली की डाइरेक्ट फ्लाइट नियमित नहीं है। फ्लाइट कभी होती है, कभी कई दिनों तक पता ही नहीं रहता। कुल्लू से दिल्ली टेक्सी या बस से जाना समय की बर्बादी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होगा। दिल्ली से हैदराबाद की यात्रा बेशक कोई मुश्किल नहीं। बहुत फ्लाइट्स हैं। कोई न कोई मिल ही जाएगी। जब भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं, तो नफा-नुकसान के बारे कोई नहीं सोचता। अनुपमा ने साने भाभी का अस्पताल के आईसीयू में भर्ती होने की जानकारी अपने पति शैलेन्द्र को भी दी। दोनों ही इस खबर से बहुत अपसेट हो चुके थे।

परिस्थितियों और इतनी लंबी दूरी के कारण तुरंत हैदराबाद पहुँचना मुश्किल ही नहीं, बल्कि बहुत मुश्किल थी। विचारों की इन्हीं उधेड़बुन में अनुपमा साने भाभी और उनके परिवार के साथ अपनी निकटता, आत्मीय रिश्तों को याद करने लगी। एक-दूसरे से वे पहली बार भोपाल में मिले थे। यूनिवर्सिटी के सामने सुरेन्द्र प्लेस हाऊसिंग सोसायटी के वैभव अपार्टमेंट में दोनों पड़ोसी थे। साने भाभी और अनुपमा का परिवार एक जैसी आयु वर्ग के सदस्यों और मध्यम वर्गीय परिवार से थे। साने भाई साहब का अपना फ्लैट था। अनुपमा के परिवार ने किराये पर फ्लैट लिया था। उनका मकान मालिक जबलपुर में रहता था। लेकिन साने भाभी और उनके परिवार के साथ मालिक-किरायेदार जैसा कुछ भाव था ही नहीं। वे अहमदाबाद से ट्रांसफर होकर आए थे। साने भाभी के बच्चे उसके बच्चों से उम्र में चार-पाँच वर्षों से अधिक बड़े नहीं थे। सविता सबसे बड़ी थी। बंटू उससे छोटा और नवीन सबसे छोटा था। अनुपमा के बच्चे नवीन की उम्र के थे। उनका स्कूल, कॉलेज जाना लगभग साथ-साथ ही रहा था। दूर-दूर के राज्यों के रहने वाले दो अनजान परिवार कैसे आपस में घुल-मिल गए थे! कैसे बहुत निकट आ गए थे? इतने निकट कि दोनों परिवारों में कोई शक-सन्देह, दुराव-छिपाव नहीं रहता। गोपनीय, निजी और आंतरिक बातें भी एक-दूसरे से शेयर कर लेते। हमेशा एक-दूसरे की सपोर्टिव रहतीं। अनुपमा अपर्णा साने को भाभी कहती। साने जी को भाई साहब। अनुपमा और अपर्णा साने दोनों एक-दूसरे को भाभी कहतीं। लेकिन रहती दोनों सगी बहनों की तरह थीं। दोनों में इतनी घनिष्ठता का कारण अनुपमा का मिलनसार स्वभाव भी था। साने परिवार उज्जैन से थे। उनके पूर्वज महाराष्ट्र से उज्जैन में ब्राह्मण पुजारी-पुरोहित के तौर पर आए थे। फिर यहीं के होकर रह गए थे। अनुपमा कुल्लू, हिमाचल प्रदेश से थी। उसके पति की नौकरी के कारण वे सब देश के कई महानगरों में ट्रांसफर झेलते-झेलते इस बार यहाँ भोपाल आ पहुँचे थे। उनका आपस में कोई निकट का, या खून का कोई संबंध नहीं था। पर, एक-दूसरे के साथ-साथ रहते। छोटी-छोटी बातों, कामों में एक-दूसरे की सहायता-सहयोग करते। एक-दूसरे की समान मानसिकता, एक-दूसरे की संतानों की एक सी आयु का होना, और दोनों परिवारों की एक जैसी आर्थिक स्थिति ने दोनों परिवारों को जैसे एक परिवार के रूप में जोड़ दिया था।

अनुपमा की नींद उड़ चुकी थी। यादों का सिलसिला शुरू हो चुका था। उसे रह-रह कर साने भाभी की याद आने लगी थी। बंटू जब इंजीनियरिंग कॉलेज में आ गया था, तो साने परिवार का एक बड़े से फ्लैट में शिफ्ट हो जाने का कारण यही था कि बंटू के दोस्त कभी उनके घर आए, तो उसे अपने दोस्तों के सामने छोटा न महसूस हो। अपने बच्चों को आगे बढ़ने और उनमें किसी प्रकार की हीन भावना पनपने नहीं देने के प्रयोजन से ही, साने परिवार ने अपना फ्लैट किसी दूसरे को किराये पर दे दिया था। स्वयं किसी दूसरे ब्लॉक में बड़े से फ्लैट में शिफ्ट हो गए थे। साने भाई साहब और भाभी दोनों ही सरकारी नौकरी में थे। उनका बस, एक ही सपना था। अपने बच्चों को अच्छी और उच्च शिक्षा देकर, उन्हें अच्छे पदों पर देखना। बच्चों की पढ़ाई, बच्चों को आगे बढ़ाने की धुन, बल्कि जिद में वे स्वयं को जैसे भूल ही जाते थे। वैसे तो हर माता-पिता अपनी संतानों से बेहद प्यार-दुलार करते हैं। लेकिन उनकी बात ही कुछ अलग थी!

अपनी छोटी से छोटी बात, भावी योजनाएँ भी वे अनुपमा से साझा करते। साने भाभी की अपनी सगी बहने थीं। दो इंदौर में, एक उज्जैन में और एक देवास में रहती थीं। वे अपने मन की बातें अपनी सगी बहनों से भी शायद उतना अधिक शेयर नहीं

करती थीं, जितना अनुपमा के साथ कर लेती थीं। साने भाभी अपने बच्चों को बहुत प्यार करती थीं। बच्चे उनकी जान थे। उनकी हर छोटी से छोटी बात मानते। बिना आना-कानी किये उनकी इच्छाएँ, माँगें पूरी करते। बच्चे उनकी जीवन रेखा की तरह थे। अपने बच्चों को कुछ बनते हुए देखना, उनके जीवन का ध्येय था। जैसे बच्चों के लिए ही जी रहे थे। उनकी बातें हमेशा बच्चों से शुरू होती थीं। और बच्चों पर ही आकर खत्म होतीं। अपने बच्चों को बहुत आगे बढ़ते देखने की लालसा में, उन्हें हर सुविधा उपलब्ध कराने का प्रयास करते। स्वयं बेशक अभाव में रहे, परन्तु बच्चों को अच्छे से अच्छे स्कूल, कॉलेज में पढ़ाया। अच्छी शिक्षा दी। बच्चे भी उनकी अपेक्षाओं पर खरे उतरे थे। वो नब्बे के दशक का समय था। गला काट प्रतियोगिता थी। तब संस्थाओं का उतना अधिक निजीकरण नहीं हुआ था। प्राइवेट सेक्टर में उच्च शिक्षण संस्थान कम ही थे।

जब सविता ने एमएससी कर ली, तो साने परिवार उसकी शादी की दौड़-धूप में लग गया। शादी के लिए बातचीत चल रही थी। इस बीच उन्होंने एक इंडिपेंडेंट बँगला किराये पर ले लिया था। लड़के वाले कभी उनकी बेटी को कम हैसीयत वाले मानकर ताने न मारें, यह सोचकर। पाँच वर्ष कैसे निकल गए, पता ही नहीं चला। सविता की शादी होने तक अनुपमा के पति का ट्रांसफर लखनऊ हो गया था। वे लखनऊ चले गए थे। लेकिन अनुपमा और बच्चे भोपाल में ही रहे। अनुपमा के बच्चे इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ़ रहे थे। वे उन्हें ऐसे समय में लखनऊ शिफ्ट नहीं कर सकते थे। इस दौरान साने परिवार अनुपमा और उसके बच्चों के जैसे अभिभावक ही बन गए थे। जब सविता की शादी हुई, तो उसने साने भाभी की सहायता करने में कोई कसर-कमी नहीं रखी। वक्त-बेवक्त नहीं देखा। शादी के बाद गिफ्ट में आए लिफाफों और उनमें रखे कैश को दोनों खोल-खोल कर देखती रहीं। दोनों ने मिलकर बाकी सारे बड़े पैकेट्स भी खोल डाले थे। दोनों आधी रात तक इस काम में लगी रही थीं। आज के स्वार्थ और मतलबी समय में यह रिश्ता अपवाद जैसा ही था। साने भाभी की सगी बहनें जब कभी भोपाल आतीं, वे उनकी निकटता और आत्मीयता को देखतीं। ईर्ष्या भाव से उनका मुँह बिगड़ जाता। उनकी मुखाकृति बदल जाती।

फिर अनुपमा के पति का लखनऊ से भी हैदराबाद ट्रांसफर हो गया था। वह बच्चों को हॉस्टल में डालकर पति के साथ हैदराबाद में आ गई थी। भोपाल में उनके बच्चों का लोकल गार्जियन अब साने परिवार ही था। बच्चे हॉस्टल में रहते हुए ऊब जाते, तो साने भाई साहब उन्हें अपने घर ले आते। जैसे उनके अपने बच्चे हों। बच्चों के लिए साने भाभी माँ जैसा स्नेह रखती थीं। उनसे प्यार करतीं।

अपने बच्चों से कम न समझतीं। वैसा ही व्यवहार करतीं। उनका ध्यान रखतीं। अनुपमा के बच्चे भी उन्हें वैसे ही आदर-मान देते। उनके साथ अपने अभिभावकों सा व्यवहार करते। उनका कोई कहा नहीं टालते। इसी दौरान साने भाई साहब का दिल्ली ट्रांसफर हो गया। बंटू की हैदराबाद में नौकरी लग गई। वह हैदराबाद चला गया। दिल्ली आकर साने साहब को मुश्किल से आठ-नौ महीने ही हुए होंगे कि एक सुबह उन्हें जबरदस्त हार्ट अटैक पड़ा! और सब कुछ खत्म हो गया। साने परिवार पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा था। बंटू हैदराबाद से आकर उनके पार्थिव शरीर को दिल्ली से भोपाल लेकर आया। अनुपमा ने भरे दिल से संवेदना संदेश भेजा। परन्तु इस मौके पर स्वयं भोपाल नहीं पहुँची। उनके रिश्तेदारों की जमघट में उसकी क्या स्थिति होगी? यही सोचकर लेकिन तेरहवीं वाले दिन वह भोपाल पहुँच ही गई। साने भाभी से लिपट कर दोनों देर तक रोती रहीं। तेहरवीं के बाद पन्द्रह दिन तक साने भाभी को सांत्वना और मानसिक आराम की जरूरत थी, तब वह उनके साथ, उनके साये की तरह रही। नाते-रिश्तेदार तेरहवीं के बाद कोई भी साने भाभी के पास नहीं रुका था। साने भाभी अकेली पड़ गई थीं। कुछ दिन रह कर बंटू वापस हैदराबाद चला गया। सविता अपने पति के साथ चेन्नई चली गई थी। केवल नवीन ही अब घर में था। अनुपमा उनके पास, उनकी छोटी बहन जैसी बनकर रही थी। यहाँ से रिश्ते और भी प्रगाढ़ हुए।

ऐसे ही एक बार अनुपमा के बेटे का हॉस्टल से कॉलेज जाते समय उसके स्कूटर का कार के साथ एक्सीडेंट हो गया। बेटे के दाएँ बाजू में फ्रेक्चर हो गया। साने भाभी हॉस्टल गई और अरुण को अपने घर ले आई। दूसरे ही दिन अनुपमा हैदराबाद से भोपाल पहुँच गई थी। लेकिन अनुपमा के भोपाल पहुँचने के दूसरे दिन साने भाभी को किसी रिश्तेदारी में कुछ दिनों के लिए इंदौर जाना पड़ गया था। अनुपमा अपने बेटे अरुण और साने भाभी के सबसे छोटे बेटे नवीन के साथ, भोपाल में होशंगाबाद रोड की ओर उनके रौ हाऊसेस वाले घर में लगभग बीस दिन के करीब रही थी। वो उस घर में ऐसे रह रही थी, मानो उसका अपना घर हो। उसका स्वयं का मकान हो। पूरी तरह निश्चिंत, बेझिझक। पूरा घर खुला। किसी कमरे में कोई ताला-चाबी नहीं। कोई रोक नहीं, कोई टोक नहीं। अनुपमा की बेटी बंटू

और नवीन को राखी बाँधती थी। दोनों के साथ सगे भाईयों जैसे मेल, बर्ताब होता था। अपना-पराया जैसा कुछ लगता नहीं था।

अनुपमा की आँखों से नींद उड़ चुकी थी। यादों का सैलाब उमड़ पड़ा था। लेटे-लेटे अनुपमा को और भी कई ऐसी बातें याद आने लगी थीं, जिनके साथ साने भाभी गहराई से जुड़ी हुई थीं। बाद के समय में बच्चे जब जॉब में आ गए और अलग-अलग शहरों-महानगरों में रहने लगे, तो भी साने भाभी ने अनुपमा के दोनों बच्चों की शादियों में शामिल होने में कोई आना-कानी नहीं की थी। ऐसे ही नवीन की शादी में अनुपमा अपने पति के साथ कुल्लू से पुणे पहुँच गए थे। जैसे दूर के स्थान में रहने वाले परिवार के ही सदस्य हों।

समय गुजरता रहा। बंटू अपनी बहू के साथ कनाडा शिफ्ट हो गया था। उसने वहीं घर ले लिया था। नवीन हैदराबाद में सेटल हो गया था। सविता अपने पति के साथ कभी चेन्नेई, कभी मुंबई में रह रही थी। लेकिन साने भाभी के साथ उसका भाग्य और ईश्वर दोनों शायद साथ नहीं दे रहे थे। उन्हें ब्रेन स्ट्रोक हो गया था। वह नवीन के पास हैदराबाद में रह रही थी। भोपाल का घर बंद पड़ा था। इंदौर में खरीदे नए फ्लैट को किराये पर दिया हुआ था। साने भाभी के अनुशासनप्रिय स्वभाव के कारण नवीन की बहू को सास का अधिक अनुशासित होना खलता था। सास-बहू की राशियाँ शायद मेल नहीं खाती थीं। नवीन असमंजस में रहता। माँ को कहाँ छोड़े? अकेली न भोपाल में रह सकती थी, न इंदौर में। हालाँकि इंदौर में उनकी सगी बहनें और उनके बच्चे थे। लेकिन अपनों को छोड़ रिश्तेदारों के पास कैसे रहना? साने भाभी यही सोचती थी। कोविड काल के दौरान छोटे बेबी ब्वॉय को कोरोना का संक्रमण न हो जाए, इस डर से उन्होंने बगल के खाली फ्लैट को भी रेंट पर ले लिया था। भाभी उस फ्लैट में अकेली ही रहती। नवीन ही उसके फ्लैट में आना-जाना करता था। नवीन की पत्नी संक्रमित हो जाने के अपने डर से उस फ्लैट में जाती ही नहीं थी। उन्होंने एक परमानेंट बाई जिसे एटेंडेंट कहना चाहिए, रख लिया था। साने भाभी को पैसों की चिंता नहीं थी। अपनी और पति की पेंशन तो मिलती ही थी, इंदौर वाले घर का किराया भी उनके खाते में जमा होता था।

अनुपमा ने साने भाभी के वाट्सएप डीपी में डाले उनकी फोटो को अब ध्यान से देखा। भाभी का चेहरा कुछ उतरा हुआ लग रहा था। मुँह पर झाँईयाँ अब अधिक दिख रही थीं। लेकिन उनकी बोलती सी मोटी-मोटी आँखें, पहले जैसी ही सुंदर लग रही थीं। वे नवीन के एक वर्ष भर के बेटे को शायद थपक-थपक कर सुलाने की कोशिश करती लग रही थीं। बेबी बिस्तर पर लेटा हुआ दिख रहा था। भाभी अपनी आँखों में ढेर सारा प्यार-दुलार, वात्सल्य भरे, उसे ताकते हुए थपक रही थीं।

अक्टूबर का महीना होने के बावजूद, रात भर वर्षा होती रही। बाहर लगातार पानी गिर रहा था। भीतर कमरे में अनुपमा सोच के दरिया में डूबी, आँखों से टपकते आँसुओं से बेखबर बन गई थी जैसे। अक्टूबर मास में लगातार बरसती ऐसी मूसलाधार बारिश कम ही देखने को मिलती है। अनुपमा छप्पर पर बजती बारिश की बूँदों से उठती स्वर लहरी को सुनने की जगह, अपने भीतर बह रही सोच और दुखों की नदी में डूब-उतरा रही थी। इन्हीं सबको देखते, सोचते-विचारते, पुराने दिनों, पुरानी बातें याद करते-करते अनुपमा को आधी-अधूरी नींद आ गई थी।

अभी ठीक से सुबह भी नहीं हुई थी कि दिल्ली से अरुण का फोन आ गया। अनुपमा का दिल किसी अनहोनी की आशंका से धड़क उठा।

'मम्मी! नवीन से मेरी बात हो गई साने आंटी हम सबको छोड़कर चली गईं।' अरुण का स्वर भावाधिक्य से अवरुद्ध हो गया था। अनुपमा स्तब्ध-सन्न रह गई। उसे थोड़ी देर तो कुछ सूझा ही नहीं कि क्या बोले।

'बॉडी तो अस्पताल में ही रखी हुई है क्रिमेशन आज ही होना है। मैं फ्लाइट से हैदराबाद को निकल रहा हूँ।'अनुपमा से कुछ बोलते नहीं बना। उसकी रुलाई फूट पड़ी थी। आँसुओं की बाढ़ पलकों का बाँध तोड़कर गालों से नीचे बह उठी। लेकिन फिर उसने अपने जी को कड़ा किया। बहते आँसुओं के बीच ही उसने नवीन को फोन लगाया। इस बार फोन लग गया था। 'नवीन बेटे क्या से क्या हो गया?' उसका स्वर भर्रा गया था। 'आंटी सब कुछ खत्म हो गया। पिछले कल शाम 3.30 बजे के आसपास मम्मी खत्म हो गईं।'

'बेटे! मैं हैदराबाद आना चाह रही हूँ पहुँच पाऊँगी?'

'आंटी क्रिमेशन तो आज ही होना है। बंटू और सीमा भी कल ही कनाडा से पहुँच चुके हैं। सविता आज पहुँचेगी। सब कुछ

खत्म हो गया है आंटी।' नवीन का गला रुँध गया था।

'बेटा मैं तो रोज उनसे गुड मॉर्निंग करती थी। अब देखा 2 अक्टूबर के बाद से वाट्सएप पर उनका कोई उत्तर नहीं था। मैं समझती रही ठीक ही होंगी। अचानक यह सब कैसे हो गया?'

'नहीं आंटी! आई बहुत कष्ट में थीं। अपने आप से बाथरूम आदि भी नहीं जा पा रही थीं। बहुत तकलीफ थी उन्हें।'

'लेकिन किडनी के मरीज तो पाँच-सात वर्ष निकाल लेते हैं। फिर ऐसा कैसे हो गया?' अनुपमा हैरान-परेशान थी।

'आई को ब्लड कैंसर हो गया था। कैंसर की वजह से ही दोनों किडनियाँ खराब हो गई थीं। डायलिसिस करना ही पड़ता था। कोविड के दौरान उन्हें कोरोना भी हो गया था। सब चीज़ें एक साथ हुईं। बस हम हाथ मलते रह गए।' नवीन का फोन पर ही फूट-फूट कर रोने की आवाज़ आ रही थीं। अनुपमा को साने भाभी के साथ अपनी वीडियो कॉल के दौरान उन्हें कोविड पॉजिटिव होने की बातचीत बरस ही याद आ गई।

'बेटे! बंटू पास हो तो मेरी उससे बात करा दो।' नवीन का रोना सुनकर, रुँधे गले से अनुपमा ने कहा।

'हेल्लो आंटी' बंटू की आवाज़ थी।

'क्या हो गया बेटे! तुम समय पर पहुँच गए थे?'

'हाँ आंटी! मम्मी के जाने से केवल 10 मिनट पहले पहुँचे थे। उन्होंने मुझे पहचान लिया था। बस देखती रहीं अपने होंठ हिलाने की कोशिश की परन्तु बात नहीं कर सकीं। 10 मिनट के बाद ही चली गईं। उस समय हम चारों ही उनके पास थे।' बंटू की आवाज़ ठहरी हुई, लेकिन दुख से भारी हो गई लग रही थी।

'तुम लोग तो अब कुछ दिन रहोगे?'

'आंटी तेरहवीं तक तो हैं ही तेरहवीं भोपाल में करेंगे। तेरहवीं के बाद तो वापस निकलना ही पड़ेगा। पच्चीस दिन मार्च में रह कर गए हैं।'

अनुपमा को बंटू की आवाज़ किसी गहरे कुँए से आती हुई लगी। वह साने भाभी की तेरहवीं पर भोपाल जरूर जाएगी। दुख गणित नहीं जानता है। लाभ-हानि नहीं देखता है। पर दिल को कचोट डालता है। कभी आँखों के रास्ते बह उठता है। कभी अंदर ही अंदर घुमड़-घुमड़ कर सालता रहता है। अनुपमा द्रवित मन से बार-बार सोच-विचार के अजीब कशमकश में फँस गई है। तेरहवीं दिवाली से एक दिन पहले है। वो अपने घनिष्ठ मित्र, सबसे प्रिय सखी साने भाभी की तेरहवीं में जाए या अपने घर कुल्लू में दीपावली मनाए? आप ही बता दीजिए अनुपमा को क्या करना चाहिए? स्नेह, अटूट मैत्री भावना या लोक संस्कार में से किसे चुने वो?

नाग मंदिर कालोनी, शमशी,
कुल्लू-175126 (हिमाचल प्रदेश)

पत्रांश

अक्षरा (अगस्त 2023) के डॉ. रामदरश जी मिश्र पर केन्द्रित अंक को आपने और आपकी संपादकीय टीम ने शोधग्रंथ बना दिया है। हिन्दी साहित्य को 'अक्षरा' का यह 221 वाँ अंक अमूल्य भेंट है। डॉ. रामदरश जी पर वैसे तो पीएच . डी. के लिए कई शोध हुए, हो रहे हैं और होते रहेंगे, किन्तु अक्षरा का मिश्र जी पर केन्द्रित यह अंक मेरे मत में शोध के विभिन्न पहलुओं यानी रंगों का इन्द्रधनुष हो गया है। इस अक्षर-अनुष्ठान और शोध-शाला में आपने उन सबको शामिल किया, जिन्हें मिश्र जी के प्रति अपने आदर का अर्घ्य चढ़ाना था। आपका संपादकीय तो हर बार, ज्ञान की भागीरथी लेकर आता है। रामदरश जी का आत्मकथ्य और प्रकाश जी मनु का संस्मरण तथा जया केतकी जी के द्वारा मिश्र जी के निबंध-संग्रह 'छोटे-छोटे सुख' की समीक्षा के साथ ओम निश्चल जी द्वारा लिया गया साक्षात्कार इस अंक के आकर्षण हैं। साधुवाद

अजहर हाशमी, रतलाम (म.प्र.)

मोनालिसा-2

– **मंजुश्री**

जन्म स्थान – उरई (उ.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., बी.एड।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

पता नहीं इस बात पर खुश होना चाहिए या दुखी कि इतने सालों बाद अपनी शर्तों पर जिंदगी जीने का मौका मिला है, पर ये भी सच है कि इसकी कोई मामूली कीमत नहीं चुकाई है मैंने। जो कुछ भी टुकड़ों-टुकड़ों में पाया था सब खत्म हो गया। फिर से उलझे धागों के नये सिरे खोजने होंगे। फिर सोचती हूँ कि ये जो इतने सालों तक समझौतों की जिंदगी के बाद पाया है। क्या बहुत पहले नहीं मिल सकता था। इतनी हिम्मत पहले क्यों नहीं जुटा पायी मैं। क्यों जिंदगी के इतने साल इन अँधेरे काँटों भरे रास्तों पर चलती रही, लगातार टूटते और बिखरते हुये। लगता है एक सदी बीत गयी है अपने आप को तलाशते और साबित करने की कोशिश में। कितने साल यूँ ही जाया हो गये जिंदगी के या शायद खुद जाया कर दिये मैंने। क्या यही हल था। इन स्थितियों के लिये किसी और को दोष देकर क्या मैं आसान तरीका तो नहीं ढूँढ़ रही हूँ। टूटते आत्मविश्वास के कारण बिखरती जाती मैं निराशा की अतल गहराइयों में बार-बार गोते लगाती अकेली होती जा रही थी। उससे बाहर आने के लिये कब से हाथ-पाँव मार रही थी।

क्यों अविनाश क्यों तुमने मेरा हाथ पकड़कर मुझे उस अँधेरे से बाहर निकालने की पुरजोर कोशिश नहीं की। तुम तो मेरे साथ चले थे। उस समय भी तो मैं ऐसी ही थी, बिखरी टूटी हुई सी। तब तुमने उम्मीदों के जुगनू जगाये थे और मैं उस मद्धम सी टिमटिमाती रोशनी के सहारे अँधेरों से बाहर आने की कोशिश करने लगी थी। सच जानो मैं पूरी कोशिश कर रही थी। फिर क्यों मेरा उन अँधेरों से बाहर आने का इंतजार नहीं कर सके। इतने किनारे आकर तुमने अपना हाथ अचानक वापस खींच लिया और मैं फिर नीचे जाने लगी थी। मैं तो थी ही कमजोर, तुम तो थे न, मैं तुम्हें दोष नहीं दे रही हूँ, उत्तर ढूँढ़ रही हूँ। अविनाश तुम मेरा साहिल थे फिर क्यों आज हम दोनों दो अलग-अलग टापुओं पर खड़े हैं। कभी सोचती हूँ अच्छा हुआ तुमने हाथ छुड़ा लिया नहीं तो मेरा बोझ अपने साथ तुम्हें भी नीचे खींच लेता। मैं तुम्हें किसी भी कीमत पर जाने नहीं देना चाहती थी, पूरी शिद्दत से कोशिश कर रही थी। जानती हूँ अब भी ये किस्सा खत्म न होता गर शालू ने मेरी जिंदगी की फिसलती डोर फिर से अपने हाथों में थाम न ली होती। नहीं मालूम कब मैंने अपने आप को शालू के हवाले कर दिया। कब वो मेरी जिंदगी के निर्णय लेने लगी। वही तो मेरा सहारा थी।

शालू शालिनी, अनुराधा, कनिका और मेरा बड़ा अजीब सा ग्रुप था या यूँ कहिए कि मैं उसमें मिसफिट थी तो गलत नहीं होगा। मैं उनके ग्रुप में बाद में आयी दरअसल शालू ने खुद मुझे जोड़ा था। हम सबके स्वभाव एकदम अलग थे, शालिनी और अनुराधा एकदम बिंदास मस्ती करने वालीं तो कनिका खूब पढ़ाकू थी। कॉलेज के सामने वाले थियेटर में नयी पिक्चर लगते ही शालिनी और अनुराधा क्लास बंक करके पिक्चर देखने पहुँच जातीं। पढ़ने में ठीक थीं। कनिका उनके लिये कोई न कोई बहाना ढूँढ़ ही लेती थी। मैं पाँचवीं बेंच पर कोने में बैठी क्लास में चहकती लड़कियों को जोर-जोर से बातें करते शोर मचाते चुपचाप देखती रहती। मेरी किसी से पहचान नहीं थी। दो-चार लड़कियों को छोड़कर मुझे तो बहुतों के नाम भी नहीं मालूम थे। जरूरत ही नहीं पड़ती थी।

एक दिन इकनॉमिक्स के सिन्हा सर ने पढ़ाते-पढ़ाते अचानक मेरी बेंच की ओर इशारा करते हुये पुकारा. . .

‘हलो क्या नाम है आपका उधर हाँ हाँ आपका।’

एकबारगी तो समझ ही नहीं आया कि वे किसकी ओर इशारा कर रहे हैं। मैंने उनकी ओर देखा तो बोले-‘यस आप ही से पूछ रहा हूँ, कहाँ खोई हुईं हैं आप? क्लास में बिल्कुल ध्यान नहीं है आपका। क्या नाम है?’

दोबारा पूछा उन्होंने, सारी क्लास मुड़कर मुझे देखने लगी। मैं अकबका कर खड़ी हो गयी। मेरी कनपटी गरम होने लगी, शरीर पर काँटे उग आए, पसीने की पतली लकीर पीठ पर बहने लगी और हथेलियाँ गीली हो आयीं। हलक सूखने लगा बोलने की कोशिश कर रही थी पर आवाज़ ही नहीं निकल रही थी। बगल में बैठी लड़की ने टहोका मारा तो बड़ी मुश्किल से धीरे से अटकती हुई आवाज निकली.....

'नेहा चौधरी।'

पीछे की बेंच से खुसपुस सुनाई दी।

'जरा जोर से बोलिए।' दोबारा कोशिश की पर आवाज ही नहीं निकली तभी बगल में बैठी लड़की ने जोर से कहा–'सर नेहा चौधरी।'

'ठीक है। बैठिए और क्लास में ध्यान दीजिए।'

धम्म से बेंच पर बैठते ही ऐसा लगा जैसे न जाने कितना लंबा सफर तय करके आयी हूँ। पता नहीं क्यों नर्वस हो जाती हूँ मैं। अपनी तरफ देखते या आपस में लोगों को बात करते देख कर लगता है कि वे मुझे लेकर बात कर रहे हैं। ज्यादा लोगों के बीच घबराहट होने लगती है। बात करते ही पसीना छूटने लगता है आवाज अटकने लगती है। कितना भी अपने को सँभालने की कोशिश करूँ हिम्मत जवाब दे जाती है। बचपन से यही हालत है। बड़े होने पर बाहर निकलने के कारण परेशानी कम होने की जगह और बढ़ती जा रही है।

तभी बेल बजी और मेरे अलावा सभी लोग बाहर निकल गये, रिसेस हो गयी थी। मैं बेंच पर सिर रखे अपने आप को सँभालने की कोशिश कर रही थी तभी अपने कंधे पर किसी का हाथ महसूस कर सिर उठा कर देखा तो शालू थी। मेरी उससे कोई पहचान नहीं थी। बस क्लास में मेरे साथ पढ़ती है, इतना ही जानती थी। मेरी आँखें डबडबा आयीं। वह बोली कुछ नहीं बस थोड़ी देर कंधे पर हाथ रख कर खड़ी रही फिर चली गयी। इतने दिनों में मेरा किसी से यह पहला संपर्क था वर्ना क्लास में चुपचाप आती और चली जाती। किसी से कुछ लेना–देना नहीं। शालू, अनुराधा और कनिका सबसे आगे की बेंच पर बैठती थीं। कभी सोचती हूँ मैं बाकी लड़कियों की तरह क्यों नहीं हूँ। क्या है जो मुझे पीछे खींचता है सबके साथ एक होने से रोकता है।

उस दिन के बाद से मुझे देखकर शालू दूर से हाथ हिलाकर विश करने लगी और मैं भी। यह मेरी शालू से मित्रता की शुरुआत थी। उसे देखकर अकेलेपन का एहसास थोड़ा कम हो जाता। रिसेस में कुछ लोग कैंटीन में बैठकर खाते–पीते गप्पें मारते तो कुछ लोग बाहर कॉरीडोर में खड़े बातें करते, मैं क्लास में ही बैठी रहती।

उस दिन बहुत जोरों से पानी बरस रहा था। कॉलेज के भीतर–बाहर पानी भरा था। लॉन में इतना पानी था कि कॉरीडोर की पहली दो सीढ़ियों तक पानी आ गया था। बहुत कम लोग आये थे। रेनीडे मना रहे थे और जो आये भी थे वे कॉरीडोर में आती बौछारों का मजा ले रहे थे। टीचर्स भी गिने–चुने ही आये थे। तभी बालों से पानी टपकाती भीगे कपड़ों में शालिनी मेरे पास आकर बैठते हुए बोली।

'हाय मैं शालिनी और सुनाओ क्या चल रहा है।'

'हाय' मैंने उसकी तरफ हाथ बढ़ाया।

'बाहर देखो कितनी तेज बारिश हो रही है। तुम यहाँ क्या कर रही हो। कितना सुंदर मौसम है, मुझे तो बारिश में भीगना बहुत पसंद है। बाकी दिन चाहे छुट्टी मार लूँ बारिश में जरूर आती हूँ।'

कुर्ते से पानी को निचोड़ते हुये बोली। 'अरे तुम तो बिल्कुल सूखी हो।'

'हाँ जब मैं आयी थी तब बरसात नहीं हो रही थी।'

'चलो न बाहर। यहाँ अकेली बैठी क्या कर रही हो? कितना मजा आ रहा है, सब लोग बाहर हैं। कितने कम लोग आये हैं।' मेरा हाथ खींचते हुये बोली–'अरे नहीं मुझे भीगना बिल्कुल पसंद नहीं है और फिर इन्हीं भीगे कपड़ों में पूरे दिन क्लास में बैठना पड़ेगा।'

'कुछ नहीं होता। थोड़ी देर में कपड़े पंखे में सूख जायेंगे। ऐसा

मौका कौन सा रोज-रोज मिलता है। कोई रोक-टोक नहीं है, क्लासेज नहीं हैं। सर लोग भी नहीं आये हैं जो आये भी हैं तो स्टाफ रूम में वे भी मजा कर रहे हैं।'

मेरे ना, ना करने के बावजूद मुझे खींचते हुये बाहर लॉन में ले आयी। बाहर कॉरीडोर में खड़े लड़के-लड़कियाँ हमें पानी में भीगते देख जोर-जोर से तालियाँ बजाने लगे। थोड़ी देर में कनिका, अनुराधा और एक दो लड़कियाँ और भी शामिल हो गयीं। हम एक-दूसरे का हाथ पकड़कर गोल-गोल घूमते हुये काफी देर तक नाचते-गाते रहे।

चेहरे पर पड़ती बारिश की बूँदों और सब कुछ भूलकर सबके साथ भीगने से जो सुकून मिला उससे मैं बहुत खुश थी। पहली बार मुझे लगा कि मैं क्यों इन छोटे-छोटे सुखों से अपने आप को दूर रखती आ रही हूँ। क्यों बंद कर रखा है अपने आप को। बहुत देर तक हम वहीं सीढ़ियों पर बैठे हथेलियों पर बूँदे पकड़ते बात करते रहे। जिंदगी में मुझे इतना मजा कभी नहीं आया था। तभी दीक्षित मैडम को आते हुए देखकर हम सब क्लास में आ गये पर इतने कम बच्चों को देखकर वे वापस चली गयीं और हम सब भीगे कपड़ों में ही क्लास में गाते-बजाते छुट्टी का मजा लेते रहे। क्लासेज जल्दी छूट गयी थीं। ये मेरा सबसे यादगार दिन था। मेरे मन के बंद दरवाजों पर शालू ने हल्की दस्तक दे दी थी।

घर में घुसते ही दादी सामने पड़ गयीं और मुझे भीगे कपड़ों में देखते ही अपना माथा ठोंकते हुये चिल्लायीं।

'सत्यानाश देखो तो बिहारी, का सकल बनाये रखी है, महारानी ने। भीगती हुयी चली आय रईं हैं। कपड़े कैसे बदन से चिपक रए हैं सरम ना लिहाज। मोहल्ले की औरतें तमाम बातें करेंगी। इत्ती कैसे भीज गईं। छाता-वाता न ले गई थीं का।'

आवाज सुनकर जब तक कोई आता मैं तुरंत बैग एक तरफ फेंककर बाथरूम में घुस गयी। दादी का बड़बड़ाना चालू था। ताऊजी दादी के चिल्लाने पर भड़क रहे थे। वैसे भी दादी की नजरों में मेरा कोई वजूद नहीं था। घर पर एक मनहूस बोझ थी मैं। जब देखो तब ताना मारती रहतीं मेरे दबे रंग और चुप्पे स्वभाव को लेकर। उन्होंने कभी मुझे प्यार नहीं किया। मुझे क्या मैंने तो घर के हर सदस्य पर उन्हें चिल्लाते ही देखा है। डर के मारे सब उनसे दूर ही रहते। अजब हाय-तौबा मची थी। पर मुझे कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। भीगे कपड़े बदलकर दरवाजा बंद करके पलँग पर लेटी मैं अब भी अपने चेहरे पर बारिश की बूँदों की ठंडी छुअन महसूस कर रही थी। आज का दिन कितना अलग और सुंदर था। शालू ने एक सुंदर कोमल एहसास जगा दिया था। अपने होने का इस समय, इतना दुख नहीं हो रहा था। शालू मेरे करीब आ रही थी। मेरे मन के बंद दरवाजों के बिल्कुल नजदीक बाहर ही खड़ी थी और मेरे हाथ दरवाजे पर चढ़ी साँकल को खोलने के लिये बढ़ रहे थे। अब तक उसने अपनी तरफ से मेरे भीतर झाँकने की पहल नहीं की थी। कभी कुछ पूछा नहीं। मैं जैसी थी वैसे ही उसने मेरी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ा दिया था। उसका पास आना मुझे अच्छा लगने लगा था।

कुछ दिनों बाद उसने मुझे आगे की बेंच पर अपनी दोनों सहेलियों के साथ बैठने के लिये कहा पर मैं इतने आगे टीचर्स की आँखों के सामने नहीं बैठ सकती थी। दूसरे दिन वे तीनों मेरी बेंच पर आ गईं। कुछ समय के बाद शालू ने हम चारों के लिये तीसरी बेंच पर जगह बना ली। वहाँ बैठे लोग आगे की बेंच पर चले गये थे। मेरे लिये ये बहुत बड़ी बात थी। धीरे-धीरे मैं उन तीनों से थोड़ा खुलने लगी थी। कॉलेज आना अच्छा लगने लगा था। सबसे बड़ी बात ये थी कि उनमें से किसी ने कुछ नहीं पूछा जिससे मुझमें हिम्मत और विश्वास जागने लगा। कॉलेज में ही कनिका के साथ मैंने अलग से पेंटिंग की क्लासेज ज्वाइन कर ली थी। मजा आने लगा था नर्वसनेस कम होने लगी थी। यहीं मेरी मुलाकात अविनाश से हुई थी। हमारी पेंटिंग क्लास में हम चार लड़कियाँ और सात लड़के थे। अविनाश एक साल सीनियर था। अपनी-अपनी क्लास में आते-जाते सभी एक-दूसरे को विश करते पेंटिंग्स के बारे में डिस्कस करते। मैं चुपचाप सुनती रहती, किसी से बात नहीं करती थी अपने काम में व्यस्त। कई महीनों बाद कॉलेज के ही एक छोटे से हॉल में हम सब की पेंटिंग्स का डिसप्ले था। उसी दौरान अविनाश ने चुपचाप मुझे एक पेंसिल स्कैच प्रेजेंट किया। जो कुर्सी पर चुप बैठी पेंटिंग करने में मगन मेरा स्कैच था। उसके नीचे लिखा था मोनालिसा 2। यह बिल्कुल ही अप्रत्याशित था। कब उसने मेरा स्कैच बनाया मालूम ही नहीं पड़ा। मेरी उससे कोई खास पहचान नहीं थी। एक-दो बार उसने मेरी पेंटिंग्स की तरीफ जरूर की थी। मुझे नेचर पेंटिंग पसंद थी उसे पोट्रेट बनाना ज्यादा पसंद था। अपना स्कैच देखकर मेरे तो हाथ-पाँव

फूलने लगे जैसे मुझसे कोई बहुत बड़ी गलती हो गयी हो। पहली बार किसी लड़के ने मुझे कुछ दिया वो भी मेरा ही स्कैच। मोनालिसा 2 इतनी सकते में थी कि थैंक्स भी मुँह से नहीं निकला। कितनी देर तक वो स्कैच हाथ में लिये मैं वहीं खड़ी रही और वह हैरान-सा थोड़ी देर रुक कर चला गया। मैं बार-बार उस स्कैच के बारे में ही सोच कर परेशान हो रही थी। मैं अब क्या करूँ। अविनाश ने मेरा ही स्कैच क्यों बनाया मेरा मज़ाक बनाया है क्या।

शालू ने मेरे हाथ से स्कैच लेकर देखा और मेरे कंधे को हल्का सा दबा कर बोली-'अविनाश ने बहुत सुंदर स्कैच बनाया है तुम्हारा, नेहा सँभाल कर रखना इसे।'

इसके बाद अक्सर क्लास से आते-जाते अविनाश से हाय-बाय हो जाती। कनिका और मैं हमेशा साथ होतीं। कभी अकेले बात करने का मौका ही नहीं मिला न ही उसने कभी कोशिश की। पर अब मैं अक्सर उसके बारे में सोचने लगी थी। मेरी आँखें उसे ढूँढ़ती। क्लास में आना अच्छा लगने लगा फिर तुरंत उस ख्याल को झटक देती। मैं और अविनाश जमीन-आसमान का अंतर है। एक स्कैच भर बना कर दे देने से मैं क्यों ख्याली पुलाव बनाने लगी हूँ। ऐसा मुझमें क्या है जो कोई मेरे बारे में सोचेगा कुछ भी तो नहीं। दबी, सहमी, उपेक्षित, गहरी साँवली सी मैं जो लोगों का सामना नहीं कर सकती। आत्मविश्वास की कमी के कारण नर्वस होने लगती हूँ आवाज नहीं निकलती। क्यों भला मेरे डर और अँधेरों के बीच कोई झाँकेगा। फिर भी शायद . . .

नवंबर का महीना था। कॉलेज फैस्टिवल की तैयारियाँ चल रही थीं। सारे-सारे दिन टीचर्स और स्टूडेंट्स रिहर्सल्स में व्यस्त रहते। पूरे कॉलेज में गहमागहमी। हर कोई किसी न किसी तरह से फैस्टिवल से जुड़ा हुआ था कोई नाच-गाने में भाग ले रहा था तो कोई डोनेशन, सिटिंग अरेंजमैंट, स्टेज से लेकर बाकी व्यवस्था में लगा था। कैंटीन में, बरामदे में, क्लासेज में, हॉल में। सीढ़ियों पर बस फैस्टिवल की चर्चा। पढ़ाई लगभग बंद थी। जिन टीचर्स के कोर्स पीछे चल रहे थे, वे कुछ एक्स्ट्रा क्लासेज ले रहे थे। कुछ टीचर्स रेगुलर क्लास में कोर्स न पूरा करके मैनेजमेंट को दिखाने के लिये भी एक्स्ट्रा क्लासेज लेते हैं। स्टूडेंट्स उन्हें कोस रहे थे। शालू ने राम वनगमन पर नृत्य नाटिका तैयार की थी जिसमें अनुराधा, कनिका, शालू के साथ और भी आठ-दस लड़के-लड़कियाँ भाग ले रहे थे। मैं स्टेज के पीछे का काम देख रही थी। इतने में किसी को ध्यान आया कि अहल्या उद्धारवाला सीन तो रह गया।

इस पर नामों की चर्चा करते-करते अचानक विजय बोला- 'क्यों क्या दिक्कत है अहल्या है न अपने पास वो नेहा चौधरी क्लास में भी तो चुपचाप चट्टान-सी एक तरफ बैठी रहती है।' तभी विनय तपाक से बोला 'अरे यार रंग देखा है उसका कितना डार्क है। अहल्या बहुत सुंदर थी राम के पैर लगाते ही उसे जीवित होना है।'

मैं स्टेज पर पीछे सजावट का काम देख रही थी। बात बिना सोचे एकदम सामान्य तरीके से की गई थी पर मेरे हाथ से फूलदान गिरते ही बाहर सन्नाटा छा गया।

'शटअप यार कुछ सोच-समझ कर बोला करो। कुछ अकल है या नहीं। कहाँ किसके बारे में क्या बोल रहे हो।'

शालू झल्लाते हुए जोर से बोली -'सॉरी पर मैंने ऐसा क्या कह दिया। सही तो कहा फिर इस समय लास्ट मूमैंट पर और कौन मिलेगा सब कहीं न कहीं बिजी हैं। फिर करना भी कुछ नहीं है। स्टेज पर बैठना है और अंत में छोटा सा डायलॉग।'

मेरा बुरा हाल था। एक तो मेरा गहरा रंग दूसरे स्टेज पर सबके सामने जाने की कल्पना मात्र से मेरे हाथ-पाँव फूलने लगे। गला सूखने लगा। ऐसा लग रहा था कि मैं यहीं कहीं समा जाऊँ। पसीने से तर-बतर दीवार से पीठ टिकाये आँख बंद करके वहीं बैठी रही।

क्यों होता है ऐसा मेरे साथ कि जब भी थोड़ा सा इस समस्या से उबरने लगती हूँ तो फिर कुछ ऐसा घट जाता है कि वापस धँसने लगती हूँ, अवसाद की गहरी खाई में। इतने सालों में हीनभावना इतनी गहरी पैठ गयी है कि उससे निकलते नहीं बनता। चार कदम आगे बढ़ाती हूँ तो कोई न कोई बात ऐसी हो जाती है कि दो कदम पीछे पहुँच जाती हूँ। शालू अविनाश अनु, कनिका सब तो हैं फिर भी न जाने क्यों बाकी सब भी तो मेरे क्लासमेट ही हैं थोड़ी देर पहले तो सब साथ बैठे आपस में हँस-बोल रहे थे। कितने महीने हो गये सेशन शुरू होकर अब तक तो आदत पड़ जानी चाहिये थी न सब बातों को सुनने की। लोग चाहे

सामने बोलते न हों पीठ पीछे तो कहते ही होंगे।

रिहर्सल बंद हो गयी सब इधर–उधर हो गये। मैं और शालू रह गये। काफी देर तक वह मेरा हाथ पकड़े सहलाती तसल्ली देती रही फिर बोली –
'नेहा कुछ कहना चाहोगी।'

आँखों में झिलमिलाते आँसुओं को रोकती मैं उसकी बगल में बैठी थी।

'मुझे लगता है एक बार खुलकर रो लो। बह जाने दो सब कुछ आँसुओं में।' मेरी पीठ धीरे–धीरे सहलाती रही वह और मेरे आँसू बह चले।

वाकई आज खूब रोने का मन कर रहा था। मैंने महसूस किया कि मैं आज तक किसी के सामने खुल कर बात करना तो दूर खुल कर रो भी नहीं पाई हूँ। इसी वजह से सब कुछ मन के भीतर ही दबा रह जाता है और मेरे भीतर निराशा और अकेलापन घर करता चला गया है। छोटी–छोटी बातें और झिड़कियाँ उपेक्षित मन में गाँठे बनाने लगीं हैं।

'अपने भीतर के इस डर को निकालने की कोशिश करो नेहा। क्या रोकता है तुम्हें सहज होने से। मैं देखती हूँ तुम सबसे बात नहीं करतीं। खोलो मन की गाँठों को। किसी से तो कहो अपने मन की बात। कब तक बंद रहोगी अपने आप में। हम सब की तरह खुलकर हँसने–बोलने की कोशिश करो नेहा।'

मेरी तरफ देखती हुयी बोली –'सच कहती हूँ सब मेरे तुम्हारे बीच ही रहेगा। भरोसा रखो मुझ पर मैं न कुछ बोलूँगी न कुछ पूछूँगी केवल सुनूँगी। मन में जो कुछ है सब कह डालो। मन हल्का हो जायेगा।' मेरे हाथ थपथपाते हुए बोली।

न जाने क्यों आज उस पर भरोसा करके खूब रोने का मन कर रहा था। हँसमुख बिंदास दिखने वाली शालू की मन को छूने वाली बातों को सुनकर सालों से थमे आँसू जैसे सारे तटबंधों को तोड़ने को आतुर थे।

'नेहा क्या सोच रही हो? मैं तुम्हारे साथ हूँ' उसने फिर कहा – और वहीं स्टेज की सीढ़ियों पर बैठे–बैठे मैं शालू को सब बताते–बताते वापस अपने बचपन में पहुँच गयी। चार साल की मुँह में अँगुली डाले सिसकती हुई घर में इधर–उधर डोलती हुई दुबली–पतली लड़की नेहा चौधरी . . .

सुना रही थी आपबीती जब से मैंने होश सँभाला माँ को हमेशा बीमार बिस्तर पर ही लेटा पाया। पता नहीं क्या बीमारी थी। मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी उन्होंने मुझे गले लगाया हो या प्यार से अपने पास बिठाया हो। पापा महीनों बाहर रहते थे। वे तो कभी अपने लगे ही नहीं, अजनबी जैसे। पापा कैसे होते हैं मैंने जाना ही नहीं। सब पापा तो ऐसे नहीं होते। सामने चंदर के पापा तो हमेशा उसे अपने साथ सब जगह ले जाते थे, प्यार करते थे उसके साथ छत पर क्रिकेट भी खेलते थे। मेरे पापा मेहमान जैसे जब आते तो दो–चार चीजें सबके लिए ले आते। माँ के चेहरे पर भी पापा के घर आने की खुशी नहीं देखी मैंने। मैं दूर से उन्हें टुकुर–टुकुर देखती रहती, पास जाने की हिम्मत ही नहीं पड़ती थी। माँ–बाप दोनों के प्यार के बिना घर भर की अवहेलना और झिड़कियों के बीच मैं कितनी अकेली थी किसी ने सोचा ही नहीं। न जाने मेरे मन में क्या चलता रहता होगा। अब सोचती हूँ तो लगता है कि शायद पापा भी घर से दूर ही रहना चाहते होंगे। किसी भी रिश्ते में जरा भी गरमाहट थी ही नहीं।

माँ जैसे बेजार हो गई थीं जिंदगी से। दादी और पापा ने उनका बिल्कुल ख्याल नहीं रखा। मुझे तो बड़े होने पर पता चला कि मेरे बाद के दो एबॉर्शन में माँ की हालत एकदम खराब हो गयी थी। दादी तो बस पापा के आते ही घर भर की रामकहानी और शिकायतें लेकर बैठ जातीं। ताऊ जी तो वैसे ही घर की बैठक से काम–काज देखते थे। घर के अंदर दादी का ही राज था। दोनों बड़ी बहनें अपने में मगन रहतीं। मुझे अपने साथ बहुत मुश्किल से शामिल करतीं। मैं अकेली ही खेलती। गलती से कभी दादी के सामने पड़ जाती तो झिड़क कर भगा देतीं। पता नहीं क्या चिढ़ थी उन्हें, उस छोटी सी बच्ची से। इतनी जोर से डाँटती कि मैं डर से काँपने लगती और सहमी सी सबकी नजरों से दूर मुँह में अँगुली डाले, किसी कोने में बैठी रोती रहती।

'चल भाग हियां से मनहूस कहीं की। उधर जा कर खेल...कारी कोयरा सी नासपीटी टाँगें तोड़ दूँगी इधर दिखी तो। न जाने काहे को आय गयी। इसे कुछ न हुआ। कमी थी का बिटियन की।'

ताऊ जी की तीनों लड़कियों की शादी हो गयी थी और सुरेंद्र भैया नौकरी करने दिल्ली चले गये थे। राधा बुआ पढ़ाई कर रही थीं। सच में घर लड़कियों से भरा था पर इसमें उनका क्या दोष। धीरे-धीरे समझ में आने लगा कि मेरी पैदाइश के समय दादी की उम्मीदों पर पानी फिर गया था। एक तो लड़की वो भी रंग इतना गहरा। अम्मा को भी जब-तब खरी-खोटी सुनाती रहतीं। सोचती हूँ पापा ने क्यों अम्मा का साथ नहीं दिया। उन्होंने मुझे चाहे कभी प्यार न किया हो पर थीं तो मेरी अम्मा। अकेली रहते-रहते मेरी चुप रहने की आदत सी पड़ने लगी। अपने अंदर कमियाँ देखते-देखते अत्मविश्वास कम होने लगा। लोगों के बीच डर लगने लगा। कोई जरा सा कुछ बोल दे तो बस रोना शुरू। रोते देखकर दादी और कोसती। अब जब वो सब सोचती हूँ तो अम्मा पर गुस्सा नहीं दया आती है, कितना सहा होगा उन्होंने। वो भी तो कितनी अकेली थीं पापा के बिना।

सच बताऊँ शालू। अम्मा और ताई जी के कमरे के बीच का वह छोटा सा कमरा मेरा सबसे प्रिय कमरा था, घर का स्टोर रूम जिसमें मसाले, साबुन, तेल, अचार के छोटे-बड़े मर्तबान, तमाम बक्सों के साथ-साथ कमरे में बीचों-बीच लटकती अलगनी पर झूलते कपड़ों के पीछे वह रजाई, कंबलों से भरा टीन का बड़ा बक्सा भी था जिसके ऊपर रखे चादर तकियों के ऊपर मैं अँगुली मुँह में डाले रोते-रोते सो जाती थी। किसी को पता भी नहीं चलता था और चिंता करने वाला था भी कौन। इस कमरे ने मेरे कितने आँसू देखे हैं। मेरा रिफ्यूज, मेरा राज़दार और भी क्या कुछ नहीं देखा अलगनी पर लटकते कपड़ों के पीछे से। ताऊ जी की पैंट से पैसे निकालती कम्मो जिज्जी, चुरा कर लड्डू खाती नौकरानी सुनीता। कभी राधा बुआ तो कभी अम्मा, ताई जी को यहाँ फर्श पर बैठे रोते भी देखा है।

एक दिन राधा बुआ जल्दी-जल्दी आईं और चुपके से स्टोर रूम की सिटकनी चढ़ाकर कुर्ते के अंदर से एक कागज निकाल कर पढ़ने लगीं। पढ़ने के बाद उस कागज को चूमकर बड़ी देर तक छाती से लगाए रहीं फिर कुर्ते में छिपा लिया। उसके कुछ दिनों बाद न जाने कैसे ताऊ जी ने जगन के आठ साल के भतीजे पप्पू को राधा बुआ के नाम लिखी जगन की चिट्ठी के साथ पकड़ लिया। बस फिर क्या था जो हड़कंप मचा, बता नहीं सकती। ताऊ जी ने चिल्ला-चिल्ला कर आसमान सिर पर उठा लिया। दादी आग में घी डालने का काम कर रही थीं। ताई जी चौके में चुपचाप सिर झुकाए बैठी थीं। उस दिन राधा बुआ की खूब धुनाई हुयी। उनको पिटता देखकर मैं डर से काँपती स्टोर रूम में दुबकी रही। उस दिन के बाद बुआ की पढ़ाई छुड़ा कर घर बैठा दिया गया। तब पता चला कि सामने के घर में रहने वाले जगन से उनकी आशनाई चल रही थी। उस दिन राधा बुआ स्टोर रूम में दीवार से सिर टिकाये बहुत देर तक रोती रहीं। कभी-कभी अम्मा भी वहाँ रोकर अपना दुख हल्का करने की कोशिश करती थीं। मैं तकिये चादरों में छिपी सब देखती रहती।

एक दिन अम्मा यहाँ एक कोने में बैठी रो रही थीं। मैं अम्मा को चुप कराने के लिये नीचे उतर ही रही थी कि तभी अम्मा को ढूँढ़ती हुई ताई जी स्टोर रूम में घुसीं। उन्हें देख कर मैं वहीं रुक गयी।

'का कर रही हो हियाँ रो-रो कर, का दुनिया को बताए रही हो कि कित्ता जुलुम कर रही हैं हम तुमाये ऊपर। जरा सा कुछ कह का दिया, लगीं टसुए बहाने। तुम तो पड़ी रहती हो रात-दिन बिस्तर पर, हमई खटते रहते हैं दिन भर। है का कोई घर मा हमाई चिंता करने वाला। इत्ता बड़ा कुनबा सँभालते उमर खतम हुइ गयी हमाई।'

अम्मा ताई जी का हाथ पकड़कर अपने पास बिठाती हुयी बोलीं 'अरे नहीं जिज्जी ऐसा कुछ नहीं है। हम जानती नहीं हैं का। का करें हम तो खुदई अपने शरीर से परेशान हैं। भगवान से रोज प्रार्थना करती हैं कि अब उठा ले। तकलीफ से छुट्टी मिले। तबही काहे न उठा लिया भगवान ने जब छुटकी हुई थी। ये बार-बार की तकलीफ तो न होती।'

मेरी रुलाई फूटने लगी। लग रहा था दौड़कर अम्मा के गले लग जाऊँ।

सुनते ही ताई जी का गुस्सा जाने कहाँ हवा हो गया। तुरंत अम्मा को गले लगा कर रोने लगीं। 'ये का कह रही हो। मरें तुमाए दुसमन और हमें का अकेला छोड़ दोगी। जानते हैं तुमाई हालत। का करें। न जाने का का बोल जाती हैं हम सुमन। बुढ़ा गयी हैं हम भी। थक गयीं हैं घर भर की जिम्मेदारी उठाते-उठाते। ऊपर से अम्मा जी और ये तुमाए जेठ जी। रात दिन आफत पेले रहते हैं। राधा अलग मुँह तोपे पड़ी है। चिंता न करो इस बार सब ठीक हो जायेगा।'

थोड़ी देर बाद ताई जी अम्मा का हाथ पकड़कर बाहर ले गयीं।

मुझे नहीं मालूम ताई जी क्या ठीक हो जाने का भरोसा दे रही थीं। पर अम्मा इस बार जो अस्पताल गयीं तो वापस नहीं लौटीं। तब मैं सात साल की थी। पापा तो जैसे खानापूर्ती के लिये आये और फिर चले गये। अब जब पुराना सब याद करती हूँ तो लगता है मैं ही क्या। हमारे घर की तो सभी औरतें घुटन भरी जिंदगी जी रही थीं अपने आप में अकेली और उपेक्षित।

उस घर के माहौल में अपनी उम्र से जल्दी बड़े होने की कोशिश में मेरा बचपन कहीं खो गया। अगल-बगल रहने वाले अपनी उम्र के बच्चों के साथ उनके माँ-बाप को देखकर अपने होने पर गुस्सा आता था। मेरे होने का क्या मतलब था। स्कूल में भी बहुत कम बात करती थी। कुछ बच्चों से बात करती थी पर दोस्त कोई नहीं था। दसवीं क्लास में एक दोस्त बनी थी वैशाली वो भी मेरे जैसे कम बोलने वाली थी। दसवीं के बाद वो दूसरे कॉलेज में चली गई और मेरा संपर्क टूट गया।

अब यहाँ तुम तीनों मेरी बात खत्म होने पर शालू थोड़ी देर मेरा हाथ पकड़ कर बैठी रही। कहा कुछ नहीं फिर मुझे उठाते हुये अचानक बोली-'चल कैंटीन चलते हैं।'

'कैंटीन! अभी इस वक्त।' मैंने हैरान होते हुये कहा।

'हाँ इस वक्त चलो न सैलीब्रेट करते हैं।'

'सैलीब्रेशन! किस बात का!'

'मुझ पर भरोसा करने का। तुम्हारा अपने को आजाद करने की शुरुआत का। नेहा छोटा ही सही पर ये पहला कदम तुम्हें हिम्मत देगा, अपने डर का सामना करने के लिये। ये क्या छोटी बात है।'

'तो क्या जो मैंने तुम्हें बताया, तुम सबको बता दोगी?' मैं घबरा गई।

'नहीं मेरा ऐसा कोई इरादा नहीं है। वो सब मेरे-तुम्हारे बीच की बात है। अब तुम स्टेज के पीछे नहीं हम सब के साथ बराबर से काम करो। हम दस बारह लोगों के बीच तुम्हें अच्छा लगेगा।'

'विजय, विनय कैसे फेस करूँगी सबको।'

'देखो जो हो गया वो हो गया। उन्होंने माफी भी माँग ली है। नेहा सच से कब तक भागती रहोगी। दुबके रहने से तुम्हारा रंग बदल जायेगा क्या। कोशिश तो करो अपने खोल से बाहर आने की। एक-दो बार बोलकर लोग चुप हो जाएँगे।' उसने हिम्मत बढ़ायी।

दूसरे दिन मुझे देखते ही विजय ने मेरी तरफ हाथ बढ़ाते हुये कहा।'सॉरी नेहा मैंने तुम्हारा दिल दुखाया। मेरा ऐसा कोई इरादा नहीं था। बस निकल गया मेरे मुँह से।'

'इट्स ओके'। मैंने कहा।'तुमने कुछ गलत नहीं कहा था मेरा रियेक्शन सही नहीं था।'

सब मेरी ओर देखने लगे। शालू मुस्कुरायी। इतना बोलकर ही मैं काफी हल्का महसूस कर रही थी। स्वीकार के लिये बढ़ता पहला कदम।

अब उन तीनों के अलावा भी क्लास में कई लोगों से थोड़ी-बहुत बात करने लगी थी। झिझक कम होने लगी थी। पेंटिंग के अलावा म्यूजिक क्लास भी ज्वाइन कर ली थी। इन दोनों क्लासेज ने मुझे अपने आप को तलाशने में बहुत मदद की। थोड़ा खुलने लगी थी। अविनाश का पेंटिंग्स के विषय में कभी-कभी डिस्कस करना अच्छा लगने लगा। कनिका भी साथ होती थी। अविनाश का तो नहीं मालूम पर मैं उस कभी-कभी का इंतजार करने लगी थी। फाइनल ईयर खत्म होने वाला था, इसके बाद कौन, कहाँ जायेगा कुछ पता नहीं। सब अपने-अपने कैरियर को लेकर चर्चा करते रहते। मुझे कुछ पता नहीं था कि आगे क्या करना है। पता नहीं आगे पढ़ भी पाऊँगी या नहीं।

एक दिन ऐसे ही डिस्कशन करते-करते अविनाश ने कनिका के सामने मुझे प्रपोज कर दिया। मैं सन्नाटे में आ गई, कान गरम होने लगे, पसीना आने लगा। कुछ बोल ही नहीं पायी। उसे देखती बैठी रह गयी। कनिका ने मेरा हाथ जोर से पकड़ लिया। अविनाश और मुझसे! सच में अविनाश ने वही कहा है जो मैंने सुना है या उसने मेरे मन की बात जान कर मेरा मजाक उड़ाया है? मैं ही क्यों! क्या है मुझमें! क्या जानता है मेरे बारे में! मेरी और अविनाश की पर्सनेलिटी बिल्कुल अलग थी। अविनाश बहुत हैंडसम तो नहीं पर हँसमुख और स्मार्ट था। मैं सामान्य सी कम बात करने वाली दबे रंग की दब्बू सी। मुझमें उसने क्या देखा? मुझे विश्वास नहीं हो रहा था। पर दिल कुछ और कह रहा था।
मुझे चुप देख कर थोड़ी देर बाद उठते हुये बोला 'टेक योर

टाइम।'

मेरी आँखों के सामने राधा बुआ का किस्सा घूम गया। हालाँकि दादी अब नहीं थीं, राधा बुआ ने शादी नहीं की। बगावत का पहला बिगुल। दोनों बड़ी बहनों की शादी की बातचीत चल रही थी पर कहीं जम नहीं रही थी। ऐसे में मेरा इस बारे में सोचने का सवाल ही पैदा नहीं होता था।

दूसरे दिन शालू और कनिका को अपने घर देख कर मैं हैरान रह गयी। वे दोनों बहुत देर तक ताई जी से बात करती रहीं। उन्हें मालूम था कि मैं कभी अपने मन की बात घर पर नहीं कह पाऊँगी। पता नहीं उन्होंने ताई जी से क्या कहा और ताई जी ने ताऊ जी से क्या कहा कि वे दोनों बड़ी बहनों की शादी से पहले अविनाश से मेरी शादी के लिये तैयार हो गये। शायद मेरे रंग और स्वभाव के कारण मेरे लिये लड़का ढूँढ़ने में होने वाली समस्या का हल घर बैठे मिल जाने के कारण।

मैं सातवें आसमान पर थी। शादी के बाद भी मैं इस पर यकीन नहीं कर पा रही थी कि मैं अविनाश के साथ हूँ। अविनाश का साथ मुझे सहारा दे रहा था मुझमें आत्मविश्वास जागने लगा। पेंटिंग और म्यूजिक अब भी चल रही थी। कब समय पंख लगा कर उड़ गया इसका पता तब चला जब छोटी-छोटी दरारें दिखने लगीं। अविनाश अच्छा पेंटर बन गया था। उसकी पेंटिंग्स की प्रदर्शनियाँ उसकी कामयाबी बयान करती थीं। एक-दो बार मैंने अपनी कुछ पेंटिंग्स को भी उसके साथ प्रदर्शिनी में लगाने की बात कही तो पहले तो कुछ बोला नहीं फिर मेरी जिन पेंटिंग्स की कभी तारीफ किया करता था, उनमें ढेरों कमियाँ गिनाने लगा और बचकानी कह कर अपने साथ उन्हें रखने से साफ मना कर दिया। अपने बारे में उसके मुँह से यह सुनकर मुझे जबरदस्त झटका लगा। मैं पेंटिंग करने से घबराने लगी। हाथ में ब्रश पकड़ते ही अविनाश का चेहरा सामने आ जाता। पेंटिंग्स को लेकर पहले जो डिस्कशन्स होते थे खत्म हो गये। मेरा आत्मविश्वास डगमगाने लगा।

अब उसके दोस्त बदल रहे थे। अधिकतर साथी पेंटर्स और स्पोंसर्स जिनके साथ उनकी फैशनेबल बीबियाँ या कम्पैनियन्स होती थीं। उनके बीच वह मुझे अपने साथ ले जाने से कतराने लगा था। अविनाश का ये रवैया मन को तकलीफ देता था। मेरी सब कमियों को जानते हुये मुझसे शादी का निर्णय उसका था। शादी के शुरुआती दौर में भी हम जहाँ साथ जाते सब की आँखों में एक अनकहा प्रश्न होता। एक बार तो उसके किसी मित्र ने एक पार्टी में मुझे देखते ही हँसते हुए कमेंट भी किया था। इतने लोगों के बीच में मैं वहीं जड़ सी हो गयी। अविनाश ने मेरा ठंडा पड़ता हाथ पकड़ लिया।

'वॉव . . . व्हाट एन ऑड कपल। अपोजिट अट्रैक्ट्स।'

तभी किसी ने कहा 'चलो-चलो लैट्स स्टार्ट द पार्टी।'

पार्टी तो शुरू हो गयी पर हम दोनों का मूड बिगड़ गया। घर आने पर मेरे रंग और लोगों के बीच दबी-सहमी बने रहने, ठीक से बात न कर पाने पर कहा-सुनी हुई। ये जानते हुये भी कि ये सब मेरे साथ जिंदगी भर चलेगा मुझे सब झेलने की आदत पड़ जानी चाहिए थी, कहीं न कहीं चोट लग ही जाती थी। अपने को बदलने की बहुत कोशिश के बावजूद भी कमी रह ही जाती थी। बार-बार कोशिश करके बड़ी मुश्किल से अपनी हीन भावना पर काबू पाती कि फिर कोई घटना घट जाती। हर समय दिमाग में यही चलता रहता कि मेरी वजह से अविनाश को शर्मिंदा न होना पड़े। सब कुछ इतना नकली होता जा रहा था कि निजी क्षणों में भी हम दोनों सहज नहीं हो पाते थे। उसे खुश करने के चक्कर में बाकी बहुत कुछ फिसल रहा था मुट्ठी से धीरे-धीरे।

अविनाश अब काम के सिलसिले में काफी समय घर से बाहर रहने लगा। मेरी छोटी-छोटी कमियों को लेकर चिढ़ने लग गया। मुझे नीचा दिखाने का कोई मौका नहीं छोड़ता था। मुझे अपने पापा और माँ का ध्यान आने लगा। घर से दूर होते पापा और बीमार माँ। कहीं माँ की बीमारी का कारण पापा की उपेक्षा तो नहीं थी और उन्हें खुश करने के लिये बार-बार की प्रेगनैंसी। अब मैं अपने आप में अपनी माँ को ढूँढ़ने लगी। जितना मैं उसकी ओर बढ़ने की कोशिश करती अविनाश मुझसे उतनी दूर जा रहा था। मैं फिर अवसाद में डूबने लगी थी। सारा समय कमरे में बंद रहने लगी और फिर। अविनाश ने निर्णय ले ही लिया। सही तो था और क्या किया जा सकता था जब लौटना संभव न हो तो दूर होना ही ठीक था। सूख गया वो प्यार का पौधा जो मैंने बड़ी हसरत से रोपा था। अब इतनी दूर से दिखते सूखे पौधे की डाली पर उगे काँटे याद दिला जाते हैं कि कभी यहाँ खिले थे अनगिनत लाल गुलाब। मोनालिसा 2 कहीं खो गयी थी उदास अँधेरों में . . .

ए-10 बसेरा, दिन क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-400088 (महा.)
मो. 9819162949

भूल सुधार

– कुसुम रानी नैथानी

जन्म – 30 अप्रैल 1958।
शिक्षा – एम.ए., एम.एस.सी., एम.एड., एल.एल.बी., पीएच.डी।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
सम्मान – शैलेश मटियानी शैक्षिक उत्कृष्टता राष्ट्रपति पुरस्कार।

सोम प्रकाश जी की बिसात खाने की छोटी सी दुकान थी। स्त्रियों के साज-सिंगार का उसमें सारा सामान था। अपने परिवार के साथ वे इसी में खुश थे। पुरखों का पुराना मकान उनके हिस्से आया और साथ में यह छोटी सी दुकान। वे बड़ी लगन से दुकान चलाते। बाबू जी के स्वर्गवास हो जाने के बाद वे दुकान पर अकेले बैठकर सारा काम सँभालते। तीन बेटियों के पिता सोम प्रकाश जी स्वभाव से संतोषी थे। उनकी अम्मा लाजो रोज उनसे एक ही बात दोहरातीं –'समझ नहीं आता बुढ़ापे में तुम्हारा क्या होगा?'

'ऐसा क्यों कहती हो अम्मा सब अच्छा होगा। ईश्वर ने हमें तीन लक्ष्मी दी हैं। उनके होते हमें क्या परेशानी है?'

'लक्ष्मी पराया धन होती है। कल शादी करके अपने घर चलीं जाएँगी फिर तुम क्या करोगे? कौन तेरी छोटी सी दुकान सँभालेगा और तुम्हें देखेगा।'

'जमाना बदल रहा है अम्मा। तब की तब देखी जाएगी। अभी से तुम क्यों परेशान होती हो।'सीमा को इसकी चिंता है नहीं। मुझे ही इस बारे में भी सोचना पड़ता है। घर में एक वारिस का होना बहुत जरूरी है, जो हमारा वंश चलाएगा।'

'यह काम लड़कियाँ भी कर सकती हैं। उसके लिए लड़का होना जरूरी नहीं है।'

'अब यह सब मुझे तुझसे सीखना पड़ेगा कि क्या जरूरी है और क्या नहीं?'

'मेरे कहने का यह मतलब नहीं था अम्मा। जो मिला है हमें उसमें संतोष करना चाहिए। मेरी तीनों बेटियाँ पढ़ने में बहुत होशियार हैं। देख लेना एक दिन ये हम सबका नाम रोशन करेंगी।'

'पता नहीं वह दिन देखने के लिए मैं रहूँगी या नहीं।'

'ऐसा नहीं कहते अम्मा तुम सौ साल जियोगी और अपनों का सुख देखोगी।' कहकर सोमप्रकाश वहाँ से उठ गए। सीमा यह सब बातें सुन रही थी। अम्मा जब देखो उसके सामने यही बात लेकर बैठ जातीं। यह सुनकर-सुनकर सीमा के कान पक गए थे। अपनी आमदनी देखते हुए उसे तीन बेटियाँ बहुत लग रही थीं। उस पर वह एक और बच्चा पैदा करने के बारे में सोच भी नहीं सकती थी। अगर चौथा बच्चा भी लड़की हो गई तब क्या होगा? उसने सोच लिया था वह अपने परिवार को तीन बेटियों तक ही सीमित रखेगी और आगे बच्चे के बारे में सोचेगी भी नहीं चाहे अम्मा कुछ भी कहे।

अम्मा के सामने सोमनाथ जी की स्थिति देखकर कभी-कभी उसे अपने भाग्य पर गुस्सा आता। तीन बेटियों में अगर एक बेटा पैदा हो जाता तो अब इन्हें अम्मा की दुनिया भर की नसीहतें तो न सुननी पड़तीं। दिनभर दुकान से थके हारे आते और शाम को अम्मा अपना रोना लेकर बैठ जातीं।

सीमा उनके तानों से तंग आ गई थी। एक दिन वह बोली-'मैंने अपनी तीनों बेटियों को ईश्वर का प्रसाद समझकर स्वीकार कर लिया है लेकिन अम्मा जी नहीं मानतीं। क्यों न हम एक लड़का गोद ले लें। उनकी बात भी रह जाएगी और एक बच्चे का भला

करने का हमें मौका भी मिल जाएगा।'

'तुम ठीक कहती हो अभी कुछ दिन पहले पहाड़ पर बादल फटने से एक गाँव पर बहुत बड़ी विपदा आई है। कई छोटे बच्चे अनाथ हो गए हैं। मैं सोचता हूँ वहीं से किसी छोटे लड़के को गोद ले लूँगा।'

'इस बारे में अम्मा जी से भी बात कर लेते तो ठीक रहता।'

'बात करने से कोई हल नहीं निकलने वाला सीमा। मैं उन्हें सीधे करके ही दिखा दूँगा।' सोम प्रकाश जी बोले। उन्होंने इस बारे में अपने छोटे भाई विमल से बात की और वे दोनों आपदाग्रस्त इलाके में पहुँच गए।

गाँव की हालत देखकर उनका कलेजा फटा जा रहा था। छोटे-छोटे बच्चे माँ-बाप के लिए बिलख रहे थे। उन्हीं में से एक सालभर के लड़के को देखकर सोम प्रकाश जी को बहुत दया आई। वे उसे अपने साथ ले जाने के लिए तैयार हो गए। गाँव में उनके रिश्तेदारों को कोई आपत्ति न थी।

साल भर का बच्चा सोम प्रकाश जी की अँगुली पकड़ उनके साथ आ गया। उसे देख कर अम्मा चौंक गई थीं।

'यह कौन है सोम?'

'तुम्हारा पोता।'

'इसे कहाँ से उठा लाया?'

'ऐसा नहीं कहते अम्मा। मैं इसे इज्जत से अपने साथ लेकर आया हूँ। अब यह हमारे साथ रहेगा। तुम हमेशा कहती थीं मुझे पोता चाहिए। यह लो तुम्हारा पोता भी आ गया है। अब इसका कोई अच्छा सा नाम रख दो।'

उस छोटे बच्चे पर अम्मा को भी दया आ गई थी। उन्होंने उसका नाम रूपेश रख दिया था। कुछ ही दिन में वह अम्मा का लाड़ला बन गया। वे उसे एक घड़ी को भी अपनी आँखों से दूर न करतीं। यह देख दूर खड़ी रीना, मीना और वीना दादी को देखती रहतीं।

उन्हें याद नहीं था दादी ने कभी उन्हें इतने प्यार से अपने साथ रखा हो। मीना ने यह बात दादी को कह भी दी। दादी बोली-'कुल लड़कों से चलता है लड़कियों से नहीं। तुम कल ब्याह कर दूसरे घर चली जाओगी। मेरे बेटे को कौन देखेगा? उसकी दुकान कौन सँभालेगा?'

सोम प्रकाश हमेशा बेटियों को समझाते-'दादी की बात का बुरा नहीं मानना बेटा। बुजुर्ग लोग कहते रहते हैं। उनकी हर बात में आशीर्वाद छुपा होता है। तुम उसे प्रसाद की तरह ग्रहण करना।'

अम्मा बाबू जी की बात को ध्यान में रखकर बेटियाँ कभी दादी की बातों पर रोष न जता सकीं। अम्मा बोलीं-'सोम मेरे पोते का किसी अच्छे स्कूल में दाखिला कराना। वह सरकारी स्कूल में नहीं पढ़ेगा।'

अम्मा को खुश देखकर सोम प्रकाश निश्चिंत हो गए थे। कम से कम अम्मा की रात दिन की एक ही रट से उन्हें छुटकारा मिल गया था। पाँच साल का हो जाने पर रूपेश का दाखिला अंग्रेजी स्कूल में करा दिया था। वह बस से स्कूल आता-जाता। तीनों बहनें बड़ी हसरत भरी निगाहों से उसे देखतीं। सोम प्रकाश ने तीनों बेटियों का दाखिला सरकारी स्कूल में कर दिया था। वे तीनों पढ़ने में बहुत होशियार थीं और हमेशा क्लास में अव्वल आतीं।

रूपेश के ठाठ-बाट देख कर कभी-कभी उनके मन में दादी को लेकर अजीब से ख्याल आते तो सीमा उन्हें चुप करा देतीं। रूपेश पाँचवी क्लास में आ गया था। तभी एक दिन हृदय गति बंद हो जाने से अम्मा इस संसार से विदा हो गई। उनके जाने का सबको अफसोस हो रहा था। कुछ ही दिन में जिंदगी फिर से पटरी पर आ गई। रीना के इंटर पास करते ही सरकारी इंजीनियरिंग में उसका चयन हो गया था।

सोम प्रकाश जी के पास इतने रुपए नहीं थे फिर भी उन्होंने बैंक से उधार लेकर उसकी पढ़ाई जारी रखी। दो साल बाद वीना भी इंटर पास कर गई थी। उसने डिग्री कॉलेज में दाखिला ले लिया था। वह स्नातक पास कर प्रतियोगी परीक्षाएँ देना चाहती थी।

उसके ग्रेजुएशन करते ही मीना ने भी इंटर पास कर लिया और पहली बार ही उसका चयन डॉक्टरी के लिए हो गया। वीना ने पीसीएस की तैयारी की और उसमें चयनित हो गई। अब रूपेश भी बारहवीं में आ गया था। पढ़ने वाले बच्चों के साथ किसी तरह वह अपनी गृहस्थी की गाड़ी खींच रहे थे।

छोटे से बिसात खाने की दुकान से घर चल रहा था और बच्चों की फीस का इंतजाम बैंक के लोन से हो जाता था। रूपेश को उन्होंने शहर में अंग्रेजी स्कूल में बारहवीं की पढ़ाई करने के लिए भेज दिया था। पढ़ाई के दौरान रूपेश कुछ गलत लड़कों की संगत में पड़कर पढ़ाई से भटक गया। सोम प्रकाश ने उसे बहुत समझाया। बड़ी बहनों के उदाहरण दिए लेकिन उसकी समझ में कुछ नहीं आया और वह जब तब घर आकर रुपयों की माँग करता और न देने पर मरने-मारने पर उतर जाता।

लोक लाज की वजह से सोम प्रकाश जी किसी तरह उसकी जरूरतें पूरी कर रहे थे। हर बात की एक सीमा होती है। इंटर पास करते ही उन्होंने उसे वापस घर बुला लिया था। अब वह भी घर से पढ़ाई कर रहा था। घर आकर उसके ठाठ-बाट में कोई कमी नहीं आई थी। नए डिज़ाइन के कपड़े पहनने से लेकर महँगी से महँगी चीजें उसे चाहिए होती। सोम प्रकाश जी उसकी इच्छा पूरी करने में असमर्थ हो गए थे। उन्होंने उसे बहुत समझाया लेकिन वह न माना। एक दिन वह एक लड़की को घर लेकर आ गया।

'बाबू जी यह श्रुति है। मैं इसके साथ शादी करना चाहता हूँ। मुझे घर और दुकान में हिस्सा चाहिए।'

'बेटा पहले पढ़ाई पूरी कर लो फिर शादी के बारे में सोचना।'

'बाबू जी मैंने ग्रेजुएशन कर लिया है। अब कंपिटिशन की तैयारी करूँगा। मुझे अपने खर्चे के लिए दुकान चाहिए। आप उसे मेरे नाम कर दीजिए।'

'दुकान तुम्हारे नाम हो जाएगी तो मैं परिवार कैसे पालूँगा? उनके पीछे हमारा घर चलता है।'

इस दौरान वीना सरकारी अधिकारी बन गई और रीना इंजीनियर बन कर अपनी सेवाएँ देने लगी थी। रूपेश बोला-'आपकी मदद करने के लिए रीना और वीना दीदी हैं। वे आपकी मदद करेंगी।'

'रीना के सिर पर पढ़ाई का लोन है। मेरे लिए यह दुकान एक मंदिर है। मैं इसे छोड़ने की सोच भी नहीं सकता। बेटा थोड़ा समझदारी से काम लो। अपना ध्यान फिजूल की बातों से हटाकर पढ़ाई पर लगाओ। कुछ बनकर दिखाओ। तब तुम्हें जो चाहिए होगा वह ले लेना।'

'तब मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं रहेगी। मुझे आज जरूरत है। मैं इस दुकान को तोड़कर यहाँ पर एक अच्छा शोरूम बनाऊँगा। तब देखना मेरी कमाई कहाँ की कहाँ जाती है।'

'मेरे जीते जी यह नहीं हो सकता।'

सोम प्रकाश जी ने यह बात अपने तीनों बेटियों को भी बता दी। वे बोले-'रूपेश को अपनाना मेरी जिंदगी की सबसे बड़ी भूल थी।'

'बाबू जी जो हो गया उसके लिए क्या पछताना? आगे के लिए सोचिए क्या करना है?'

'वह आए दिन मुझे धमकी देता रहता है। दुकान छोड़ने को कहता है।'

'भूलकर भी बाबू जी ऐसा मत कीजिएगा। उसे हमारे साथ रहना है तो आपकी शर्तें माननी होंगी। अगर उसे नहीं मंजूर तो उसकी मर्जी वह जहाँ जाएँ। हमें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप कमजोर मत पड़ना बाबू जी। नहीं तो वह कुछ भी कर सकता है।'

रीना के समझाने पर सोम प्रकाश जी ने भी उसको टका सा जवाब दे दिया।

'आपको मेरी शर्त मंजूर नहीं है तो ठीक है मैं श्रुति के साथ चला जाता हूँ और वहीं रहूँगा।'

‘तुम्हारी जो मर्जी हो करो। इस घर की ओर मुड़ कर भी मत देखना।’

‘मुझे इससे ज्यादा आपसे कुछ उम्मीद भी नहीं थी बाबू जी। अगर मैं आपका अपना बेटा होता तब भी क्या आप मेरे साथ ऐसा ही सौतेला व्यवहार करते?’

उसने उन्हें मनोवैज्ञानिक तरीके से ब्लैकमेल करना चाहा।

‘तब शायद मैं अभी तक तुम्हारे गाल पर थप्पड़ भी जड़ देता।’ सोम प्रकाश बोले।

गुस्से में आकर उसने अपना सामान लिया और वहाँ से चला गया। रीना के कहने पर उन्होंने अखबार में विज्ञापन देकर उसे अपनी संपत्ति से बेदखल कर दिया। रूपेश श्रुति के साथ गृहस्थी बसाकर घर जमाई बनकर रहने लगा था। मीना ने अपनी डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी कर ली और एक सरकारी अस्पताल में डॉक्टर बन गई। सोम प्रकाश जी की मेहनत और लगन की बदौलत उनकी तीनों बेटियाँ पढ़ लिखकर अपने पैरों पर खड़ी हो गई थीं। उन्होंने अपने साथ के अच्छे लड़के देख कर अपनी गृहस्थी बसा ली थी।

सोम प्रकाश जी और सीमा को कोई एतराज न था। सब अपनी गृहस्थी में खुश थे। सोम प्रकाश सीमा के साथ अपनी दुकान चला रहे थे। उन्होंने सड़क पर मजदूरी करने वाले रवि को अपनी दुकान पर काम करने के लिए रख लिया था। समय बीत रहा था।

सोम प्रकाश जी अब बहुत बुजुर्ग हो गए थे। दुकान पर सारे दिन बैठना उनके बस का न था। तीनों बेटियाँ उन्हें शहर अपने पास आने के लिए कहतीं। वे सब के अनुरोध को प्यार से टाल देते। सीमा भी बुजुर्ग हो गई थी।

रवि उनकी जी-जान से सेवा कर रहा था। उसे देखकर सोम प्रकाश जी को संतोष था। उन्होंने उसका घर परिवार भी बसा दिया था। वह भी उन्हीं के साथ आकर रहने लगी। उन्हें अपने जीवन में अब किसी प्रकार की कोई परेशानी नहीं थी। भाग्य से लड़कर भी उन्होंने देख लिया था। एक लड़के की चाह में उन्होंने किस पत्थर पर जाकर अपना सिर नहीं रगड़ा था लेकिन हुआ क्या? एक औलाद गोद भी ली। वह इतना नाकारा निकला। उम्र के इस पड़ाव में सुबह-शाम तीनों बेटियाँ फोन कर हालचाल पूछती रहतीं और जब मौका लगता माँ-बाबू जी को मिलने चली आतीं।

रवि अब उनका सहारा बन गया था। सब उसे बहुत प्यार करते और उस पर विश्वास भी। कभी तबीयत दिखाने बेटी के पास जाना होता तो वह सब कुछ उसी के भरोसे छोड़ कर चल देते। रवि ने उनके भरोसे का मान रखा था। वह दुकान की एक-एक पैसे की कमाई बाबू जी के हाथ में रख देता। वह उसे जितना देते वह उसे उनका आशीर्वाद समझकर खुशी-खुशी माथे से लगा लेता।

इधर कुछ दिनों से सोम प्रकाश बीमार रहने लगे थे। मीना ने आकर स्पष्ट शब्दों में कह दिया था-‘बाबू जी अब हम आपको यहाँ नहीं छोड़ सकते। आपको मेरे साथ चलना होगा। आपने मेहनत करके मुझे पढ़ा-लिखा कर इस काबिल बनाया। इस वक्त भी मैं आपके काम न आई तो मेरी पढ़ाई बेकार है।’

‘ऐसा नहीं कहते बेटा। तुम दुनिया की भलाई करने के लिए पैदा हुई हो। अपने व्यवसाय के प्रति ऐसा नहीं सोचते। मुझे कुछ समय दो मैं इस बारे में सोचता हूँ।’

मीना के बहुत आग्रह करने पर भी वे चलने को तैयार नहीं हुए थे। सीमा ने समझाया-‘मीना ठीक कह रही है अब हमें यहाँ का मोह छोड़कर उनके साथ चले जाना चाहिए।’

‘मैं जानता हूँ सीमा तुम सब सही कह रहे हो लेकिन मैं रवि को ऐसे ही नहीं छोड़ सकता। उसके बारे में भी हमें कुछ सोचना होगा।’

‘क्या सोचा है आपने?’

‘बाद में कोई विवाद खड़ा न हो इसके लिए मैं यह दुकान और घर उसके नाम करना चाहता हूँ। अगर वीना, रीना और मीना को कोई आपत्ति न हो तो।’

‘वे तुम्हारी बेटियाँ हैं। तुम्हारी हर इच्छा का मान करती हैं। उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी।’

‘फिर भी पूछ लेना ठीक रहता है। तुम उन्हें मेरी इच्छा बता देना। अगर वे मान जाती हैं तो मैं यह बंदोबस्त करके उनके साथ चला जाऊँगा।’

सीमा ने यह बात सबसे पहले मीना को बताई। यह सुनकर वह खुश हो गई।

‘माँ बाबू जी सबके बारे में सोचते हैं। मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं रीना और वीना से भी बात कर लूँगी। मुझे पूरा विश्वास है वह भी बाबू जी के इस निर्णय से सहमत होगी।’ तीनों बहन ने बाबू जी की इच्छा का खुश होकर स्वागत किया था। यह सुनकर रवि अवाक रह गया।

‘बाबू जी यह आप क्या कर रहे हैं?’

‘इतने वर्षों से तुमने मेरी जी जान से सेवा की है। बदले में कोई अपेक्षा नहीं रखी। बाबू जी का आशीर्वाद तुम्हें भी तो मिलना चाहिए।’

‘लेकिन रूपेश भैया।’

‘तुम निश्चिंत रहो। वह तुम्हारे साथ कुछ नहीं कर सकेगा।’

बाबू जी के कहे अनुसार रीना, मीना और वीना तीनों मकान और दुकान रवि के नाम करने के लिए आ गई थीं। उन्होंने खुशी-खुशी बाबू जी की इच्छा पूरी कर दी थी।

‘तुम हमारे लिए छोटे भाई जैसे हो। बाबू जी का नाम खराब मत करना। उन्होंने इस छोटी सी दुकान की बदौलत ईमानदारी से कमाई करते हुए हम तीनों को इस ऊँचाई तक पहुँचाया है।’

‘दीदी आप चिंता मत करो। यह दुकान बाबू जी की है और बाबू जी की ही रहेगी। मैं उनका सेवक हूँ। इतने सालों से उनके साथ काम करता आया हूँ। कभी उन्हें। शिकायत का मौका नहीं दिया। आगे भी नहीं दूँगा।’

भरी आँखों से सोम प्रकाश जी ने रवि और उसके परिवार से विदा ली। अपना सामान दो कमरों में रख कर वे चले गए थे। शायद कभी आना हो जाए यही हसरत उनके मन में थी। सोमनाथ जी वहाँ से फिर कभी लौटना न हो सका। जीवन में की गई एक बड़ी गलती का उन्होंने दुनिया छोड़ने से पहले भूल सुधार कर लिया था।

318-ए, ओंकार रोड,
चुखुवाला, देहरादून-248001 (उ.खं.)

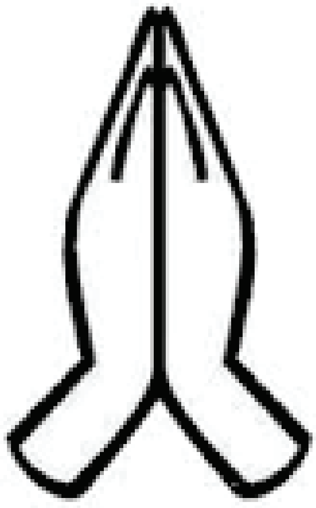

प्रेम

– अशोक वक़्त

सच, कितना भी घना हो प्रेम
कैसी भी समर्पणशीलता हो
पर, सब नहीं बना सकते न,
संगमर्मरी स्मारक
संगमर्मरी मन नहीं है, ऐसा तो नहीं,
इसलिए पिघलता है मन-संगमर्मर
रोजमर्रा की जद्दो-जहद में
और, यह जो हम जीते हैं भरपूर
जबकि जो जिन्दगी है वह है बहुत दूर
तो, यह निष्काम कर्मयोग है
विरह में जीवन सर्वोच्च भोग है

सीमित होता है मिलन सदा
मेघ आँगन में बरसता है यदा-कदा
लम्बे अर्से तो विरह की व्याकुलता के हैं
मन की आकुलता के हैं
मिलन तो झरना है
चन्द लम्हे साथ बैठो
झर-झर, झर जाता है
विरह सफर है

पंथी एकाकी करता जाता है।
तुम नहीं थीं जब
मिलन का सुख अजाना था
पर, झरने से संगीत की अनुगूँज का
साक्षात् अनुभव अपने में मूर्त करने के अलौकिक
क्षणों के बाद
यह विछोह केवल अकेलापन नहीं है
निर्भरता की तकलीफ भी नहीं
यह तो अपने अधूरेपन का
एकमुश्त अहसास है।
तुम से जुड़कर ही
रहस्य यह जाना
पूर्ण नहीं हूँ मैं
तुम पूरक नहीं
सम्पूर्णता थी मेरी।

समय समिधा में कैसी भी
समर्पणशील आहुति
लौ को प्रज्ज्वलित नहीं करती
यह और बात है,
लपलपाती लपट-सा होकर भी
मर्यादा की लौ-सा जलता रहा मैं प्रतिपल
यह तो जब तुम मिलीं और,
हरसिंगार-सी हँसी, स्निग्ध मुस्कान या,
पतली अँगुलियों से झंकृत
सितार की सरगम में
क्या है ज्यादा ललित,
सरल, सहज, पारदर्शी
यह सवाल उठा मन में,
तुमने आवारगी के हाल पूछे
ममत्व भरी चिन्ता से

तब, जानी सम्पूर्णता अपनी
और, मैं सुस्ताने को जो थमा
तो, पता चला तुम चली गईं
हर राजधानी को चीरती हुईं
शायद, उस पहली रौ में
थमता ही नहीं मैं
जो, अचानक सीने में हाँफती साँसों में
सितार की वह गूँज
अनुपस्थित न हो गई होती
पर, सफर तो शुरू हो गया
और, यह सफर तो ऐसा है भईया
धीरे दौड़ो, रिरियाओ या भागो सरपट
पर, किसी भी सूरत में
दौड़ से बाहर नहीं आ सकते न

इस दौड़ के बाहर कुछ भी नहीं है
दौड़ ही विरह है
मिलन तो बिछौना है
कभी-कभी फुदक जाए
मृगछौना है,
मिलन में जाना

सम्पूर्णता विरह में व्यापी है
शेष तो सब जोड़-घटाव समीकरण है
राधा, कान्हा की सम्पूर्णता तुम हो।

तब विछोह में झेल पाया
बाँसुरी के स्वर में जो नहीं समाया
वही गीता के गीत में गाया
जो मेरा आधा है
वह राधा है
वह विरह झेल पाया
स्वनिर्णीत जो था और
पास थी तब बाँसुरी भी
अकेला नहीं था सुदर्शन
और फिर, महाभारत स्वयं को नहीं
अर्जुन-भीम को लड़ना था
राधा के राग को अपने में संचित रखा
पल्लवित किया
और, भीम-अर्जुन के हाथों
निष्काम कर्म में प्रतिफलित किया
सब शंकाएँ, प्रवाद और
औचित्य के प्रश्न
उस तरलता में डुबो कर तसल्ली पाई
जो राग के कटोरे-सा
मेरे मन में रखा है
हर अकेले पल
मैंने उसका स्वाद चखा है

हर पल मैं वहाँ हूँ मेरी राधा
जहाँ तुम हो
और जहाँ तुम हो
वह तो नन्दगाँव है
बचपन की नरम छाँव है
वहाँ तो मैं एक शरारती बच्चा हूँ
नटखट नंद किशोर
तो फिर शंका कैसी
औचित्य का सवाल क्या
तेरी यादों से जितना नवनीत चुराया मैंने

उससे ही अपने समय के एक कतरे को
स्निग्ध बनाया मैंने

पर, इस बार तो गजब हुआ
द्वापर से बन्दी मन को
युग-युग के बाद
जैसे, मिलीं थीं तुम
सान्दीपनि के गुरुकुल की सीढ़ियों पर
और अधूरा पाठ
बगैर साथ में एक बार दोहराए
तुम गईं राजधानी जनपद की
छोटी राजधानी और बड़ी राजधानी
ऐसा नहीं कि
उज्जयिनी रास नहीं आई तुम्हें
पर प्रयाण के क्षणों में
तुम्हें रोकने के लिए
बाँसुरी जो नहीं थी पास मेरे
और संगीतविहीन गीता का दर्शन
बहुत बोझिल था
मैं ही उलझ-उलझ कर रह गया
तुम्हारे स्नेह के झरने में
आस से मीठी अनुभूति जानी
अपने मन में आदिवासी-सी पीड़ा पहचानी
आज तुम नहीं हो
या, शायद और कहीं हो
और, बाँसुरी भी नहीं है पास मेरे
तुम अपने ही सितार की
स्वर्गिक सांगिकता में
लीन हो गईं
जैसे, सितार का ही एक स्वर थीं तुम
ऐसा स्वर जिसकी अनुपस्थिति मात्र से
समूचा संगीत सूना हो गया।

कौन कहता है कि
होते हैं स्वर सात जीवन में
स्वर एक होता है-मिलन
क्षण भर का स्पन्दन
और फिर विश्रान्ति में
उसकी दीर्घ अनुगूँज-एकाकी विरह।

सात स्वर तो
सात परिक्रमा के होते हैं
मिलन-विरह
परिक्रमा के रात-दिन नहीं हैं
विरह की लम्बी यात्रा में
पड़ाव है मिलन
स्फूर्ति सिरजता
भर देता बिजलियाँ शिराओं में
पर, फिर सतत् यात्रा में
यह पड़ाव राहत होकर भी
तकलीफदेह हो जाता ज्यादा
तुमसे मिल कर ही तो जाना
मैं हूँ आधा
तुम कहाँ चली गईं
मेरी राधा!

युग के कवि को
महाभारत नहीं
कटे अँगूठें की बन्दनवारें
लिखनी पड़ती हैं
गुरुकुल में नैतिकता की
नई परिभाषाएँ गढ़ती हैं
अँगूठा तो पहले भी कटवाया था
एकलव्य से
पर, इस युग में तो
द्रोण किसी का सगा हुआ नहीं,
भीम, अर्जुन, कर्ण, दुर्योधन
सबके कटे अँगूठे
तब, मैंने ही सिखाया उन्हें शर सन्धान
प्रशिक्षक स्वयं
सन्धान नहीं करता इसीलिए
आँखों में होकर भी
आखों से ओझल ही रहा आकाश कुसुम
मेरा पलाश मन
निचुड़-निचुड़ गया
पर तेरी चूनरी का
एक कतरा भी
रंग नहीं पाया
यह तुमसे बिछुड़ ही कर जाना
अधूरा हूँ मैं
अधूरा मेरा राग और रंग भी।

मैं जहाँ था मैंने सम्पूर्ण होना चाहा
वहीं रह कर
पर, कैसे हो सकता हूँ पूर्ण
तुम्हे खोकर
मैं फिर भी दौड़ा सम्पूर्ण होने
तेजी से सीढ़ियाँ चढ़ते हाँफ गया
अस्पताल में ऑक्सीजन लेते
अपने एकाकीपन से काँप गया।
सचमुच
सम्पूर्ण हो आया था मैं उस बेला
तुम्हारे स्नेह के पार्श्व में
पर, ऐसा क्यों होता है
जब-जब मैं सम्पूर्ण होता हूँ
तो बच्चा हो जाता हूँ
शिशुवत ही तुमने दुलारा मुझे
और सम्पूर्ण कर दिया

सम्पूर्णता तुम थीं मेरी
तुम्हारे स्नेह के पार्श्व में ही
पूर्ण रह पाता मैं।
फागुनी हवा की
मीठी गंध ने था सहेजा
आषाढ़ का पहला बादल बरसा
मन सहज सरसा
पर, तुम उन्मुक्त कहाँ थीं कि
बादल की आवारगी का साथ देतीं
फिसलन के क्षणों में
थाम लेने को
अपना हाथ देतीं।

अकेला ही चल पड़ा मैं
अपने को समूचा मान कर
पर, आत्मविसर्जन के क्षणों में
संजीवनी रसायन व्याप्त हुआ
मन के कणों में
तरलता के उद्रेक ने
बहा दिया तनाव-बिखराव सारा
पर जिन्दगी बच्चा होकर तो
जी नहीं जा सकती
इसलिए
हस्तिनापुर के हर सफर में
एकाकी, अधूरा है पुरुष।

सपने

– **अश्वघोष**

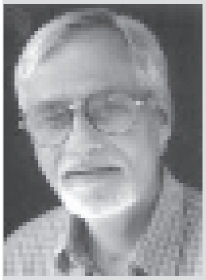

जन्म – 20 जुलाई 1941।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ – इक्कतीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – उ.प्र. हिंदी संस्थान लखनऊ सहित अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

अँधियारा झकझोर के,
सपने देखे भोर के।
सपने पूरे करते हैं,
चंदा और चकोर के।
तुमने मेरी पुस्तक में,
पंख रखे क्यों मोर के।
सारे धागे कच्चे हैं,
इस जीवन की डोर के।
सन्नाटों के बीहड़ में,
होश उड़े हैं शोर के।

◆ ◆ ◆ ◆ ◆

मुँह में जुबान रखता हूँ,
अपना बयान रखता हूँ।
पंखों में जान रखता हूँ,
ऊँची उड़ान रखता हूँ।

बाजार में हूँ फिर भी मैं,
रिश्तों में जान रखता हूँ।
आँगन में धूप आती है,
ऐसा मकान रखता हूँ।
शब्दों की है नुमाइश, पर
अर्थों पे ध्यान रखता हूँ।

◆ ◆ ◆ ◆ ◆

अंदर-अंदर ही ढहते हैं,
जो हरदम खुद में रहते हैं।
चट्टानों का बेदर्दीपन,
केवल दरिया ही सहते हैं।
प्यार-मुहब्बत करने वाले,
दिल की ज्वाला में दहते हैं।
घर तो खत्म हुए शहरों में,
लोग मकानों में रहते हैं।
वक्त किसी दरिया-सा बहता,
हम भी उसके संग बहते हैं।

◆ ◆ ◆ ◆ ◆

बरगद की, पीपल की बातें,
लगती हैं अब कल की बातें।
उनसे गीत-ग़ज़ल की बातें,
मरुथल में हों जल की बातें।
दरवाजे के दिल में गूँजें,
अक्सर ही साँकल की बातें।
सूखी सरिता ग़म में डूबी,
मत कर उससे जल की बातें।
जेबों में दुबकी मिलती हैं
रोज सवेरे कल की बातें।

7, अलकानंदा एनक्लेव,
जनरल महादेव बिंदु रोड,
देहरादून-248001 (उत्तराखण्ड)
मो.-9897700267

थेल्मा

– जयप्रकाश मानस

मुक्तिबोध 'साहित्य के दृष्टिकोण' नामक निबंध में एक जगह मेरी कोरिली की ओर इशारा करते हैं–'अनैतिक का नैतिक के प्रति विद्रोह, नैतिकता की उन्नति और उसके परिष्कार का कारण है। इंग्लैंड में नैतिक आदर्श को लेकर ही कई उपन्यास लिखे गये। कलाकारों का अपना नैतिक चिंतन हुआ। मेरी कोरिली में कभी-कभी धार्मिक या नैतिक आदर्शों का कला के साथ विषम संतुलन दिखाई देता है।'

आज से लगभग 50 साल पहले मुक्तिबोध 'नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' (सन्1971) में जिस ब्रिटिश उपन्यासकार की कृतियों को रेखांकित कर रहे थे, ताज्जुब है–हिंदी में उन्हें क़रीब से देखने-निहारने की कोई सदाशयी कोशिश मुझे तो कहीं भी नहीं दिखाई देती। कदाचित् यह मेरे पाठक के संज्ञान की सीमा भी हो! लेकिन यही सच है तो चिंतन-मनन के नये झरोखों से झाँकने के बहाने ही सही–पाश्चात्य साहित्य के प्रति ज़रूरी अनुराग और उससे अपनी रचनात्मक बौद्धिकता को संबद्ध करने वाली कोशिश की चुगली भी अकारज़ तो सिद्ध नहीं ही होती न! बहरहाल....

पुस्तक : थेल्मा
लेखक : मेरी कोरिली, अनु. : संतोष रंजन
प्रकाशक : यश पब्लिकेशन, 1/10753, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, नई दिल्ली–110031

मेरी कोरिली के निकट केवल औपचारिक उदाहरण जुटाने के लिए तो नहीं गये होंगे मुक्तिबोध! दरअसल वे इस उदाहरण के बहाने अपने दौर के पढ़ने-लिखने वालों को भी नये संसार की ओर आगे पढ़ने (दरअसल बढ़ने) के लिए संबोध रहे थे। हमने आधुनिक कविता की पहचान के विश्वसनीय तर्क-सिद्धि के लिए मुक्तिबोध को तो अपना सर्वोत्तम मार्गदर्शक मान लिया । लेकिन उन श्रेष्ठ उदाहरणों की तह तक पहुँचने में कदाचित् अलसाते रहे, संभवत: कोताही भी बरतते रहे, जो खुद मुक्तिबोध के लिए तत्समय उदाहरण बने हुए थे।

सोचिए....यदि मुक्तिबोध बांग्ला के मूल कवि-लेखक होते तो उनके द्वारा अनुशंसित या चर्चित लेखिका की कुछ ज़रूरी कृतियों से बांग्लाभाषी जाने कब के सुपरिचित हो चुके होते। यह तो अहर्निश 'विश्वगुरु' का हुंकार भरने वाले हम हिंदीवादी हैं, जो विदेशी मशीन से उत्पादित जींसों की ओर ललचायी दृष्टि से निहारते रहते हैं लेकिन विदेशी मानस से सृजित बौद्धिकता की ओर नहीं!

सिमोन द बोऊआर से कहीं पहले प्रसंगवश इस छोटी-सी भूमिका से सीधे छलांग लगाते हुए कहूँ तो पिछले दिनों अनुरागी मित्र कवि-अनुवादक संतोष रंजन जी की एक किताब फिर हाथ लग गई- 'थेल्मा'। मेरी कोरिली (1855–1924) की बहुचर्चित उपन्यासों में से एक।

विक्टोरियन और एडवर्डियन युग के पुस्तक विक्रेताओं के बीच सबसे अधिक बिकने वाली रानी (Queen of the Bestsellers) की तरह रही ब्रिटिश उपन्यासकार मेरी कोरिली। उत्तर विक्टोरियन समय के सर्वाधिक प्रसिद्ध लेखक आर्थर कानन डायल, एचजी वेल्स, रूपयार्ड किपलिंग नहीं बल्कि यही वह लेखिका ही थी, जिसका नाम कम लोग ही जानना चाहते हैं।

किसी समाज में बुरी कहलाने वाली किताब भी बेस्टसेलर बनती है और यह भी कि भाषा और लेखन का शिल्प निरंतर बदलता है, दोनों मोर्चे पर मेरी कोरिली की किताबें आधुनिक समय की स्वयंसिद्ध प्रकाशन थीं। प्रकारांतर से वस्तुत: सिमोन द बोऊआर (1908–1986) से कहीं पहले एक स्वतंत्र स्त्री और उसकी अभिव्यक्ति की समूची दार्शनिकता को स्वतंत्रता के साथ सिद्ध करने वाली कालजयी किताबों की लेखिका भी या ही।

कोरिली दर्शनशास्त्री तो नहीं थी लेकिन वह लगभग पश्चिम की प्रथम महिला बौद्धिक थी जिसने अपने उपन्यासों में महिलाओं की बौद्धिक समानता में विश्वास करने की वकालत की। एक अनिवार्य अधिकार के रूप में महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता की स्थापनायें दीं। इस नाते भी अव्वल लेखिका कि उसने पुरुषों की साहित्यिक स्थापना के भीतर लिंगवाद का पुरजोर विरोध प्रारंभ किया। उनकी विशिष्ट स्थापनाओं से अर्जित प्रतिष्ठा को इसी बात से तौला जा

सकता है कि बर्तानिया बौद्धिक विमर्श में आज भी नारीवाद, पतन, वर्ग विचारधारा और आधुनिक साहित्य की प्रारंभिक संस्कृति जैसे विषयों के किले में प्रवेश करने की चाबी मेरी कोरिली से माँगी जाती है।

सामाजिक तौर पर विवादास्पद करार दिये जाने की चुनौतियों से जूझती और कदाचित् परवाह भी नहीं करनेवाले लेखन के बल पर ही नए युग के आंदोलन के शुरुआती अधिवक्ता के रूप में लेबल अर्जित करनेवाली मेरी कोरिली। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दौर और बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्रिटेन के सामने आने वाले मुद्दों में पारंपरिक धार्मिक विश्वास पर नए वैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रभाव, तकनीकी नवाचार का प्रभाव, सामूहिक साक्षरता के प्रभाव और महिलाओं की बदलती भूमिका पर होनेवाले हर विश्वसनीय शोध में शिद्दत से स्मरण की जानेवाली मेरी कोरिली।

सच्चाई यही–मेरी कोरिली अपनी सफलता की ऊँचाई पर इंग्लैंड में सबसे ज़्यादा बिकने वाली और सबसे ज़्यादा भुगतान जुटाने वाली लेखिका थीं। उसके पाठक तब महारानी विक्टोरिया, समूचा शाही परिवार, विंस्टन चर्चिल, ग्लैडस्टोन से लेकर सबसे ग़रीब लड़कियों तक थे। उसने क़रीबन तीस पुस्तकें लिखीं, जिनमें से अधिकांश अभूतपूर्व विक्रेता के साथ सराही जाती रही। इस तथ्य के बावजूद कि उनके उपन्यासों को आलोचकों द्वारा या तो नज़रअंदाज़ किया गया था या उनकी एकतरफ़ा आलोचना की गई थी।

आज भी ब्रिटिश पुस्तक–प्रेमी बुद्धिजीवियों में संपूर्ण रोमांस के साथ सतत् पढ़े–समझे–सराहे जाने वाले ज़रूरी उपन्यासों की लेखिका। बाद में थेल्मा से बड़े आर्ट डायरेक्टर भी प्रभावित रहे–अमेरिका में 1910 में उस पर बहुप्रशंसित फ़िल्म भी बनी।

सार–सार गहि रह्यो

थेल्मा का सार–संक्षेप कुछ इस प्रकार है–'इंग्लैंड के नवाब सर फिलिप ब्रूस एरिंगटन अपने तीन साथियों के साथ अपने निजी ज़हाज पर नार्वे की यात्रा पर निकले हैं। कुछ समय के लिए वे एल्टेनफोर्ड नामक खाड़ी के किनारे ठहरे हैं, जो कथा की नायिका, अपूर्व सुंदरी थेल्मा का गाँव है।

एक दिन जब फिलिप अर्ध रात्रि के सूर्य का सौंदर्य देख रहे होते हैं, तब उन्हें थेल्मा की हल्की सी झलक मिलती है और वे उससे मिलने को उतावले हो जाते हैं। कुछ समय के बाद वे अपने अभिन्न मित्र लारीमर के साथ थेल्मा का घर ढूँढ़ने में सफल होते हैं। लारीमर भी थेल्मा से मन ही मन प्यार करने लगता है, किन्तु फिलिप के उत्कट प्रेम को देखकर अपनी भावना को दबा देता है। इसी समय वे थेल्मा और उसके पिता, जो एक साहसी समुद्री नाविक रहे हैं, से घर जाकर मिलते हैं और उनके उच्च साहित्यिक लगाव और निश्छल प्रेम के कायल हो जाते हैं।

कुछ समय बाद ही फिलिप थेल्मा से विवाह करके उसे लंदन ले जाता है। लंदन का आभिजात्य समाज कुछ समय के लिए एक तथाकथित देहाती और असभ्य लड़की से विवाह करने के कारण फिलिप का सामाजिक बहिष्कार कर देता है। फिर फिलिप की एक पूर्व प्रेमिका दम्पति के सम्मान में एक पार्टी का आयोजन करते हैं, जहाँ थेल्मा के अप्रतिम सौंदर्य, उसके साहित्यिक ज्ञान और संगीत की परख को देख सभी हतप्रभ रह जाते हैं और जल–भुन जाते हैं। बाद में फिलिप की वही पूर्व प्रेमिका थेल्मा को यह झूठा विश्वास दिला देती है कि फिलिप रंगमंच की एक नर्तकी से प्रेम करने लग गया है।

थेल्मा यह समझकर कि वह शायद फिलिप के योग्य नहीं है, एक दिन उसे बिना बताये बड़ी कठिनाई से समुद्री यात्रा करके एल्टेनफोर्ड पहुँचती है। वह इतनी बीमार है कि उसे यह भी पता नहीं चलता कि उसके पिता जल समाधि ले चुके हैं। वह बड़ी मुश्किल से ठीक होती है। इसी बीच वह एक मृत शिशु को जन्म देती है। फिलिप भी बड़ी कठिनाई से यात्रा करके वहाँ पहुचते हैं और मृतप्राय थेल्मा जी उठती है।

कालांतर में थेल्मा की तीन संतानें होती हैं, जिनमें एक बच्ची, थेल्मा है, जो बचपन से ही लारीमर को अपना पति मान लेती है। लारीमर अधेड़ अवस्था में उससे विवाह कर एक प्रकार से थेल्मा को अंशत: पा लेता है।

इस संक्षिप्ति के वास्तविक बृहत में उपन्यास प्रेमी लेखकों, समीक्षकों और पाठकों के लिए आस्वाद और सरोकार के अनेकानेक आयाम हैं, जिसके रंग–रूप को किसी ऐसी समीक्षा के सहारे नहीं, बल्कि आत्मीय पाठ से ही परखा जा सकता है और उस परख में समुद्र से सीप और मोती जैसी संप्राप्ति की गारंटी बिना बड़बोलेपन के साथ फिलहाल मेरे अपने पाठकीय विवेक के साथ तो विन्यस्त है ही। शेष आपका अपना सौंदर्य–बोध, आपकी अपनी रुचि–कुरुचि और आपका अपना आचार–विचार!

अनुवाद एक पुनर्रचना ही :– 585 पृष्ठ में फैले थेल्मा की कथावस्तु का हिंदी में कायांतरण और भाषांतरण किसी अतिरिक्त अनुरक्ति

और अशेष मेहनत के बग़ैर संभव कहाँ था! 'थेल्मा' जैसी बृहतकाय कृति के दो-दो परिसरों में बिना किसी अध्येता-वृत्ति में निष्णात हुए प्रवेश करना दुष्कर ही था। इस लिहाज़ से अनुवादक का साहस वरेण्य है।

हर अनुवादक किसी राग-विराग में केवल अपने लिए नहीं-किसी रचना के बेशक़ीमती आस्वाद और बेहद ज़रूरी मौलिक आश्वस्तियों को दूसरी या अपनी भाषा में उतार कर एक विशाल भाषायी समाज तक भी पहुँचाता है। ऐसा करते समय वह उस रचना का एक तरह से पुनर्रचना भी करता है। यह पुनर्रचित शब्दानुभव किसी 'नये पाठ' की सर्जना से कतई कहाँ कम होता है!

मैं अंग्रेज़ी के बारे में यद्यपि अधिक न जानूँ, तथापि हिंदी में 'थेल्मा' की गहराई से उबरने के बाद इतना कम तो जान ही लेता हूँ-यह पुनर्रचना हिंदी-अंग्रेज़ी के शब्द-भंडार, उसकी स्थानिक बोलियों के रूप, लहजे़, उसके स्लैंग्स, उसके मुहावरों और वाक्य-विन्यास और कुल मिलाकर सौंदर्यशास्त्रीय ढाँचे को समझने-बूझने में निष्णात हुए बिना कहाँ संभव था-और यह भी यदि व्यक्ति और जाति वाचक संज्ञाओं को बदल दें तो हिंदी के किसी नितांत नये उपन्यास की तरह भी 'थेल्मा' पाठकीय चेतना और आकांक्षा को अपनी कथा-लय में घेर-घेर लेता है। इस कठिन दायित्य के निर्वहन में संतोष जी पारंगत साबित हुए हैं। कायदे से यूँ तो संस्कृतियों की बारीकियों, भावनाओं, स्वभाव और अन्य सूक्ष्म तत्वों का अनुवाद दुरूह होता है, फिर भी इस दुरूहता के उस पार जाने में संतोष जी कभी भी अबल नहीं दिखते। हर अध्याय के अंत में संदर्भ द्वारा कृति में उपस्थित विदेशी पात्रों, स्थानों, भावों और घटनाओं को समझा जा सकता है, जो पाठकों के लिए बहुउपयोगी भी है।

इस उपन्यास से उत्कृष्ट अनुवाद की कुछ संग्रहणीय पंक्तियाँ :

एक अविवाहित पुरुष भी किसी बातूनी,
बूढ़ी औरत से कम नहीं होता।
जो हमेशा अकेला रहता है,
बोलेगा ही चाहे वह पेड़ों या लहरों से बात करे।

बुद्धिहीन मस्तिष्क बिना भार के जहाज़ की भाँति होता है - तब सुरक्षित यात्रा संभव नहीं होती।

कोई भी इतना श्रेष्ठ नहीं हो सकता कि सीधा स्वर्ग चला जाये। रास्ते में एक छोटा-सा विश्राम तो होना ही चाहिए, जहाँ वह अपने सारे बुरे कर्मों की क्षमा माँग सके।

मेरे निर्दोष प्रेम के लिए कभी कोई औरत बुरी थी ही नहीं।

हवा जंगलों से लड़ती है, सूर्य आकाश से लड़ता है,
प्रकाश अँधेरे से, जीवन मृत्यु से।

हम उपन्यासकारों में हर वस्तु के सबसे ख़राब और भद्दे पक्ष को देखने का एक दुर्भाग्यपूर्ण कौशल होता है।

अधिकांश प्रसिद्ध और मर्मस्पर्शी लगने वाली कारुणिक गाथाएँ, सूक्ष्मता से देखने पर अत्यधिक निम्न कोटि का स्वाँग प्रतीत होती हैं। क्यों नये कवि, कितने ही श्रेष्ठ रूप से प्रेरित, तब तक स्वीकार नहीं किये जाते थे जब तक पत्र-पत्रिकाओं में प्रभावशाली मित्र न हों। क्यों हमेशा चित्रकार अपनी मॉडल या खाना बनानेवालियों से विवाह करते थे।

आज के समय में लोगों पर शासन कौन करता है, यह कलम है -पंखों वाली श्रीमती! एक छोटी, नुकीली, खुरचने वाली दानवी, सारे देशों की साम्राज्ञी! कोई मुकुट नहीं, सिर्फ़ एक नोक-कोई राजसी परिधान नहीं, सिवा स्याही के। यह निश्चित है कि जब तक यह 'पंखों वाली श्रीमती' कागज के साम्राज्य पर मुक्त रूप से कूद-फाँद करती रहेंगी, तब तक राजा और सामंत काँपते रहेंगे, और अपने सिंहासनों के विषय में सशंकित होंगे।

अंकुरारोपण की ज़मीन? :- यही कोई 10-12 वर्ष पूर्व उनकी पहली अनुदित कृति 'दि सोल ऑफ लिलिथ' (मेरी कोरिली ही) की सृजन-प्रक्रिया के ईमानदार गवाह होने के बावजूद भी जाने क्यों उन रचनात्मक क्षणों (रायपुर) को मैं एकबारगी भूल बैठा-संतोष जी के समक्ष मेरा मानस प्रश्नातुर था जब-तब वे सिलसिला बताने लगते हैं -'मैंने अपने कश्मीर प्रवास के दौरान सन् 1983 के लगभग 'थेल्मा' उपन्यास पढ़ चुका था तभी से मैं उसके कथ्य और संदेश से चमत्कृत था। बाद में सन् 2014 में मेरी कोरिली के उपन्यास, 'दि सोल आफ लिलिथ' के अनुवाद, 'स्वर्ग से आया गुलाब' के विमोचन के अवसर पर मनोज श्रीवास्तव जी ने मुझे प्रेरित किया कि मैं मेरी कोरिली के अन्य उपन्यासों का भी अनुवाद करूँ। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि थेल्मा के चरित्र में मुझे एक आदर्श भारतीय नारी के दर्शन हुए और मैं बढ़ चला अनुवाद के बीहड़ पथ पर।

मनोज श्रीवास्तव (फ़्लैप पर) की तरह कहें तो-थेल्मा 'नार्वे का प्रवेश द्वार' ही है। मैं आखिर क्यों भी सहमत न होऊँ श्रीवास्तव जी से-जो वे विचारक सेंतोरीनी को स्मरण करते हुए कहना चाहते हैं।' कि अनुवाद टेपेस्ट्री का दूसरा पहलू है। किन्तु उन्होंने स्नेह वश लिखा कि संतोष रंजन का अनुवाद टेपेस्ट्री के मुख्य भाग से भी सुंदर है।

एफ-3, आवासीय परिसर
छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मंडल
पेंशनवाड़ा, रायपुर-492001 (छत्तीसगढ़)
मो.-94241-82664

नासमझ मन-भज मन

- मनोरमा पंत

पुस्तक नासमझ मन-भज मन के पृष्ठ पटलते ही पढ़ा 'पचास वर्षों की साहित्यिक यात्रा में मिले सह यात्रियों को समर्पित।' किताब का साहित्यिक साथियों को समर्पण मुझे अभिभूत कर गया। यह समर्पण उनके व्यक्तिगत औदार्य को उद्घाटित करता है। उनका आत्मकथ्य भी अंतर्मन को उद्वेलित कर जाता है, जिसमें वे वेबाकी से लिखती हैं-साहित्यकार की प्रथम रचना कविता ही होती है। स्वयं को इंगित करती हुई वे कहती हैं- 'मन की पर्वत पीड़ा सी सघन क्षणों की भावों की अभिव्यक्ति कविता के रूप में झरनों से फूट पड़ती है।' इस आत्मकथ्य को पढ़ते ही मैं समझ गई कि मालती जी की कविताएँ पीड़ा, दुख से परिपूर्ण होंगी। जिस प्रकार का वाष्प से घनीभूत बादल अन्ततः बरस ही जाते हैं, वैसे ही वर्षों से उनके मन की पीड़ा भोगे हुये दर्द के घनीभूत बादल अन्ततः इस काव्य संग्रह के रूप में बरस ही गये। इस संग्रह में उनके विगत पचास वर्षों के जीवन के अनुभव की अनुभूति है, निष्कर्ष है दुख-सुख दोनों देती है।
कबीरदास जी ने मन के बारे में लिखा है -

'कबीरा यह तन खेत है, मन, बच, करम किसान, पाप पुण्य दुई बीज हैं, जौतेः बलैः।' पाप, पुण्य दो बीज है, क्या बोना है। यह तो बोने वाला ही जाने। तो मालती जी ने अपने कविता संग्रह में जो बीज बोए उसकी पुण्य फसल से हम सब का जीवन सफल हो गया।

पुस्तक : नासमझ मन-भज मन
लेखक : मालती बसंत
प्रकाशक : आईसेक्ट पब्लिकेशन।
मूल्य : 250/- रु.

हम सब की जीवन यात्रा मन से ही बातें करती निकल जाती है। मालती जी अधिकांश कविताएँ मन को केन्द्र बिन्दु बनाकर लिखी गई हैं जिसमें दर्द है, उदासी है, वैराग्य है, आध्यात्मिकता है पर दूसरी ओर उनकी कविताओं में बसंत भी छाया है। बसंत पर तो उनकी लगभग दस कविताएँ है। बादाम का पेड़, कमलवत रहना, पावस ऋतु और सखियाँ, धूप के रूप जैसी कविताएँ उनके प्रकृति प्रेम को दर्शाती हैं।

प्रसिद्ध साहित्यकार रा.ए. बेनेट ने कहा है-अपने मन का अनुकरण करो, अपने अंदर की आवाज सुनो और इस बात की परवाह छोड़ दो कि लोग क्या कहेंगे। मालती जी ने यही बात खुले मन और दिमाग से की और निष्कर्ष निकाला इन शब्दों में -

निराशा में रहता था मन / काँटों में उलझा था मन
माना अपनों को पराया / ऐसा था नासमझ मन
दुख ही तो जीवन का सुख था / दर्द ही सावन का गीत था
विरह तो पावन पर्व था/कहाँ समझ पाया बौराया मन

सब कुछ अच्छा करने के बाद भी अंत में कुछ नहीं मिलता तो पीड़ा घनीभूत होकर दर्द दर्दीले शब्दों में कह उठती है -
बहुत अकेला सा है मन
लिखना चाहता है कहानी अपनी पर लिखे कहाँ,
अब कोई कागज कोरा भी नहीं है।
'मेरा मन बहुत हारा' में कवयित्री अपनी घुटन अभिव्यक्त करते हुये कहती है-

जाने कितने सपने महलों के देखे
सच में केवल खण्डहर मिले

यही दुख और वेदना उनकी विरह कविताओं में भी परिलक्षित होती है। मालती जी की लगभग नौ कविताएँ विरह का दुःख इतने स्वभाविक तरीके से बतलाती हैं कि पाठक स्वयं उस दर्दीले दुख से जुड़ जाता है। बोझ है मन में, वो नहीं आए, बहुत अकेला अकेला सा है मन है, प्रिय तुम्हारे न आने से जैसे कविताओं के शब्द दुख के काँटो के समान मन को विदीर्ण कर देते हैं। मन में चुभती यह बात, भावुक मन रोता है, मन योगी हो जाए, जिन्दगी के हिसाब से खुद को ढूँढ़ रहा हूँ, फूल भी शूल से चुभते हैं, जैसी कविता के अंश इसके उदाहरण है।

जब उदासी, अवहेलना के बादल छँट जाते हैं तो कवयित्री बसंत का स्वागत करने जुट जाती है -
'बसंत तुम आना, प्रेम संदेशा लेकर आना
तुम्हारा पथ बुहारूँगी।
बसंत खुलकर आओ धरा पर।'

मेरे सतरंगी दिन में वे कहती हैं -
मैं जीना चाहती हूँ आएँगे मेरे दिन,
जब मेरे लिये उगेगा सूर्य और चाँद

अपनी कविताओं में उन्होंने स्त्री की जिन्दगी की उठा-पटक को दक्षता से दर्शाया है। औरत के अंदर की छटपटाहट तथा विवशता को बताते हुए उनकी कलम लिखती है –
मैं कहना चाहती हूँ सब बातें। /पर कह नहीं पाती।

बोझ है मन पर कविता में उनका स्त्रीमन विकल होकर कह उठता है–
दर्द में डूबा तन हूँ, आँसू से भीगा मन है।
राह चलते चलते थका-थका सा है मन
ठहरे कहाँ, रास्ते में कोई घर भी नहीं।

तस्लीमा नसरीन ने किताब लिखी है औरत का कोई देश नहीं पर मालती जी तो एक कदम आगे बढ़कर कहती है कि –
राह चलते-चलते थका-थका सा है मन,
ठहरे कहाँ रास्ते में कोई घर भी नहीं?

काठ की गुड़िया में उनकी मुखर वाणी प्रस्फुटित हो जाती है इस रूप में–
मैं जननी हूँ कई रूप हैं मेरे / फिर भी क्या रह गई।
मैं क्यों अस्तित्वहीन / बनकर एक काठ की गुड़िया

पर दूसरे ही क्षण ने आत्मविश्वास से भर कह उठती है–
एक बोनी लड़की / छूना चाहती है आकाश
सारी धरा के शूल समेट / बिखेर देना चाहती है फूल

वे जानती हैं समस्त पाबंदियों, दबाव, यत्रणाओं के बावजूद एक औरत के अंदर एक और औरत रहती है। कौन है वह जाने इन कविता-पंक्तियों में –
'कविता लिखना बयान है बची है उसके अंदर की औरत
जो अपनी संपूर्ण भावनाओं के साथ एक इन्द्रधनुष
मन के क्षितिज पर खींचती है।'

जिन्दगी के बारे में सबके अपने-अपने अनुभव होते हैं पर सभी इस बात में एकमत हैं कि जिन्दगी एक पहेली है। मालती जी जिन्दगी के बारे में तराशे गये अलफाजों में कहती हैं –
'जिन्दगी बड़ी अजब पहेली
सुलझाओ तो उलझ जाती
छोड़ दो तो सुलझ जाती।'

आगे की इन पंक्तियों के बेबाकीपन से हर कोई हैरान रह जाता है–
जुड़ जाए तो हीरे मोती,
बिखर जाए तो कंकड़ मिट्टी।

आध्यात्मिकता से सराबोर इन शब्दों से जिन्दगी की हकीकत का पता चला जाता है।

जिन्दगी एक सपना,
सपना तो सपना है
बार-बार टूटेगा
फिर इस झूठे सपने से क्या प्यार?

क्षणभंगुर स्वप्नवत जिन्दगी की असलियत समझ वे बोल उठती हैं–
आओ जिन्दगी सँवारें / भूलें दुःख दर्द सारे
कड़वाहट को बुहारें

सुखी रहने का मंत्र बताते हुये वे कहती हैं–'**रहो निसर्ग के साथ**' जिन्दगी का निचोड़ उनसे लिख जाता है–
जीवन में एक अभाव दे गया कई भाव।

अब बात करते हैं पुस्तक के दूसरे भाग की मेरा ऐसा मानना है कि काव्य संग्रह का दूसरा भाग 'भज मन' प्रथम भाग 'नासमझ मन' का ही निष्कर्ष है। जीवन भर के खट्टे-मीठे अनुभवों के पश्चात् ही मनुष्य को समझ आता है कि सच में मन नासमझ ही रहा। मालती जी के शब्दों में–
दुःख ही तो जीवन का सुख था/ दर्द ही सावन का गीत था
कहाँ समझ पाया बौराया मन /बस अब एकमात्र रास्ता बचा है ईश भक्ति।

वे कहती हैं–
प्रभु तू सच्चा पथ प्रदर्शक है।
प्रभु तू ही सही माने में परमात्मा है, परम गुरु है।

आध्यात्मिकता का पुट लिये कविताएँ 'तुम और मैं, प्रभु का उपकार, श्रीराम कृपा, जग को बनाने वाले' मन को ईश भक्ति से सराबोर कर देती है। ईश्वर ही बस एक है तमाम कविताएँ बताती हैं कि ईश्वर सत्य है, बाकी सब झूठ है। आध्यामिक चिंतन, वैराग्य को समेटे जीवन दर्शन का प्राकट्य करती सभी कविताएँ मनुष्य की पथ प्रदर्शिका का महत कार्य करती है।

मालती जी सभी कविताएँ भाषा शैली के अलंकरण से हीन सीधी-सादी भाषा वाली, भावमयी एवं संवेदनाओं से ओतप्रोत हैं। आशा करती हूँ कि वे अवश्य पाठकों को आकर्षित करेंगी। चित्ताकर्षक आवरण वाले इस काव्य संग्रह हेतु उन्हें मैं दिल से बधाई देती हूँ।

85-बी स्टेट बैंक कॉलोनी,
ई/7 अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462039 (म.प्र.)
मो. 9229113195

सींग वाले गधे

– गोकुल सोनी

यूँ तो देश में अनेक स्वनामधन्य व्यंग्यकार हैं, परन्तु यदि स्थापित एवं श्रेष्ठ व्यंग्यकारों की बात की जाए तो वे अँगुलियों पर गिने जा सकते है। प्रेम जन्मेजय एक ऐसा नाम है जिन्होंने गद्य-व्यंग्य के क्षेत्र में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। जैसे आप हास्य कवि सुरेन्द्र शर्मा से मिलकर, उनकी गुरु गंभीर मुद्रा देखकर यह नहीं समझ सकते कि यह व्यक्ति हास्य-व्यंग्य कविता लेखन में इतना निष्णात होगा, वैसे ही श्री प्रेम जन्मेजय को देखकर प्रथम दृष्टि में यह नहीं कहा जा सकता कि यह व्यक्ति व्यंग्य आलेखों का पैना वाग्जाल रचने में माहिर होगा। मेरी एक-दो बार ही उनसे संक्षिप्त मुलाकात हुई है, जिसमें उनके चेहरे की सहज गंभीरता, मंद मुस्कान एक सुहृदय व्यक्ति की छबि तो निर्मित करती है, परन्तु एक व्यंग्यकार की नहीं।

पुस्तक : सींगवाले गधे
लेखक : प्रेम जन्मेजय
प्रकाशक : विद्या विहार नई दिल्ली
मूल्य : 400 /- रु., पृ. 176

व्यंग्य के श्रेष्ठ अखिल भारतीय सम्मानों यथा- हरिशंकर परसाई सम्मान, शरद जोशी राष्ट्रीय सम्मान, व्यंग्यश्री सम्मान, पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी सम्मान, अट्टहास शिखर सम्मान, कमला गोइन्का व्यंग्य भूषण सम्मान, दुष्यंत कुमार अलंकरण, नई धारा 2015 रचना सम्मानों सहित अनेक सम्मान प्राप्त श्री प्रेम जन्मेजय व्यंग्य से सम्बद्ध 12 पुस्तके लिख चुके हैं। उनका व्यंग्य लेखन विविध आयामी है जिसमें गद्य व्यंग्य के अलावा व्यंग्य नाटक, संस्मरण, एवं धर्मवीर भारती, नरेंद्र कोहली, हरिशंकर परसाई आदि व्यंग्यकारों का सजग मूल्यांकन शामिल है।

जहाँ तक आलोच्य व्यंग्य संग्रह 'सींग वाले गधे' की बात की जाए तो इस संग्रह में बड़े पैने और चुटीले चालीस व्यंग्य-आलेख हैं जिनको पढ़कर पाठक जोर से ठहाका भले ही न लगाए, परन्तु आरम्भ से अंत तक मुस्कुराता जरूर रहता है। तथापि ये शुद्ध रूप से व्यंग्य हैं एवं इनको हास्य की दृष्टि से नहीं लिखा गया है, परन्तु कई बार हास्य 'बाई-प्रोडक्ट' के रूप में पीछे-पीछे दौड़ा चला आता है। आपका शीर्षक व्यंग्य 'सींग वाले गधे' एक रोचक व्यंग्य है, जिसमें पूर्वार्ध में भाषा उत्सुकता जागृत करती है कि सींग वाले गधे कौन? फिर प्रेम जी बड़े प्रेम के साथ परिभाषित करते हैं कि 'ऐसे व्यक्ति जो अति महत्त्वपूर्ण पदों पर विराजमान हैं, जो किसी का काम बना भी सकते हैं और बिगाड़ भी सकते हैं, वे सींग वाले गधे हैं' परन्तु जब वे किसी को अनैतिक लाभ देते हैं, या देने की क्षमता रखते हैं, तो वे 'दुधारू किस्म के सींग वाले गधे' होते हैं। ऐसे गधों की कीमत अधिक होती है, जब ये किसी वजह से 'पॉवर-लेस' हो जाते हैं तब इनके सींग गायब हो जाते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र के काल से ही गद्य लेखन विधा पुष्पित और पल्लवित हुई है। उनका सुप्रसिद्ध आलेख है-'हा हा भारत दुर्दशा देखी न जाई।' इसी की तर्ज पर लिखा गया है व्यंग्य-'हा! हा! श्री दुर्दशा देखी न जाई' वर्तमान में क्रांतिकारी लेखक का चोला ओढ़े, भारतीय संस्कृति की उपेक्षा करने वाले लेखकों की दुर्दशा पर पैना प्रहार करता है। ऐसे ढोंगी और कुतर्की लोग अब बिलकुल अप्रासंगिक हो गए हैं परन्तु वे अपने विचारों के मोहपाश से आबद्ध हैं। वे सूरदास के भजन की भी अपने ही ढंग से तोड़-मरोड़कर व्याख्या करते हैं। और कहते हैं कि 'मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो' में दाऊ आलोचक 'नामवर सिंह' है जो अपनी आलोचना दृष्टि से परेशान कर रहा है। इसको पढ़कर लगता है कि प्रेम जी का निशाना किसी व्यक्ति विशेष पर है। इसी तरह हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'गोकुलनाथ' द्वारा रचित 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। प्रेम जी इसी तर्ज पर 'दो वैष्णवन की वार्ता' लिखते हैं, जिसमे वार्तालाप के माध्यम से बताते हैं कि गीतांजलि श्री को 'रेत-समाधि' पर बुकर पुरस्कार क्या मिला, (पहला बुकर पुरस्कार अरुंधती रॉय को मिला था) अनेक मर्दों की मूँछें नीची हो गईं, अनेक को अपच हो गई। उनको लगने लगा कि इसमें भी लन्दन वालों की कोई चाल है, या जुगाड़ से मिलता होगा। इस तरह इस व्यंग्य में ईर्ष्यालु प्रवृत्ति के साहित्यकारों की अच्छी खबर ली गई है।

व्यंग्य 'जैसे किनके दिन फिरे' का चुटीला भावार्थ यही है कि चुनाव के बाद जनता के नहीं नेताओं के दिन फिरते हैं। 'अथ पुरुष-स्त्री संवाद' परिवार में नारी की विविध आयामी भूमिकाओं की चर्चा करते हुए पुरुष पर नारी की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने वाला

व्यंग्य है, जिसमें प्रेम जी की लेखकीय ईमानदारी सामने आती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उनका सोच पुरुषवादी अहं का पोषक नहीं है। भारत की समाज व्यवस्था ऐसी है, कि जो खूब पढ़े लिखे होते हैं वे डॉक्टर बनते हैं, इंजीनियर बनते हैं, वैज्ञानिक बनते हैं, आई.ए.एस. बनते हैं, परन्तु जो पढ़ने-लिखने में फिसड्डी होते हैं, वे बड़े होकर नेता बनते हैं, मंत्री बनते हैं और पढ़े-लिखों की कमान उनके हाथ में होती है। इस विपरीत चलन पर पैना प्रहार करता है, व्यंग्य 'बसंत चुनाव लड़ रहा है।' 'इक यह भी दिवाली है' में दोस्त की व्यंगात्मक परिभाषा देते हुए प्रेम जी कहते हैं कि आजकल सच्चा दोस्त 'रैफलेशिया फूल' की तरह होता है, जो दूर से देखने में बड़े दिल वाला सुन्दर दिखता है, पर छूने से सड़े माँस की बदबू मारता है। सच्चा दोस्त वही है, जो दोस्तों को 'यूज एंड थ्रो' की तरह इस्तेमाल करता है, जो मित्र की मुसीबत देखकर ऊपर से दुखी होता है परन्तु अन्दर से सुखी होता है।'

'बधाई! पद्मश्री तो आ गई है, लेकिन' संस्मरण शैली में लिखा व्यंग्य है जिसकी भाषा विनोदपूर्ण है। वास्तव में सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई को जब पद्मश्री मिली थी तब वे कुँआरे थे। उनको यह समझाना कि अब तो विवाह कर डालो, बड़ा जोखिम भरा और दुष्कर काम था। सुप्रसिद्ध साहित्यकार धर्मवीर भारती द्वारा यह काम लेखक को सौंपा जाता है। लेखक इस हेतु श्रीकांत वर्मा, सुप्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह, व्यंग्यकार गोपालप्रसाद व्यास जैसे मूर्धन्य समकालीन साहित्यकारों का सहारा लेते हैं परन्तु अंत में सभी उपाय 'टाँय-टाँय फिस्स' हो जाते हैं। बुरा न मानो होली है जैसी आधार भूमि पर लिखी गई यह रचना मनोरंजक होने के साथ ही लेखकों के परस्पर सौहार्दपूर्ण संबंधों पर भी प्रकाश डालती है। एक समय दीन-हीन कहा जाने वाला साहित्यकार जो मुंशी प्रेमचंद की तरह गरीबों पर लिखता था आज स्वार्थी, सुविधा भोगी एवं धनाढ्य हो गया है। अनेक बड़े साहित्यकारों के शासन-प्रशासन के बड़े अधिकारियों से तथा मंत्रियों तक से व्यक्तिगत सम्बन्ध होते हैं। ऐसे जुगाडू साहित्यकार आजकल अत्यधिक शक्तिशाली हो गए हैं। वे अकूत संपत्ति कमा रहे हैं परन्तु उनपर छापे डालना आसान नहीं है। यह भावार्थ है व्यंग्य 'बुरा न मानो, साहित्यिक छापे हैं' का। आज के युग में नई पीढ़ी के तौर तरीको को देखते हुए 'वैलेंटाइन डे' के सामने निरीह 'बसंत' मुरझाया सा घूमता है। पुरातन जो मूल्यवान था अब विस्मृत हो रहा है। पीढ़ियों के अंतर को सामने लाती सुन्दर रचना है 'अबिगत की गति' हरिशंकर परसाई का एक बड़ा पैना और चुटीला व्यंग्य था 'पुलिस वालों का शिष्टाचार सप्ताह' जिसमे पुलिस वालों को सिखाया जाता है कि जनता से इज्जत से पेश आयें। उनके नाम के आगे श्रीमान जी लगाकर बात करें। प्रभाव ये होता है, कि एक पुलिस वाला बीच रोड पर जा रहे एक आदमी को रोकता है-ए साले श्रीमान जी, यह क्या तेरे बाप की सड़क है श्रीमान जी। जो बीच-बीच में चल रहा है श्रीमान जी। इसी की याद दिलाता है व्यंग्य का शीर्षक 'ओ बे मास्टरजी!' जिसमें दिल्ली में मास्टरों से किये गए झूठे वादों की पोल खोली गई है। मंत्री पद या कुर्सी के लिए जो जोड़-तोड़ और घृणित समझौते किये जाते हैं। दल बदलने के खेल रोज खेले जा रहे हैं इसको सामने लाता है व्यंग्य 'वस्त्रों की राजनीति'। जिसमें नेतागण वस्त्रों की तरह पार्टी बदलते हैं। 'इश्क नहीं आसाँ' एक गुदगुदाता व्यंग्य है जिसमे प्यार पर पुलिसिया पहरे को निशाना बनाया जा गया है। प्रेम जी कहते हैं कि अब प्रेम की रोमांटिक अनुभूतियाँ हवा हो गई। पुलिस वाले सूँघते ही फिरते हैं और कभी-कभी तो निर्दोष व्यक्ति को भी यह आरोप लगाकर पकड़ लेते हैं कि तूने लड़की से छेड़-छाड़ की है। ये बात अलग है कि पैसा लेकर लड़के को छोड़ देते हैं, जो कार्य नाजायज है, वह नोटों की झलक मिलते ही जायज हो जाता है। यह व्यंग्य मारल-पुलिसिंग, जो प्रायः 'वैलेंटाइन-दे' के दिन देखने को मिलती है, परोक्ष रूप से उसपर भी कटाक्ष करता है।

एक अलग किस्म का प्रयोगधर्मी व्यंग्य है 'बूढ़ा ठग'। वास्तव में उम्र और अनुभव बढ़ने के साथ व्यक्ति के कई रूप सामने आते हैं। कभी वह अपने आप को, तो कभी परिवार को, तो कभी समाज को ठगता है। वह वास्तव में बूढ़ा है, पर भ्रम पाले है कि वह जवान है। यही दूसरों को भी दिखाना चाहता है। कभी अमीरी। तो कभी गरीबी। स्वार्थ के अनुसार उसके वेश बदलते हैं। इस तरह आदमी खुद को भी ठगता है और दूसरों को भी। इसमें प्रेम बाबू का प्रिय किरदार राधेलाल है, जिसके पास चार आलमारी हैं। पहली आलमारी में वह अपनी नेकी नाम की कमाई रखना चाहता है, थोड़ा दान-पुण्य भी करता है, ताकि अगला जन्म सुधर जाए। दूसरी आलमारी में राधेलाल अपनी जवानी सुरक्षित रखना चाहता है। वह वास्तव में बूढ़ा है परन्तु सफेद बालों वाली कैप, प्रेस किया सूट, पुलिस से चमकाए जूते पहनकर, सेंट लगाकर घुटने में नी-केप तथा नकली दाँत लगाकर पार्टी में जाता है। वह बच्चों के सामने दवाई के पर्चे रखकर पैसा होते हुए भी अपने आप को विपन्न दिखाना चाहता है, ताकि उसका धन बच्चों की दृष्टि से बचाकर तीसरी आलमारी में रख सके। चौथी आलमारी में वह नेता बनकर, देश सेवा का ढोंग रचाकर, सेवा से मेवा कमाकर रखना चाता है। इस तरह 'व्यक्ति-चरित्र' के विविध आयामों को

प्रदर्शित करता यह व्यंग्य मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लिखा गया है। 'डगर लॉक डाउन की' में कोरोना काल में मजदूरों के पलायन का चित्र उकेरा गया है।

जहाँ 'वी.आई. पी. कल्चर' है, वहाँ अहंकार है, आडम्बर है, दिखावा है। दूसरों को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति है, वहाँ इंसानों की अपेक्षा कुत्ते की कीमत अधिक है। 'वी.आई. पी. सुख चहुँ दिश बखाना' व्यंग्य का भावार्थ यही है। दल बदलू नेताओं पर पैना व्यंग्य है 'मेंढक तुल रहे हैं'। बकौल प्रेम जी-'राजनीति में मेढकों का बड़ा काम रहता है, प्यारे! उनकी फुदकन ही तो तय करती है कि सत्ता की चाभी किसके पास जायेगी।' व्यंग्य देश का मूलाधार' के अनुसार देश का मूलाधार प्रजातंत्र है, प्रजातंत्र में जिसके नाम की आँधी आती है वही सोना बटोरता है। समाज में कुछ ऐसे बेतकल्लुफ पाए जाते हैं, जो बदतमीजी की हद तक बेशर्म होकर कहीं भी ठस जाते हैं। वे यह भी विचार नहीं करते, कि दूसरे व्यक्ति को इससे असुविधा होगी। ऐसे बेशर्मों पर चाबुक चलाता है व्यंग्य 'बेतकल्लुफकार'। गरीबों के लिए बाढ़ भले ही मुसीबत हो, परन्तु अमीरों, धनाढ्य वर्ग के लिए तो यह उत्सव की तरह होती है। वे इसमें भी पर्यटन जैसा मनोरंजन ढूँढ़ लेते है और मुआवजा बाँटने वालों का तो यह त्यौहार होता है। 'वाह री बाढ़' इसी विसंगति की और इशारा करती है। मुम्बई में और पुणे में मिलती है 'मारा मारी चाय' इसके बहाने राजनीति पर चोट करता है व्यंग्य 'मारा-मारी चाय चालू आहे'। मतदाता 'ठाकुर' से नेता 'गब्बर' बनकर हमेशा यही कहते हैं, कि ये 'वोट' अर्थात् 'ये हाथ मुझे दे दे।' लक्षणा में लिखा गया यह व्यंग्य बहुत सार्थक बन पड़ा है। सचमुच वोट देने के बाद वोटर के 'शोले' फिल्म के ठाकुर की तरह पाँच साल के लिए हाथ ही तो कट जाते हैं। 'चल चमेली बाढ़ में' गानों को आधार बनाकर लिखा व्यंग्य है, जिसमे नेता वोटर को तरह तरह के सब्ज बाग दिखाकर ठगता है। तथापि वोटर भी आसानी से हाथ नहीं आता, परन्तु अंत में तो ठगा ही जाता है। देश की राजधानी में भयानक प्रदूषण की और इशारा करता व्यंग्य है 'प्राण जाएँ पर प्रदूषण न जाई'। क्रेडिट कार्ड एक मीठा जहर है इसका जाल जी का जंजाल है 'अथ क्रेडिट कार्ड महिमा' में इसी पर व्यंग्य वाण चलाये गए हैं।

वास्तव में 'सींग वाले गधे' व्यंग्य संग्रह के कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि इसमें कई व्यंग्य कोरोना-काल की त्रासदी को सामने लाते हैं। अधिकतर व्यंग्य लक्षणा एवं व्यंजना में रचे गए हैं। व्यंग्य का आरंभिक भाग उत्सुकता जागृत करता है, मध्य भाग व्यंग्य को ऊँचाई पर ले जाता है, अंतिम भाग रहस्योद्घाटन करता है। प्रेम जी अपने लेखन में, पौराणिक प्रसंगों तथा साहित्यकारों के लेखन सन्दर्भों को, कहावतों, मुहावरों को साथ लेकर चलते हैं और उनके अपने हिसाब से व्यंगार्थ निकलकर चुटीलापन पैदा कर देते हैं। 'घर में नहीं दाने, अम्मा चली भुनाने' का कई बार प्रयोग हुआ है। यहाँ तक कि अपनी स्वयं की कहावत रच देते हैं, उदाहरण के लिए 'मूत में मछली पकड़ना'। इन्होंने अपने कुछ नए शब्द भी ईजाद किये हैं जो मनोरंजक है जैसे-फोटियाना (फोटो उतरने की क्रिया), बाढ़ायित (बाढ़ में डूबा), जिग्यीसाया (जिज्ञासा हुई), कूदार्थ (कूदने की इच्छा लिए), पिछवाड़ाभिनंदन (पिछवाड़े में लट्ठ पड़ना) आदि।
जैसे शर्लाक होम्स ने 'जेम्स बांड' पात्र की रचना की, व्यंग्यकार के.पी. सक्सेना ने 'मिर्जा' पात्र की रचना की, ऐसे ही प्रेम बाबू का प्रिय पात्र 'राधेलाल' है, जिसको केंद्र में रखकर कई व्यंग्य रचे गए हैं। अधिकतर व्यंग्यकारों की तरह प्रेम जी के व्यंग्य भी नेता, चुनाव, लोकतंत्र की विसंगतियों और राजनीतिज्ञों की कुटिलता तथा निरीह जनता के शोषण को केंद्र में रखकर लिखे गए हैं।

कुछ चुटकियाँ या 'वन लाइनर' भी भाषा को चुटीलापन प्रदान करते हैं, जिनको पढ़कर मुझे व्यंग्य लेखक 'शंकर पुणताम्बेकर' याद आये। उदाहरण के लिए-'उसने मेरी ओर आश्चर्य से देखा, जैसे न्यायालय में ईमानदार को देख लिया हो'। 'अखबारों को पढ़कर आजकल मेरी पौंगा पंडिताई 'भ्रष्ट-हिन्दी' में सुधार आ रहा है'। 'मैं अंग्रजी अखबार नहीं पढ़ता, क्योंकि वह केवल अंग्रेजी में होता है, खिचड़ी नहीं परोसता' 'टॉप पर खड़ा हर जीव टॉपलेस होता है'।

व्यंग्य आलेखों की भाषा चुटीली, मनोरंजक, सहज, सरल एवं पठनीय है। अपनी भाषा का स्तर कहीं गिरने नहीं दिया गया। इनमें व्यंग्य आलेखों में पैनापन भरपूर है, परन्तु हास्य कम आया है। इनमें सामाजिक सरोकार, संवेदनशीलता, और सकारात्मकता परिलक्षित होती है, इस तरह लेखक ने अपने लेखकीय दायित्व का भरपूर निर्वाह किया है। कहीं-कहीं पृष्ठ क्रमांक छूट गए हैं, उनको एवं अन्य टंकण त्रुटियों को अगले संस्करण में सुधारा जा सकता है। श्री प्रेम जन्मेजय के लिए इस गुदगुदाते व्यंग्य संग्रह हेतु बधाई एवं उन्नत लेखकीय भविष्य हेतु हार्दिक मंगलकामनाएँ।

82/1, सी-सेक्टर, साईनाथ नगर,
कोलार रोड, भोपाल- 462042 (म.प्र.)
मो.- 7000855409

न काहू से दोस्ती हमरा सबसे बैर

– सुनील जैन राही

व्यंग्य की बढ़ती विशाल दुनिया में व्यंग्य और अस्तित्व के लिए छटपटाते व्यंग्यकार नजर आ रहे हैं। ऐसे में डॉ. साधना बलवटे जी का व्यंग्य संग्रह 'न काहू से दोस्ती हमरा सबसे बैर' आम पाठक को आश्वस्त करता है। इस संग्रह में राजनीति, तात्कालिक विषय और मानवीय दृष्टिकोण को अनूठे अंदाज में प्रस्तुत किया गया है। यह संग्रह साहित्यकारों और आलोचक के साथ-साथ विशेष रूप से आम आदमी (पाठक) के लिए सृजित है। बेबस/लाचार और असहाय परिस्थितियों से जूझता आदमी दिखाई देता है। व्यवस्था हो या मानवीय निकृष्ट प्रवृत्ति अथवा साहित्य की कलाबाजियाँ तथा कोरोना काल की विसंगतियों पर तंज विचार गति को थाम लेता है और प्रत्येक व्यंग्य के बाद पाठक धीरे-धीरे सामान्य सोचने की स्थिति को प्राप्त होता है। फिर वह व्यंग्य की गहराई को महसूस करता है। अल्प शब्द के मायने हो, लालीपॉप या फिर यहाँ के गधे यहाँ हों या वहाँ के गधे मनन को मजबूर करते व्यंग्य धरातल पर धड़ाम कर देते हैं। बहरहाल उदाहरण समीचीन होंगे। **किसान को शांति के कबूतर उड़ाते रहना चाहिए।।**

व्यंग्य की बढ़ती माँग और घटते स्तर के दौर में एक अच्छे/उम्दा/सामाजिक/राजनीतिक/मानवीय सरोकारों से लबरेज व्यंग्य संग्रह का आना पाठकों और पुस्तक प्रेमियों के लिए हर्ष का विषय है। इस हर्ष में करुणा का अपना स्थान है। व्यंग्यकार, व्यंग्य के घटते स्तर से मुकाबला करने के लिए तत्पर हैं, लेकिन और कितने व्यंग्यकार इस हाशिये से बाहर आ पा रहे हैं, यह शोचनीय है। जिन विषयों पर कलम चलनी चाहिए उन पर व्यंग्यकारों चुप्पी का संकेत यहाँ अवलोकित नहीं होता, लेकिन डॉ. बलवटे जी ने उन विषयों को सलीके से गढ़ा है, जिन पर लिखने से साहित्यकार बचते नजर आ रहे हैं। इसी डर के मारे या तो विषय को छोड़ रहे हैं, या फिर हाशिये पर आने के डर से कलम नहीं चला पा रहे हैं। बेबाक होकर विषय चयन और प्रस्तुति है।

पढ़ाई के तरीके भी तो दहशत जगाते हैं,
तो माँ क्या ये पढ़ाई भी आतंकवादी कहलाती है?

समय की जरूरत है अच्छे मित्रों की। किस पर भरोसा करें और किस पर नहीं? इसी अस्थिरता के भाव से प्रेरित डॉ. साधना बलवटे जी के व्यंग्य संग्रह का नाम-'न काहू से दोस्ती, हमरा सबसे बैर' चुना (रखा)। वास्तव में देखा जाए तो अब कोई मित्र बचा ही नहीं है, जो हैं वे टाँग लपकने को तैयार बैठे हैं। बहुत दिनों के बाद नदी का पानी साफ हुआ, कुएँ से साफ पानी की बाल्टी निकली और महसूस हुआ विसंगति के आर पार देखने की दृष्टि सम्पन्नता और नीरक्षीर विवेक की गहराई के साथ भाषाई घालमेल नहीं है। सीधी है, सरल है और स्पष्ट भाषा है।

साधना जी का यह व्यंग्य संग्रह वर्तमान सामयिक दशा और दिशा की विसंगतियों का बखान करता है। आंशिक मिथक प्रयोग है। मिथक प्रयोग अपराध नहीं है, लेकिन मिथक के माध्यम से मजाक उड़ाना अपराध है। भावनाओं को ठेस पहुँचाये बिना बात कहना संग्रह की विशेषता है। साधना जी ने मुहावरों का सटीक और शानदार तरीके से निर्वहन किया है। शीर्षक के रूप में हो या नये मुहावरों के रूप में। कुछ गढ़े भी हैं तो कुछ पारम्परिक भी हैं।

पुस्तक : न काहू से दोस्ती हमरा सबसे बैर
लेखक : साधना बलवटे
प्रकाशक : भावना प्रकाशक, 109-ए पटपड़गंज, दिल्ली-110091
मूल्य : 195/- रु.

संग्रह में विषयों का चयन बड़े सोच-समझकर किया गया है। विषय ऐसे हैं, अगर जरा सी चूक हो जाए तो व्यंग्यकार कटघरे में खड़ा है। भाषा का कमाल है कि तीखी बात को शिमला मिर्च की तरह कह दिया। ऐसी कोई विसंगति नहीं है, जिस पर कलम ने तेरह-चौदह नहीं किया हो। दो कौड़ी की इज्जत करके वो छत्तीस के आँकड़े की पोजीशन में सो गई। व्यंग्य में भाषा का स्तर उच्चकोटि का है। विषय के अनुसार शब्द चयन पाठक को संदर्भ ढूँढ़ने की जहमत उठाने की इजाजत नहीं देता। कहीं-कहीं वाक्य अधिक लम्बे होने के बावजूद समझ में आ जाते हैं, लेकिन उसके लिए अतिरिक्त प्रयास करना पड़ता है, अगर गूढ़ार्थ को समझना और अन्यार्थ को देखना है तो।

शिक्षा व्यवस्था, कोरोना काल में अस्पतालों की चालाकियाँ, राजनीति की कूटनीतियाँ, मानवीय पीड़ा, सरकार नीतियों का खुला चिट्ठा है, लेकिन कहीं भी उपदेशात्मक भाषा का प्रयोग नहीं है। इस विशेषता के बारे में कहना अधिक उपयुक्त होगा कि साधना जी ने प्रतीकों का सुन्दर चयन किया है। जहाँ एक ओर व्यंग्यकार लकीर पीट रहे हैं, वहीं यह संग्रह लीक से हटकर यथार्थ से साक्षात्कार करवा रहा है। फंतासी का प्रयोग नगण्य है। मानवता और विसंगति से सीधे-सीधे संवाद करता यह संग्रह निश्चय ही सही मायने में व्यंग्य की दिशा और दशा दोनों तय करते नजर आ रहा है। आज के जमाने के धोबियों को हर बात का प्रमाण चाहिए।

इंडिया पियेगा तो जियेगा इण्डिया।

अंत में, भाषाई अशुद्धियों का न होना विद्यार्थियों के लिए एक अच्छा सबक होगा।

492, सैनी मोहल्ला
पालमग्राम, नई दिल्ली-110045
मो.- 9810960285

टीनू का पुस्तकालय

- राकेश चन्द्रा

'टीनू का पुस्तकालय' कुल 72 पृष्ठों की इस पुस्तक में 12 बाल कहानियाँ संग्रहीत हैं। पुस्तक का आवरण पृष्ठ रंगीन व आकर्षक है। भीतर के चित्र श्वेत-श्याम हैं। इस पुस्तक को यदि संस्कारों का पुस्तकालय कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। हर कहानी में कोई न कोई सुसंस्कार सन्निहित है जिसे लेखिका ने बिना कोई विशेष प्रयास किये ही पाठकों में सम्प्रेषित करने में सफलता पाई है। महत्वपूर्ण यह है कि ये सारे संस्कार हमारी मिट्टी की उपज हैं। उदाहरण स्वरूप, संग्रह की पहली ही कहानी 'टीनू का पुस्तकालय' दृष्टव्य है जिसमें बालक टीनू गर्मी की छुट्टियों को अच्छे से बिताने के उद्देश्य से अपने ही घर में एक पुस्तकालय खोल लेता है जिसमे घर की सारी पुस्तकें एवं बाल पत्रिकाएँ संग्रहीत की जाती है। इस पुस्तकालय को आस-पास के बच्चों के लिए भी सुलभ करा दिया जाता है. भला ग्रीष्मकालीन अवकाश का इससे बेहतर उपयोग और क्या हो सकता है? उल्लेखनीय है कि इस नेक कार्य की परिकल्पना एवं क्रियान्वयन दोनों ही बालक टीनू द्वारा किया गया है। 'अनमोल उपहार' कहानी में बच्चों को गाँव ले जाकर दीवाली का पर्व परम्परागत रूप से मनाने का जो उपक्रम उनके माता-पिता द्वारा किया गया है उसका सीधा-सा उद्देश्य शहर में रहने वाले बच्चों को उनकी सांस्कृतिक विरासत से जोड़ना था और उनका यह प्रयास सफल भी रहा। पर सबसे अच्छी बात यह रही कि कहानी की मुख्य पात्र बालिका रिनी का गाँव की साधनहीन लड़की पार्वती का विद्यालय में प्रवेश दिलाने के साथ-साथ भविष्य में उसकी फीस का प्रबन्ध अपने जेब खर्च से करने हेतु संकल्पित होना जिसे सुसंस्कारों की सफल परिणति के रूप में देखा जा सकता है। एक अन्य कहानी 'बुलबुल समझ गई' में एक आधुनिक सुसंस्कार डालने की चेष्टा लेखिका द्वारा की गई है जिसकी आज के समय में महती आवश्यकता है। वर्तमान समय में पानी बचाने का अर्थ है पृथ्वी पर जीवन बचाना। बालिका बुलबुल को यह सीख अल्पायु में ही उसकी माँ द्वारा मिल गई जिससे सभी बच्चे लाभान्वित होंगे। कहानी 'बच्चा' की किटी पार्टी भी एक सुसंस्कारपरक कथानक है जिसमें बच्चे बड़ों की भाँति किटी पार्टी का आयोजन करते हैं सारे बच्चे पहले से तय कार्यक्रम के अनुसार बाल कविता की एक-एक पुस्तक लेकर उपस्थित होते हैं और एक बालिका ने तो स्वलिखित कविता भी सुनाती है। उक्त पार्टी में यह भी तय होता है कि अगली बार सबको एक-एक बाल कहानी की पुस्तक लेकर जाना है। अनूठी परिकल्पना से ओत-प्रोत यह कहानी बच्चों में किस प्रकार के संस्कार डाल सकती है यह बताने की आवश्यकता नहीं है। संग्रह की एक अन्य कहानी सूरज दौड़ गया भी बच्चों के लिए बहुत प्रेरक है जो इस बात का सन्देश देती है कि अभ्यास से कुछ भी जीता जा सकता है। बच्चों में विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य न खोने तथा लगातार प्रयत्न करते रहने से सफलता प्राप्त की जा सकती है ऐसे संस्कार यदि बच्चों में आरम्भ से ही डाल दिये जाएँ तो बच्चे भविष्य में हर चुनौती का डटकर मुकाबला करने में सक्षम होंगे।

पुस्तक : टीनू का पुस्तकालय
लेखक : नीना सिंह सोलंकी
प्रकाशक : संदर्भ प्रकाशन, भोपाल
मूल्य : 200 /- रु.

संग्रह की कतिपय कहानियाँ विज्ञान पर आधारित हैं। 'निया और मिनी की यात्रा ऐसी ही एक कहानी है जो आधुनिक संदर्भ में 'ग्लोबल वार्मिंग' एवं 'जलवायु परिवर्तन' के परिप्रेक्ष्य में है। निया और मिनी ग्लेशियर देखने आइसलैंड जाते हैं और वहाँ जाकर उन्हें पता चलता है कि 'ओकजोकुल' नामक ग्लेशियर का अस्तित्व ही समाप्त हो गया है। इसका प्रमुख कारण था वातावरण में कार्बन डाई आक्साइड गैस के उत्सर्जन की अधिकता। बच्चे इससे बचने के उपाय की जानकारी प्राप्त करके उन पर अमल करने का भी संकल्प लेते हैं। इसी प्रकार 'चाँद के पार' कहानी में अंतरिक्ष शटल चंद्र यान 2 एवं भारत के चन्द्र अभियान की जानकारी दी गई है। कहानी का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार से है कि कथानायक अंत में स्वयं अंतरिक्ष वैज्ञानिक बनने की इच्छा व्यक्त करता है। संग्रह की एक कहानी आदि के दादा जी आज के शहरी समाज की एवं टूटते पारिवारिक ढाँचे की विद्रूपता को रेखांकित करता है। पारम्परिक रूप से हमारी सामाजिक व्यवस्था में बड़े-बुजुर्गों को उचित सम्मान देने की प्रथा है। उनके गुण-दोष देखकर न तो उन्हें सम्मान दिया जाता है और न ही उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। वे बड़े हैं यह सोचकर ही उन्हे यथोचित सम्मान देने की परम्परा हमारे समाज में रही है। पर इस कहानी का नायक अपने दादा जी के गाँव के निवासी होने पर उनसे दूर भागता है। यहाँ तक कि उन्हे उचित सम्मान देने से भी कतराता है। वह उन्हें तभी सम्मान का पात्र मानता है जब उसके विद्यालय में आयोजित 'ग्रांड पेरेंट्स डे' पर उसके दादा जी सबसे आगे रहते हैं और सबकी प्रशंसा बटोरते हैं।

पुस्तक की भाषा सरल एवं प्रवहमान है। वैज्ञानिक विषयों को भी आसान एवं बोधगम्य भाषा में समझाया गया है। कहानियाँ स्वाभाविक गति से चलती हैं और पाठकों को बाँधे रखने में सक्षम हैं। ऐसी पुस्तकों की बाल पाठकों के लिए महती आवश्यकता है। लेखिका का यह प्रयास सराहनीय है। आशा है कि यह पुस्तक बाल पाठकों के मानस पटल पर स्थान बनाने में अवश्य ही सफल होगी।

610/60, केशव नगर कालोनी,
सीतापुर रोड, निकट सेंट्रल बैंक,
लखनऊ-226020
मो.- 9457353346

कैथरीन और नागा साधुओं की रहस्यमयी दुनिया

- जयाकेतकी

252 पृष्ठों और 15 अध्यायों में लिखी गई कैथरीन और नागा साधुओं की रहस्यमयी दुनिया नामक यह पुस्तक सचमुच उस दुनिया तक ले जाती है जो इतनी रहस्यमयी है कि आश्चर्यचकित भी करती है और कभी-कभी सहसा विश्वास ही नहीं होता कि ऐसी भी कोई दुनिया इस संसार में है। मुझे बचपन से अघोरी साधुओं को देखकर रोमांच होता और भय भी लगता।

मैं उन्हें देखते ही अम्मा की पीछे छुप जाती। सबसे अधिक भय उपजाती उनकी डरावनी आँखें। भभूत से लिपटी उनकी देह, साथ में टँगी झोली और न के बराबर वस्त्र। उनकी घुँघरू की आवाज आती तभी से मैं छुपने लगती। उन्हें देखने का, उनके पास जाने का मन भी करता पर अजीब सा डर मन में बसा रहता। अम्मा उन्हें दान देतीं। न जाने क्या देतीं, यह तो मुझे याद नहीं।

पुस्तक : कैथरीन और नागा साधुओं की रहस्यमयी दुनिया
लेखक : संतोष श्रीवास्तव
प्रकाशक : किताब वाले प्रकाशन
मूल्य : 1000/- रु.

उनके बारे में पढ़ने और जानने की कोशिश की पर बहुत कुछ नहीं मिल पाया। रेडियो समाचार और दूरदर्शन के माध्यम से जरूर कुछ देखने-सुनने को मिला। परंतु वह पर्याप्त नहीं था मेरी जानकारी के लिए। दो बार कुंभ मेले में जाना हुआ। एक बार इलाहाबाद और एक बार उज्जैन। उज्जैन के महाकुंभ में जब हम लोग अपने होटल की बालकनी में खड़े होकर धर्मावलंबियों का नजारा देख रहे थे तभी अचानक भीड़ छँटने लगी और नागा साधुओं का झुंड आता दिखाई दिया। फिर पता चला की नागा साधुओं का अखाड़ा होता है। और भी बहुत से अखाड़े होते हैं जिनके सदस्य बारी-बारी से डुबकी लगाते हैं। यह भी जानकारी मिली कि विशेष तिथियों पर यानी अमावस्या, एकादशी, पूर्णिमा आदि पर सभी अखाड़े एक साथ कुंभ स्नान करते हैं।

जब संतोष जी की यह पुस्तक मेरे हाथ में आई तो कुछ पन्नों को पलटते ही मुझे विश्वास हो गया कि यह एक अत्यंत शोधपूर्ण पुस्तक है। आसान नहीं था नागा साधुओं के बारे में इतनी वृहद जानकारीपूर्ण पुस्तक लिखना। निश्चय ही संतोष जी ने कई वर्षों की साधना के बाद इसे पूरा किया होगा। यही नहीं उनकी हर पुस्तक पूरी तरह जानकारी लेकर ही वे लिखती हैं चाहे 'करवट बदलती सदी आमची मुंबई' हो या कैथरीन और नागा साधुओं की रहस्यमयी दुनिया। यदि मैं इसे संपूर्ण शोध ग्रंथ कहूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इस पुस्तक में 15 भाग अध्याय के रूप में हैं जिसमें सबसे छोटा अध्याय दो पृष्ठ का है और वह है नौवाँ अध्याय। दो अध्याय पाँच-पाँच पृष्ठ के हैं, तीसरा और 15 वाँ। पाँचवा एवं आठवाँ अध्याय 11 पृष्ठ के हैं और पहला तथा 11 वाँ 12-12 पृष्ठ के हैं। जहाँ 13 वाँ अध्याय 7 पृष्ठ का है वहीं 14 वाँ सबसे बड़ा अध्याय है इस पुस्तक का, 46 पृष्ठ का। सातवाँ अध्याय 15 पृष्ठ का और दसवाँ 16 पृष्ठ का है वहीं छठवाँ अध्याय 28 पृष्ठ का है।

'और खुलते गए द्वार' बतौर भूमिका लिखी गई संतोष जी की कलम से लेखकीय वक्तव्य है। वे लिखती हैं विदेशियों के साथ अखाड़े के किसी भी व्यक्ति के साथ मेलजोल पर प्रतिबंध लगा दिया गया। अखाड़े का मानना है कि विदेशियों के संपर्क में आने से नागा गलत संगत में पड़ रहे हैं। इसी भटकाव के चलते नागा ने विदेशी के साथ शादी की। वे स्वयं कहती हैं कि नागा साधुओं की रहस्यमई दुनिया यह उपन्यास, बल्कि दस्तावेज आप को सौंपते हुए मैं अंतर्मन से अभिभूत हूँ।

पेज 21 पर भाग-1 के अंतिम पृष्ठ पर वे कहती हैं- भूल हुई उससे, भूल करता रहा अब तक। 'मंगल हमें अपना बना लो। हम तुम्हारे बिना जी नहीं पाएँगे।' दीपा ने फिर पास आने की कोशिश की। वह खुद को छुड़ाकर कमरे से बाहर निकलने के लिए बाहर हुआ वह तो बैठक, पूजा घर, बरामदा और गेट से भी बाहर हो गया। पेज 22 पर भाग-2 की पहली ही लाइन में वे लिखती हैं अंतरिक्ष में न जाने कितने ब्लैकहोल हैं दिखलाई कहाँ देते हैं। नहीं दिखलाई दिया मंगल के मन का ब्लैक होल जिसमें वह धीरे-धीरे धँसता जा रहा है।

पुस्तक का भाग 3 बहुत जानकारीपरक है जिसमें बताया गया है कि सप्तऋषि यानी सात ऋषियों को हम तारे के रूप में देख सकते हैं- मारीचि, वशिष्ठ, अंगिरसा, अत्री, पुलस्त्य, ट्पुलहा और कृतु। इनके नीचे एक नन्हा सा तारा अरुंधति है। जहाँ सप्तऋषि मंडल है वहीं उत्तर दिशा में सदैव विराजमान रहने वाला ध्रुव नक्षत्र है, बेहद चमकीला और बड़ा। इसी अध्याय के अंतिम पृष्ठ यानी कि 49 पर व्यक्त हैं-मैं तो वैज्ञानिक बनना चाहता था खगोल शास्त्री। पर ईश्वर मुझसे कुछ और कराना चाहते थे तो बन गया नागा। धर्म और अध्यात्म से पहले खुद को जोड़ूँगा, नाचूँगा फिर अन्य लोगों को। 14 वर्ष हो गए माता फिर भी पूर्णता पाने में अभी समय शेष है। चिलम ठंडी पड़ चुकी थी, कुटिया अपेक्षाकृत गर्म थी वह नींद के आगोश में समा गया। थोड़ी देर में जानकी देवी भी कंबल में मुँह ढाँपे खर्राटे भरने लगीं।

पेज 56 पर जानकी देवी ने मुस्कुराते हुए नरोत्तम की ओर देखा सारे कुंभ देख चुकी हूँ। अर्ध कुंभ सहस्त्र जिसे पूर्ण कुंभ भी कहते हैं। तब तो आपने जूने अखाड़े के नागा साधुओं का शाही स्नान भी देखा होगा। पूरे कुंभ मेले में यह शाही स्नान आकर्षण का केंद्र रहता है। मेले में आए श्रद्धालुओं समेत पूरी दुनिया की साँसें उस अद्भुत दृश्य को देखकर थम जाती हैं। यह तुम कैसे कह सकते हो? जब हम नागा नहीं हुए थे तब की बात है माता। कुंभ मेले में हमने खुद महसूस किया। बड़ा आकर्षित करता था न गाँव का इतिहास। वर्षों पहले उनकी सैन्य भूमिका। जब-जब देश ने उन्हें पुकारा यहाँ तक कि विदेशी आक्रमणकारियों से भी युद्ध लड़ने में पीछे नहीं हटे। 1260 में श्री महानिर्वाणी अखाड़े के महंत भगवा नंदगिरी के नेतृत्व में 22000 नागा साधुओं ने कनखल स्थित मंदिर को आक्रमणकारी सेना के कब्जे से छुड़ाया था। इस तरह की जानकारी देना आसान नहीं है। यह लेखिका के अध्ययन और परिश्रम दोनों की साक्षी है।

चौथे भाग में पृष्ठ 62 पर वे लिखती हैं -'नियम है माता 24 घंटे में बस रात्रि भोजन है। जब हम तप करते हैं तो इस आवश्यकता को भी महसूस नहीं करते।' महाकाल गिरी ने शंका का समाधान किया। बहुत खूब। कैथरीन ने देखा नरोत्तम गिरी का चेहरा थोड़ा गुस्सा गया था। आप मेरे सवालों से थके तो नहीं? मैं और भी ज्यादा जानना चाहती हूँ। पूछिए न। क्या महिलाएँ भी नागा साधु होती हैं? फिर भी परंपरा अनुसार बिना कपड़ों के कैसे रहती होंगी? होती है न। महिलाएँ भी नागा साधु होती हैं लेकिन वे पूर्णतया नग्न न होकर गेरुआ वस्त्र लपेटे रहती हैं। उन्हें बिना वस्त्रों के शाही स्नान करना भी वर्जित है। हमारे पंच दशनाम, जूना अखाड़ा ने प्रयागराज कुंभ में 60 महिलाओं को नागा बनने की दीक्षा दी। उनके घर वाले विरोध नहीं करते?

इसी अध्याय के प्रश्न 74 पर भी लिखती हैं- आप नंबर मत बोलिए मैं नंबर लिख कर ही अखाड़ों के बारे में लिख रही हूँ। कैथरीन ने बीच में टोकते हुए कहा। नरोत्तम गिरी मुस्कुराया। अच्छा देवी नरोत्तम गिरी को कैटरीन जैसी महिला पहले कभी नहीं मिली। जिज्ञासु, एकाग्रचित्र, कोमल किंतु कठोर भी। यह कोमलता और कठोरता उसके व्यक्तित्व को औरों से सर्वथा भिन्न बनाती है। इस उपन्यास की विशेषता है कि यह अधिक से अधिक संवाद करती है इस कारण रोचक भी है और पढ़ने में मन भी लगता है।

भाग 5 के पृष्ठ 79 पर देखें पुरोहित जी से संवाद। अभी बता रहे हैं एक और पंथ है हमारे समाज में- अघोरियों का पंथ। क्या आप उनके बारे में जानती हैं। पुरोहित जी ने पूछा -हाँ मैंने सुना है। मैं उनके बारे में नहीं जानतीं। अगर आप कुछ बताएँगे तो मेरे ज्ञान में वृद्धि होगी। उनके बारे में तो आपको अष्ट कौशल गिरी अच्छे से बता सकेंगे। नरोत्तम गिरी ने मुस्कुराते हुए अष्ट कौशल गिरी की ओर देखा। हाँ, हाँ क्यों नहीं हम पहले अघोरी ही थे अष्ट कौशल गिरी ने चेहरे पर गंभीरता लाते हुए कहा -सुन सकेंगी माता अघोरियों के जीवन के बारे में। बहुत कठिन और जुगुप्सा भरा जीवन है उनका। फिर भी मैं सुनूँगी लेकिन पहले यह जानना चाहूँगी कि आप पहले अघोरी साधु थे फिर उस पंथ को क्यों छोड़ दिया।

13 वर्ष का था जब सौतेली माँ के अत्याचार से पीड़ित होकर मैंने घर त्याग दिया था और अघोरियों की संगत में पड़ गया था। सच में सौतेली माता बिल्कुल ऐसी होती हैं। पुरोहित जी ने कहा, लेकिन माता हमारी बुरी नहीं थीं। जैसे कैकेई राम को प्यार करती थीं और मंथरा के भड़काने में आकर उन्हें बनवास दे दिया था, वैसे ही हमारी माता रानी के भड़काने में आकर हम पर अत्याचार करती थी। भरपेट खाना भी नहीं मिलता था। 6 रोटी की भूख और दो रोटी मिलती थी खाने को। पिता से चुगली कर देती तो उनकी मार अलग पड़ती। हम भी कब तक सहते। एक दिन घर से भाग निकले और श्मशान पहुँच गए और अघोरियों से मुलाकात हुई।
कैथरीन गंभीर हो गई सच में इस संसार में कोई भी सुखी नहीं है सब अपने अपने दुखों का युद्ध लड़ रहे हैं।

इस संवाद को प्रस्तुत करने का आशाय यह है कि कैथरीन की हर जिज्ञासा का समाधान उसे नागा साधुओं की संगत में मिला। इसी भाग के पेज 90 पर वे लिखती हैं पुरोहित जी कैथरीन से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा आपको हिंदू अध्यात्म का बहुत ज्ञान है और आपकी रुचि भी है उसमें। यह हमारे लिए गर्व का विषय है। जी हाँ सबसे बड़ी बात यही है कि जब तक हमारी रुचि नहीं होती, हमारा अध्ययन नहीं होता तब तक हम कुछ भी बात सही ढंग से नहीं जुड़ सकते।

लेखिका के लेखन का वैविध्य देखिए वे सीधे नहीं कहतीं कि नागा साधु कपड़े नहीं पहनते। नरोत्तम और कैथरीन के प्रश्न उत्तर के माध्यम से इस बात को स्पष्ट करती हैं। नागा साधु प्रकृति और प्राकृतिक अवस्था को महत्व देते हैं। इसलिए भी वे वस्त्र नहीं पहनते। नागा साधुओं का मानना है कि इंसान निर्वस्त्र जन्म लेता है अर्थात् यह अवस्था प्राकृतिक है। इसी भावना का आत्मसात करते हुए नागा साधु हमेशा निर्वस्त्र रहते हैं। नागा साधु बाह्य चीजों को भी आडंबर मानते हैं। केवल नग्न अवस्था ही नहीं बल्कि शरीर पर भस्म और जटा जूट भी नागा साधुओं की पहचान है।

पेज 91 पर आरंभ में उन्होंने बताया कि दिन भर कैथरीन भोजपत्र की खोज में भोजबासा के जंगलों में भटकती रही। उसे ध्यान आया कि अरे यही तो वर्ष है यानी उसके देश में भी इस तरह के पेड़ हैं जिसमें कागज के रिम की तरह छाल निकलती है पतली भूरी और सफेद यही तो है भोजपत्र।

इस भाग का एक रोचक दृश्य है। कैथरीन ने कहा और नौकरानी की लाई में कॉफी ख्यालों में उड़ेलने लगी। कॉफी के बाद ब्रषभानु पंडित

चले गए नौकरानी भी काम खत्म कर चली गई। प्रवीण ने हिम्मत कर कहा- आज मैं तुम्हें अपने घर ले जाना चाहता हूँ डिनर के लिए। अरे अचानक ही। कोई खुशखबरी है क्या? नहीं कहते हुए प्रवीण की आँखें झुक गईं। वह हिम्मत जुटाने लगा, शक्ति बटोरने लगा। शंकाओं से घिरे मन को लगा साल भर का साथ कहीं एक झटके में टूट न जाए। कहीं कैथरीन बिखर न जाए, इतना बड़ा धोखा!
फिर क्या है बताओ अभी रोककर कहती -अपनी पत्नी और बेटी से मिलवाने ले चल रहा हूँ कैथरीन। पल भर को कमरे में सन्नाटा छा गया। पल से मिनट, मिनट की संख्या बढ़ती उसके पहले ही प्रवीण ने शक्ति बटोरी- शेफालिका मेरी पत्नी है और जासमीन बेटी। अरे वाह बहुत सुंदर नाम है। मैं जरूर चलूँगी डिनर पर तुम्हारे घर वही नीली पोशाक पहन लूँ जो तुम्हें बहुत पसंद है जिसमें मैं तुम्हें नीलपरी से दिखती हूँ। . . .
प्रवीण तो शादीशुदा नहीं भी होते तो भी मैं तुमसे शादी नहीं करती क्योंकि शादी नहीं करने का निर्णय मैंने तुमसे पहले ही ले लिया था। प्रवीण चकित होकर अपनी इस असाधारण महबूबा को देख रहा था। रही बात यह कि इस बात को सुनकर मैं तुम्हें छोड़ दूँगी ऐसा नहीं होगा। हमने प्यार किया है, हम बिना किसी रिश्ते के प्यार निभाएँगे हमारा प्यार बस प्यार होगा।

अंदर तक भिगोकर रख देने वाला यह दृश्य कितना मार्मिक है। इसे वे ही समझ सकते हैं जिन्होंने डूब कर प्यार किया है।

प्रवीण की पत्नी और बेटी जासमीन से मिलकर भी कैथरीन जरा भी विचलित नहीं होती। शेफालिका कहती है कि आप तो भारतीय अध्यात्म को बखूबी जान गई हैं शेफालिका। तुम्हें नहीं मालूम कैथरीन भारतीय नागा साधुओं पर उपन्यास लिख रही है। अरे वाह हमारा भारत देश दुनिया भर के लिए आकर्षण का केंद्र है। आप लिखिए आँकड़े जुटाने में मदद करूँगी। कितना साफ-सुथरा वार्तालाप है एक पत्नी का अपने पति की प्रेमिका से।

कैथरीन और नागा साधुओं की रहस्यमयी दुनिया के भाग 7 में कैथरीन के एक और चरित्र का खुलासा होता है। चलिए मेम साहब आज भोजन नहीं करना है? नहीं आज भूख नहीं है। मैं भी नागा साधुओं के साथ शाम को ही भोजन करूँगी। कमंडल में पानी हो तो पिला दो। . . .
कैथरीन ने डायरी में से भोजपत्र निकाला- 'देखिए मैंने इस पर लिखने का प्रयास किया है।'
'ओह तो आप भोजपत्र के बारे में जान गईं।'
मुझे आध्यात्मिक ग्रंथों की पांडुलिपियों के सुरक्षित रहने का कारण भी पता चल गया। यह बर्च की छाल है जो कभी पुरानी नहीं होती। हमेशा नूतन रहने का वरदान मिला है इसे।

पेज 126 पर प्रश्न करते हैं अच्छा अंगों के अलावा जेवर गिरने से भी शक्तिपीठ बन गए। कैथरीन के इस प्रश्न का किसी के पास उत्तर नहीं था इसलिए महाकाल गिरि ने अपना वक्तव्य जारी रहा। वे कामाख्या कालीपीठ आदि के बारे में कैथरीन को विस्तार से बता रहे थे। कैथरीन को और भी बताने की इच्छा से नरोत्तम गिरी ने कहा महाकाल गिरी तंत्र की मुख्य 10 देवियाँ भी हैं जिन्हें दसमहाविद्या कहा जाता है। काली, तारा, षोडशी यानी त्रिपुरसुंदरी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, त्रिपुर भैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी और कमला। इन सभी महाविद्याओं की आराधना तांत्रिक करते हैं। इस तरह से लेखिका ने 10 देवियों की जानकारी भी पाठकों को दी है। 131 पेज पर दी गई इस जानकारी के अतिरिक्त भैरव बाबा के 8 रूपों की जानकारी और रुद्रावतार के विषय में भी विस्तार से बताया गया है।

जब नरोत्तम गिरी अपनी कठिन साधना को पूरा कर लौटते हैं तो पृष्ठ 137 पर उनकी हिचकिचाहट दिखलाई गई है। पूर्णतः नागा होने के बाद भी जब उन्हें नागा साधु बनने का प्रशिक्षण लेने आए नवोदित के बीच जाना होता है तो वह गुरु से एक वस्त्र धारण करने की अनुमति माँगते हैं। नरोत्तम गिरी गुरु जी के वचनों को अंगीकार करता है -
'कहाँ जाना होगा?'
'कर्णप्रयाग के जंगलों में 100 नौजवान नागा साधु बनने का प्रशिक्षण लेंगे। तुम्हें 20 नौजवानों की टीम को प्रशिक्षित करना है। तुम्हारे साथ चार प्रशिक्षण कर्ता और होंगे लेकिन वे पूर्णतया दिगंबर नहीं हैं।
'मुझे भी एक वस्त्र धारण करने की अनुमति दें।'
'क्या तुम भी दिगंबर से एक वस्त्र धारी होना चाहते हो। उल्टी गंगा बहा रहे हो। 16 वर्षों से तुम तक साधना में लीन अब शरीर की चिंता करते हो।'
'क्षमा गुरुदेव सभी प्रशिक्षक एक वस्त्र धारी रहेंगे इसलिए कहा क्षमा।'
यहाँ पर यह विचारणीय है कि एक नागा साधु को अपने शरीर की चिंता कैसे हुई। क्या उसे किसी ने चुनौती दी है। आज के नागा साधु आधुनिकता से परिपूर्ण हैं, इसका पता चलता है पृष्ठ 141 पर जहाँ प्रशिक्षण के लिए लैपटॉप का बैग लिए प्रशिक्षक जा रहे हैं और प्रशिक्षण की सारी सूचनाएँ हरिद्वार स्थित आश्रम में गुरुजी के पास लैपटॉप के द्वारा भेजते हैं।

भाग दस-पृष्ठ 153 पर वे लिखती हैं कि कैथरीन की आँखों में नरोत्तम की परछाई अभी भी समाई हुई थी। तभी वह देखती है कि आद्या ने कैनवास पर हुबहू नरोत्तम को उतार दिया है।
देखो आद्या मैंने भी कोशिश की थी पर तुमने तो कमाल ही कर दिया आप किताब लिखो मामा मैं उस किताब की कहानी पर चित्र भी बनाती जाऊँगी।

पृष्ठ 155 पर वृषभानु पंडित की उपस्थिति दर्ज है। आद्या जब उन्हें पेंटिंग दिखाती है, वह कहते हैं अरे यह तो भारतीय नागा साधु है।
'जी हाँ जिनसे मिलकर मैं आई हूँ वही नरोत्तम गिरी।'
'तुम्हारी किताब में सहयोगी बनेगी आद्या।'
'हाँ मैं मामा की किताब की घटनाओं पर चित्र बनाऊँगी।

वाह इससे बढ़िया और क्या हो सकता है। कैथरीन की सालों की मेहनत एग्जीबिशन में भी दिखे तो क्या बात है।

भाग 11 पृष्ठ 168 पर भाग 11 आरंभ हुआ है। लोक कलाकारों के लोक नृत्य देखकर कैथरीन मंत्रमुग्ध हो गई। आध्या के नागा साधुओं को लेकर प्रश्न भी अनंत थे। इतने सारे अखाड़े हैं आप लोगों के क्या कभी लड़ाई नहीं होती आपस में? नरोत्तम गिरी को आज्ञा के चेहरे पर जिज्ञासा भरा भोलापन बड़ा आकर्षित करता होती है ना लड़ाई तभी तो वेट भेजना कारों के शाही स्नान का समय और आने-जाने के रास्ते अलग-अलग हैं शेर और वैष्णव अखाड़ों में लंबे समय तक मतभेद रहे और खूनी संघर्ष भी हुए पर अपने ही पीढ़ी के आने के बाद से मतभेद कम हुए हैं। शिक्षा से बदलाव भी आया है।

पृष्ठ 171 वे आगे लिखते हैं इस बार हमने 14 जनवरी से 10 मार्च तक का समय शांति से गुजारा नरोत्तम ने। फिर जुदाई का वक्त आ गया है। हमारे इस दोबारा मिलन में ईश्वर सहायक है। वही व्यक्ति को मिलाता है, वही जुदा करता है वरना समुंदरों पर्वतों को लाँघ इस तरह मिलती क्या? अब तुम कंदराओं में, गुफाओं में, हिमालय की चोटियों पर होगी और मैं सिडनी की आधुनिक चकाचौंध भरी दुनिया में। हम तो संन्यासी-बैरागी हैं वही तो ठिकाने हैं हमारे। ठिकाने हैं, नहीं बना लिए हैं तुमने। मैंने बहुत बारीकी से तुमको पढ़ा है, परखा है नरोत्तम।

भाग12 में मैंने देखा कैटरीन चली गई। नरोत्तम गिरी 1 वर्ष तक कंदराओं में रहा। खुद को परिष्कृत कर मन को बाँधा। पृष्ठ 183 पर पहलगाम पहुँचते ही नरोत्तम गिरी का फोन बज उठा और नाम चमका कैथरीन बिलिंग। कैथरीन कैसे हो नरोत्तम हरिद्वार में कुंभ के बाद में पहाड़ों पर खुद को खँगाल कर चलाया था तो क्या पाया एक बेचैनी। यूँ लगा जैसे किसी की परछाईं मेरे साथ चल रही है तो क्या मैं मानव नहीं।

जितना नरोत्तम गिरी कैथरीन से बचना चाह रहा था उतना ही उसके दिमाग में बसती जा रही थी। कितने सारे मिसकॉल। ठीक तो हो न नरोत्तम। कहाँ हो?

'हरिद्वार के जंगल स्थित प्रशिक्षण केंद्र में और तुम?'

'वहीं अपने ठिकाने पर अपने अपार्टमेंट में, अपने बिस्तर पर जस्ट अभी लेटी हूँ। आज शाम से किताब लिख रही हूँ। पूरा एक चैप्टर कंप्लीट कर दिया पर तुम कुछ बेचैन लग रहे हो।'

'कैसे जाना तुमने कैथरीन?'

'बार-बार मेरे फोन की रिंग बजा कर काट रहे हो।'

'कैसे समझ लेती हो तुम मुझे हजारों मील दूर रहकर भी अपने पास कर लेती हो।'

'तुम तो मेरे पास ही हो नरोत्तम। तुम नागा नहीं होते तो मैं तुम्हारा अपहरण कर लेती।'

भाग 14 इस उपन्यास का सबसे बड़ा भाग है। पृष्ठ 202 पर वे लिखती हैं -एक बात कहूँ गुरुजी, भारत की प्रतिभा विदेशी पहचानते हैं। आपके देश के महात्मा गाँधी पर विदेशी निर्माता रिचर्ड एटनबरो फिल्म बनाता है तब जाकर भारतीय निर्माता जागते।

अंतिम भाग साधुओं के लिए सांसारिक परिवार का महत्व नहीं होता, ये समुदाय को ही अपना परिवार मानते हैं। नागा साधुओं का कोई विशेष स्थान या मकान भी नहीं होता। ये कुटिया बनाकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। सोने के लिए भी ये किसी बिस्तर का इस्तेमाल नहीं करते हैं बल्कि केवल जमीन पर ही सोते हैं। नागा साधु एक दिन में 7 घरों से भिक्षा माँग सकते हैं। यदि इन घरों से भिक्षा मिली तो ठीक वरना इन्हें भूखा ही रहना पड़ता है। ये पूरे दिन में केवल एक समय ही भोजन ग्रहण करते हैं। नागा साधु हिन्दू धर्मावलंबी साधु होते हैं जोकि हमेशा नग्न रहने और युद्ध कला में माहिर के लिए जाने जाते हैं। विभिन्न अखाड़ों में इनका ठिकाना होता है। सबसे अधिक नागा साधु जूना अखाड़े में होते हैं। नागा साधुओं के अखाड़े में रहने की परंपरा की शुरुआत आदिगुरु शंकराचार्य द्वारा की गयी थी।

भाग 14 में कैथरीन की पुस्तक दिव्य पुरुष नरोत्तम नागा के अंतिम अध्याय के लेखन और इसी बहाने नरोत्तम से 11 वर्ष बाद कैथरीन की मुलाकात की दास्तान है। कैथरीन नरोत्तम आध्या प्रवीण आदि की लंबी बातचीत इस अध्याय का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। नाना और प्रोफ़ेसर शांडिल्य इस बातचीत का हिस्सा है। यहीं पर महिला नागा साधु बनने की प्रक्रिया भी आती है। शैलजा माता बताते हैं कि 6 से 12 साल तक हमें नागा बनने में लगते हैं कठोर नियमों से गुजरना पड़ता है 5 दिन हमारी योनि को शिथिल करने के लिए हमें भूखा रखा जाता है। चमारी काम इच्छा उसी दौरान समाप्त हो जाती बाकी शक्ति हमारी माता पार्वती और शिव भोला भंडारी हमें देते हैं। नागा साधु बनने से पहले उसका मुंडन किया जाता है और नदी में स्नान करवाते हैं महिला नागा साधु पूरा दिन भगवान का जब करती है सुबह ब्रह्म मुहूर्त में उठना होता है। इसके बाद नित्य कर्मों से निवृत्त होकर शिवजी का जाप करना होता है। दोपहर में भोजन करते हैं और फिर से शिव जी का जाप करते हैं शाम को दत्तात्रेय भगवान की पूजा करती हैं और इसके बाद शयन।

मैम उनका अंतिम संस्कार कैसे होता है कैथरीन के लिए यह प्रश्न अप्रत्याशित था लेकिन वह उत्तर के लिए तैयार थी। उसकी अपनी जिज्ञासा ने नरोत्तम से इस बार की जानकारी भी पहले ही ले ली थी नागाओं का अंतिम संस्कार अग्नि से नहीं होता उनके शव को पहले जल समाधि दी जाती थी लेकिन नदियों का जल प्रदूषित होने के नाते अब पृथ्वी पर समाधि दी जाती है। सबको सिद्धि योग में बैठाकर भू समाधि दी जाती है।

पेज 228 पर कैथरीन और गिरिराज गिरि महंत की चर्चा है जिसमें हनुमानगढ़ी का किला बनने और शुजाउद्दौला के उपचार का विस्तार

से वर्णन है। शुजाउद्दोला को कुष्ठ रोग होने की बात का यहाँ खंडन होता है और उनके घायल पड़े मिलने का समाचार पता चलता है। इसके बाद कैथरीन अपने किताब को पूरा करने के लिए वापस लौट जाती है।

इस पुस्तक का सबसे रोचक प्रसंग आया है पृष्ठ 244 और 245 पर। नरोत्तम गिरी और कैथरीन का वार्तालाप –

इतने ख्वाब दिखा दिए। काश तुम साथ चलते। मैं गंगा का सौंदर्य रात में भी देखना चाहती हूँ।

कल रात मणिकर्णिका घाट की सैर कर लेना बाकी के घाट परसों।

नरोत्तम जाने कितने ख्वाब दिखा देते हो तुम। जिंदगी उन ख्वाबों में सिमट कर रह जाती है।

जिंदगी ख्वाब नहीं हकीकत है जिस तरह पूरी प्रकृति हकीकत है। हम भी तो प्रकृति का हिस्सा ही हैं न।

पर मैंने उस हकीकत से परे हटकर तुम्हें किताब में बाँध लिया है। हर पन्ने, हर पैराग्राफ, हर वाक्य, हर शब्द में तुम।

'अब हम नागा जीवन की शपथ ले चुके हैं। अब हटेंगे तो पथभ्रष्ट कहलाएँगे।

मैं तुम्हें पथभ्रष्ट नहीं होने दूँगी नरोत्तम। प्यार कीमत नहीं माँगता इतना तय मानो।

'परसों तुम चली जाओगी। कुछ दिन जरूर विचलित रहूँगा फिर वही साधना, जाप, तप। अब जीवन को इसी को दे दिया है न कैथरीन।'

'काश इन सब बातों में मैं सशरीर तुम्हारे साथ होती। मन से तो हूँ ही हमेशा।'

तुम मेरे साथ ही हो हमेशा। कहते हुए नरोत्तम गिरी ने आँखें मूँद लीं। कैथरीन उस तिलिस्म में आकंठ डूबी खुद को भूलने लगी। नरोत्तम गिरी फरिश्ते के रूप में आई कैथरीन को देखता रह गया। जिसने कभी यह नहीं कहा कि तुम मेरे साथ आ जाओ। हमेशा यही कहा कि काश मैं तुम्हारे साथ होती। प्रेम की इस ऊँचाई की तो नरोत्तम गिरी ने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

कैथरीन और नागा साधुओं की रहस्यमयी दुनिया इस पुस्तक का अंतिम भाग सबसे अधिक मर्मस्पर्शी है जिसमें नरोत्तम के इस संसार को छोड़कर जाने और कैथरीन के नागा साधु बन जाने की लीला व्याप्त है।

मो.- 9826245286

पत्र

जुलाई 2023 की अक्षरा के कई लेख भ्रांतियों का निराकरण करने के साथ ही अच्छी नागरिकता के प्रति सचेत और उत्प्रेरित भी करते हैं। संपादकीय में संगोल (राज दंड) की स्थापना को लेकर कतिपय दुराग्रही लोगों ने जिस प्रकार बात करने की कुचेष्टा की उसका राजधर्म और अनुशासन की दृष्टि से महत्ता का प्रतिपादन करते हुए शास्त्रीय, पौराणिक, ऐतिहासिक संदर्भों को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया गया। औचित्य अत्यंत प्रभावशाली है। उसकी सामयिक महत्ता निर्विवाद है। जरूरत है सकारात्मक चिंतन की। शब्द की महिमा कालजयी है। वे मनुष्य परिचायक प्राणाधार हैं। शब्द–समाज और सर्जना की अभिन्नता और अनिवार्यता निर्विवाद है। इस तथ्य का निरूपण सहज–सरल शब्दों में श्री रमेश दवे ने विद्वता शैली में किया है।

वर्ण व्यवस्था भारतीय जीवन में महत्त्वपूर्ण रही किंतु सदियों से विवाद का विषय रही है। विशेष कर धर्माचार्य और राजनेताओं ने इसे अधिकाधिक चर्चा का विषय बनाकर विभेद पैदा कर स्वार्थ–साधन किया। विजय रंजन ने अपने आलेख वर्ण व्यवस्था : एक विमर्श में इसका विस्तृत विवेचन कर तमाम शास्त्रीय ग्रंथों के संदर्भों के आशय स्पष्ट कर यहाँ प्रमाणित किया कि वर्ण व्यवस्था का जातीयता अथवा ऊँच–नीच से कोई संबंध नहीं है। समाज के संतुलित और समन्वित संचालन के लिए कर्म–कौशल के आधार पर पहचान की व्यवस्था थी। कर्म–कौशल प्रधान था। उनके अनुसार वर्ण व्यवस्था ऐसी सार्वहिति और सार्वोपियोगी व्यवस्था थी जिसमें किसी मानव संवर्ग के छोटे या बड़ेपन का भाव नहीं था। यह विविधता में एकता और समरसता की सांस्कृतिक व्यवस्था थी।

कमलेश कुमार गुप्त ने प्रेमचंद के गोदान, रामदेव शुक्ल के विकल्प और संजीव के फाँस उपन्यासों के माध्यम से भारतीय किसानों की वास्तविक स्थितियों से रूबरू कराया है। राहुल पांडे ने भारतेंदु के विचारों की एक झलक लेख में दी है जिससे पता चलता है पराधीन भारत में भी वे लेखनी से ही नहीं वाणी से भी जनता को जागरण का संदेश देकर स्वाभिमान से जीने के लिए प्रेरित करते रहे। आद्या प्रसाद द्विवेदी का ललित निबंध गूलर के फूल पठनीय है।

गंगा प्रसाद बरसैंया, सतना (म.प्र.)

हिंदी भवन प्रांगण में स्वतंत्रता की वर्षगांठ का आयोजन

SBI
बैंकिंग इतनी आसान जैसे
1-2-3-4
बिलकुल आसान नंबर-1800-1234/1800-2100
मुख्य सेवाएँ
हमारे नवीनीकृत संपर्क केंद्र का शुभारंभ
1800-11-2211, 1800-425-3800

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

जन्म – 15 सितम्बर 1927
प्रयाण – 23 सितम्बर 1983

रात में वर्षा

मेरी साँसों पर मेघ उतरने लगे हैं,
आकाश पलकों पर झुक आया है,
क्षितिज मेरी भुजाओं में टकराता है,
आज रात वर्षा होगी।
कहाँ हो तुम ?

मैंने शीशे का एक बहुत बड़ा एक्वेरियम
बादलों के ऊपर आकाश में बनाया है,
जिसमें रंग–बिरंगी असंख्य
मछलियाँ डाल दी हैं,
सारा सागर भर दिया है।
आज रात वह एक्वेरियम टूटेगा–
बौछारों की एक–एक बूँद के साथ
रंगीन मछलियाँ गिरेंगी।
कहाँ हो तुम ?

मैं तुम्हें बूँदों पर उड़ती
धारों पर चढ़ती–उतरती
झकोरों में दौड़ती, हाँफती,
उन असंख्य रंगीन मछलियों
को दिखाना चाहता हूँ
जिन्हें मैंने अपने रोम–रोम
की पुलक से आकार दिया है।

देश कागज पर बना नक्शा नहीं होता

यदि तुम्हारे घर के
एक कमरे में आग लगी हो
तो क्या तुम
दूसरे कमरे में सो सकते हो ?
यदि तुम्हारे घर के एक कमरे में
लाशें सड़ रहीं हों
तो क्या तुम
दूसरे कमरे में प्रार्थना कर सकते हो ?
यदि हाँ
तो मुझे तुम से
कुछ नहीं कहना है।

देश कागज पर बना
नक्शा नहीं होता
कि एक हिस्से के फट जाने पर
बाकी हिस्से उसी तरह साबुत बने रहें
और नदियाँ, पर्वत, शहर, गाँव
वैसे ही अपनी–अपनी जगह दिखें
अनमने रहें।
यदि तुम यह नहीं मानते
तो मुझे तुम्हारे साथ
नहीं रहना है।

इस दुनिया में आदमी की जान
से बड़ा कुछ भी नहीं है
न ईश्वर
न ज्ञान
न चुनाव
कागज पर लिखी कोई भी इबारत
फाड़ी जा सकती है
और जमीन की सात परतों के भीतर
गाड़ी जा सकती है।

जो विवेक
खड़ा हो लाशों को टेक
वह अंधा है
जो शासन
चल रहा हो बंदूक की नली से
हत्यारों का धंधा है
यदि तुम यह नहीं मानते
तो मुझे
अब एक क्षण भी
तुम्हें नहीं सहना है।
याद रखो
एक बच्चे की हत्या
एक औरत की मौत
एक आदमी का
गोलियों से चिथड़ा तन
किसी शासन का ही नहीं
सम्पूर्ण राष्ट्र का है पतन।

ऐसा खून बहकर
धरती में जज्ब नहीं होता
आकाश में फहराते झंडों को
काला करता है।
जिस धरती पर
फौजी बूटों के निशान हों
और उन पर
लाशें गिर रही हों
वह धरती
यदि तुम्हारे खून में
आग बन कर नहीं दौड़ती
तो समझ लो
तुम बंजर हो गये हो–
तुम्हें यहाँ साँस लेने तक का नहीं है
अधिकार
तुम्हारे लिए नहीं रहा अब यह संसार।

आखिरी बात
बिल्कुल साफ
किसी हत्यारे को
कभी मत करो माफ
चाहे हो वह तुम्हारा यार
धर्म का ठेकेदार,
चाहे लोकतंत्र का
स्वनामधन्य पहरेदार।

प्रेषक, प्रकाशक, मुद्रक कैलाशचन्द्र पंत, भोपाल द्वारा, स्वत्वाधिकारी मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल से प्रकाशित एवं श्रेया ऑफसेट, 4 लाजपत भवन, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल से मुद्रित।